वार्षिकांक

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास
को समर्पित

वर्ष 50 अंक : 12 अक्तूबर 2004 मूल्य : पंद्रह रुपये

2 अक्तूबर, गांधी जयंती के अवसर पर विशेष

सहकारिता पर गांधीजी के विचार

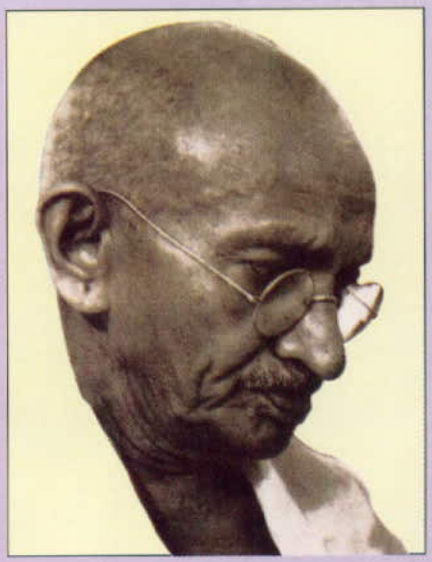

सहकारिता की सूक्ष्म विधियों के विषय में मेरा ज्ञान नहीं के बराबर है। स्वयं मुझमें सब बातों के लिए बहुत–कुछ जोश रहता है, परंतु पच्चीस वर्ष के प्रयोग और अनुभव से मुझमें बहुत–कुछ सतर्कता और विवेक–बुद्धि आ गयी है। जो कार्यकर्त्ता किसी काम में लगते हैं वे अवश्य ही, जाने–अनजाने उसके गुणों को बहुत–कुछ बढ़ाकर बताते हैं और प्रायः उसके दोषों को ही उसकी विशेषताओं में बदल देते हैं। इस विषय में बहुत–कुछ सतर्क होने पर मैं अहमदाबाद की अपनी छोटी संस्था को संसार में सर्वोत्तम समझता हूं। केवल उसी से मुझे यथेष्ट प्रेरणा मिलती है। आलोचक मुझसे कहते हैं कि वह आत्मारहित आत्मबल की प्रतीक है और कठोर अनुशासन से बिलकुल मशीन की तरह हो गई है। मैं समझता हूं कि इस संबंध में हम दोनों ही, उसके आलोचक और मैं गलती पर हैं। वह अधिक से अधिक राष्ट्र को एक ऐसा आवास देने का नम्र प्रयत्न है, जिसमें पुरुष तथा स्त्रियां भारतीय प्रकृति के अनुरूप बिलकुल स्वतंत्रता और स्वच्छंदता से अपने–अपने चरित्र का विकास कर सकें, यदि उसके चालक यथेष्ट ध्यान न रखें तो जो अनुशासन वास्तव में सदाचार का मूल है, वही अनुशासन उसका चरम उद्देश्य नष्ट करने का कारण हो सकता है। इसलिए सहकारिता के संबंध में जिन लोगों के मन में बहुत अधिक उत्साह है उन लोगों को मैं सचेत करता हूं कि वे झूठी आशाएं न बांधें।

'बिना सदाचार के सहकारिता नहीं हो सकती', भारत के भविष्य के संबंध में आप जैसे चाहें वैसे दिवा स्वप्न देखें, पर यह बात कभी न भूलें कि भारत को एक सूत्र में पिरोना है और इस प्रकार उसे संसार में अपना उचित स्थान प्राप्त करने के योग्य बनाना है; और सरकार के हाथ में भारत को एक करने का जो रास्ता है वह सहकारिता आंदोलन है।

सहकारिता आंदोलन भारत के लिए उसी हद तक हितकर होगा जिस हद तक वह नैतिक आंदोलन रहेगा और उसका संचालन पूर्ण धार्मिक लगन के लोगों द्वारा होगा। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि सहकारिता को केवल उन्हीं लोगों तक सीमित रखना चाहिए जो नैतिक

(शेष आवरण 3 पर)

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 50 ● अंक : 12

आश्विन–कार्तिक 1926

अक्तूबर 2004

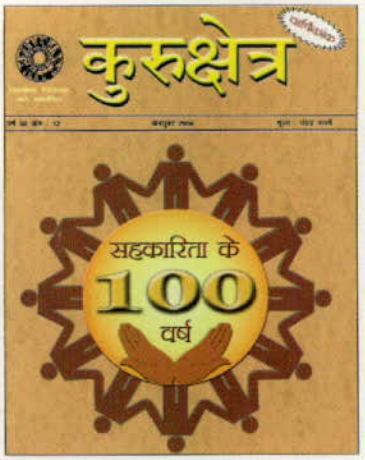

संपादक
स्नेह राय

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पत्र–व्यवहार

संपादक, **कुरुक्षेत्र**
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23015014,
फैक्स : 011–23015014
तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@pub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

व्यापार व्यवस्थापक
दूरभाष : 24367260, 2436509, 24365610

आवरण
मनोज कुमार

सज्जा
अजय भंडारी

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

लेख

- भारतीय सहकारिता आंदोलन अतीत, वर्तमान और भविष्य — डा. पी.एन. शंकरन — 4
- सहकारी समितियां : उभरते मुद्दे और चुनौतियां — संजीव चोपड़ा — 9
- नये युग में सहकारिता और सहकारी बैंकों के विकास की रणनीति — कटार सिंह — 13
- सहकारिता के विकास में पंचायती राज का योगदान — डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल — 17
- सहकारी बैंकिंग : उपलब्धियां और चुनौतियां — डा. अमृत पटेल — 21
- सहकारी बैंकिंग की समस्याएं और संभावनाएं — डा. सैमवेल के. लोपोयेटम — 28
- भारत में सहकारी विपणन वर्तमान स्थिति, सीमाएं और सुधार के उपाय — डा. एल. पी. सिंह — 34
- सहकारी समितियां – ग्रामीण विकास में भागीदार : वैश्विक परिदृश्य — सी. राजेंद्र कुमार, डा. संजय एस. कप्तान — 40
- महिला डेयरी परियोजनाओं का एक अनुभव — वी. एम. राव — 45
- दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां : आर्थिक–सामाजिक दायित्व — विनय एम आर और मन्जप्पा डी एच — 50
- लैंगिक मुद्दे और सहकारिताएं — एच. एस. के. टांगीराला — 55
- सहकारिताएं : सामाजिक–आर्थिक अधिकारिता का सशक्त साधन — अनन्त मित्तल — 58
- सहकारिता में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका — अजित कुमार — 61
- सहकारी क्षेत्र : कार्य निष्पादन, क्षमता और चुनौतियां — एस. बालाकृष्णन और पी. रामालिंगम — 64
- सहकारी आंदोलन के विकास में शिक्षा और प्रशिक्षण की भूमिका — डा. नीरज पसरीचा, डा. ओ. एन. लाल और वी.के. पांडेय — 66
- सहकारिता का जनक : रॉबर्ट ओवेन — ओमप्रकाश कश्यप — 69
- राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम सहकारिता क्षेत्र को मजबूत करेगा — – — 72

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में सहायक प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

COSMOS BOOKHIVE

a **TESTED** and **TRUSTED** name in **PUBLISHING**

We Lead, others follow

SPECIALISATION :
- ***UGC - NET / SLET - CSIR***
- ***CIVIL SERVICES / STATE SERVICES (PREL & MAIN)***
- Books on Core Subjects: ***Reasoning, Q. Aptitude, Eng. language***

CIVIL SERVICES / STATE SERVICES PRELIMINARY

1.	Agriculture	125.00	2.	Botany	140.00
3.	Chemistry	220.00	4.	Commerce (revised)	360.00
5.	Economics (revised)	360.00	6.	Geography	235.00
7.	Indian History	320.00	8.	Indian Constitution	72.00
9.	Law (revised)	370.00	10.	Mathematics (revised)	390.00
11.	Psychology	210.00	12.	Political Science	435.00
13.	Physics	270.00	14.	Sociology	220.00
15.	Zoology (revised)	375.00	16.	Public Admn.	410.00
17.	Syllabus (C.S.) Main+Prel.				45.00
18.	अर्थशास्त्र	350.00	19.	भारत का इतिहास	280.00
20.	राजनैतिक शास्त्र	325.00	21.	समाज शास्त्र	100.00
22.	वाणिज्य	300.00	23.	लोक प्रशासन	290.00
24.	भूगोल	115.00	25.	विधि	115.00

I.C.S. (MAIN) / STATE SERVICES MAIN

26.	Advanced Essays (Covering Latest Topics)				115.00
27.	Advanced Physics Revised Edition				290.00
28.	General English (with up-to-date solved papers)				135.00
29.	Commerce Paper I (Part I) Acct., Auditing & Taxation				350.00
30.	Gandhi, Tagore, Nehru				35.00
31.	Hindi for Civil Services (with upto-date solved papers)				130.00
32.	Ancient And Medival History				250.00
33.	Modern India	120.00	34.	World History	185.00
35.	General Sociology	130.00	36.	Society in India	165.00
37.	Political Theory & Indian Politics (Section A)				220.00
38.	Indian Government & Politics (Section B)				350.00
39.	Comparative Politics and International Relations				300.00
40.	Foreign Policy of India (Revised Edition)				130.00
41.	Foreign Policy of Major Powers				150.00
42.	Indian Economy – Focus on Current Events				200.00
43.	Western and Indian Political Thinker				180.00
44.	Plato to Marx-Political Thought				180.00
45.	Indian Government and Politics				325.00
46.	International Politics				200.00
47.	World Constitutions				165.00
48.	Constitutional Development and National Movement in India				200.00
49.	Public Administration (Paper I) (Revised Ed.)				325.00
50.	Public Administration (Paper II) (Revised Ed.)				325.00
51.	UNO (Revised)	125.00	52.	गांधी, टैगोर, नेहरू	45.00
53.	भारत का इतिहास (प्राचीन तथा मध्यकालीन)				170.00
54.	आधुनिक भारत का इतिहास	90.00	55.	विश्व का इतिहास	135.00

SPECIALISED BOOKS ON CORE SUBJECTS

1.	Test of Reasoning (**S.L. Gulati**) Revised Ed.	240.00
2.	Quantitative Aptitude Test (**S.L. Gulati**)	240.00
3.	Sharp Focus MBA Mathematics (**S.L. Gulati**)	240.00
4.	Mathematics for NTSE (**S.L. Gulati**)	200.00
5.	Objective Arithmetic (Big)(**S.L. Gulati**)	220.00
6.	S.S.B. Interviews	100.00
7.	Group Discussions	90.00
8.	Advanced Essays	115.00
9.	वस्तुनिष्ठ अंक गणित (**S.L. Gulati**)	190.00
10.	आधुनिक निबन्ध (नवीन एवं सामयिक विषयों सहित)	125.00
11.	निबन्ध सौरभ (नवीन एवं सामयिक विषयों सहित)	90.00

UGC - NET / SLET - CSIR

HIGHLIGHTS OF THESE BOOKS : • according to the latest syllabus (due to the extensiveness of the syllabus, it is not practically possible to cover it completely. We have included all the important sections) • Synopsis for Paper I & II • Test Papers (based on the trends of actual papers) for Paper I, II, III • Detailed study material useful for Paper II, III • The book is a complete package. You do not require separate papers

1.	UGC Mental Ability Paper I (Thoroughly Revised Edition) (Common for all Subjects)				300.00
2.	UGC History	325.00	3.	UGC Political Science	250.00
4.	UGC Economics	280.00	5.	UGC Commerce	300.00
6.	UGC Sociology	275.00	7.	UGC English Literature	400.00
8.	UGC-CSIR Science (Paper-1 [Part A])				290.00
9.	UGC-CSIR Phy. Scs.	450.00	10.	UGC-CSIR Chem. Scs.	in press
11.	UGC-CSIR Math. Scs.	320.00	12.	UGC-CSIR Life Scs.	290.00
13.	UGC Environmental Sciences				225.00
14.	UGC Public Administration				240.00
15.	UGC Management	300.00	16.	UGC Education	250.00
17.	UGC Law	225.00	18.	UGC Geography	275.00
19.	UGC Psychology	250.00			
20.	UGC Mass Communication & Journalism (1500 pages)				650.00
21.	UGC Tourism Administration & Management (1200 pages)				525.00
22.	UGC Anthropology	280.00	23.	UGC Computer Science	300.00
24.	UGC Philosophy	in press	25.	UGC Electronic Science	in press
26.	UGC Library Science	375.00	27.	UGC Home Science	460.00
28.	UGC Physical Education	320.00	29.	UGC Woman Studies	in press
30.	UGC प्रश्न-पत्र.1 (NET) (Throughly Revised)				360.00
31.	UGC संस्कृत	375.00	32.	UGC शिक्षा शास्त्र	260.00
33.	UGC हिन्दी साहित्य	315.00	34.	UGC अर्थशास्त्र	270.00
35.	UGC राजनीति	220.00	36.	UGC इतिहास	260.00
37.	UGC वाणिज्य	260.00	38.	UGC समाजशास्त्र	225.00
39.	UGC लोक प्रशासन	275.00	40.	UGC भूगोल	450.00
41.	UGC विधि	in press	42.	UGC दर्शन शास्त्र	275.00
43.	UGC मनोविज्ञान	275.00			

LATEST RELEASES

1. **English Improvement Cource** (for all Comp. Exams based on latest trends) 220.00
2. **Quick Revision Arithmetic** (for SSC/RRB/Banking/ NTSE etc.) **S.L. Gulati** 75.00
3. **Quick Revision Intelligence Test** (**S.L. Gulati**) 75.00
4. **How to Prepare for Interviews** (Important Tips) 75.00
5. **Subjective Arithmetic** Specially for SSC main Exam. (**S.L. Gulati**) 150.00
6. **तर्क-शक्ति** 800 pages (शाब्दिक-अशाब्दिक) पूर्णतया संशोधित एवं परिवर्धित (सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए) 350.00
7. **INDIAN ECONOMY** (for all Comp. Exams.) 180.00
   Including: • National Income, • Economic Planning • Human Development • Census-2001 • Poverty in India • Unemployment in India • Agriculture in India • Industrial Development • Public Finance • Money & Banking • Inflation • Foreign Trade • International Institutions

1. Send *full value* of the order in advance. Add Rs. 30/- as postage for one book. For subsequent books add 20/- per book. *VPP order will not be executed*. The books will be despatched by Regd. Post only.
2. Advance payment may be sent by M.O./Draft. *Postal Orders will not be accepted.*
3. Our books are available at all leading book stores in India.

MO, Draft in favour of :

COSMOS BOOKHIVE (P) LTD.

Corporate Office : 831, Phase-V, Udyog Vihar, Gurgaon, Haryana-122016

Phones : 5001086, 87, 88 (prefix 95124 from Delhi)

e-mail: booksforall@bookhiveindia.com

BEWARE OF OTHER SUBSTANDARD SIMILAR BRAND NAMES. WE ARE NOT ASSOCIATED

संपादकीय

भारत के पास शायद सहकारिताओं का दुनिया में सबसे बड़ा नेटवर्क है, जो ग्रामीण क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यापारिक संगठनों के रूप में सहकारी समितियां इस वर्ष भारत में अपने जन्म के सौ वर्ष पूरे कर रही हैं। विश्व व्यापार संगठन द्वारा लाए गए विश्व व्यापार के नए दौर के परिप्रेक्ष्य में सहकारिताएं अपनी उत्तरजीविता और प्रगति के लिए एक नई दिशा और एक नए दृष्टिकोण की तलाश में हैं। भारत में, और विकसित व विकासशील देशों में भी, सहकारिताओं को मानव समाज, विशेषकर इसके ग्रामीण क्षेत्र के समग्र विकास के लिए एक क्षमतावान साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। भारत में लगभग शत्-प्रतिशत गांवों और करीब 67 प्रतिशत परिवारों की भागीदारी के साथ सहकारिताएं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान रखती हैं, डेयरी, चीनी और कृषि जैसे क्षेत्रों में सहकारिताओं ने पिछले सौ वर्षों के दौरान उल्लेखनीय प्रगति की है। इसका तात्पर्य यह कतई नहीं है कि भारत में सहकारी आंदोलन के साथ सब कुछ ठीक-ठाक है। वित्तीय, संगठनात्मक और प्रबंधकीय क्षेत्रों में वे निश्चित ही कई रुकावटों का सामना कर रहे हैं।

एक तथ्य जो सहकारिताओं पर अध्ययनों से स्पष्ट तौर पर सामने आता है, चाहे वो सहकारी बैंक हों या फिर विपणन सहकारिताएं, वो हैं उन्हें शासित और नियन्त्रित करने वाले व्यक्तियों में पेशेवर प्रबंधन दक्षता का अभाव! इसका प्रमुख कारण अत्यधिक सरकारी नियंत्रण और सहकारिताओं को स्वतंत्र निर्णय और दिशा निर्देश तय करने के अधिकारों का अभाव रहा है।

चूंकि सरकारी अधिकारियों का हित सहकारिताओं से जुड़ा हुआ नहीं होता है, इसलिए वे अपनी कार्यप्रणाली को सुधारने और सहकारिताओं की आर्थिक गतिविधियों में सेंध लगाने वाले निजी निगमित क्षेत्र से मुकाबला करने में नाकाम रहते हैं। निजी क्षेत्र द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सामना करने के लिए सहकारिताओं को अपनी कार्य संस्कृति बदलकर गुणात्मक सहकारी क्षमता को प्राप्त करना होगा।

हालांकि, सहकारिताओं पर राष्ट्रीय नीति की हाल में की गई घोषणा देश में लाखों ग्रामीण निर्धन उत्पादकों और उपभोक्ताओं के लिए अच्छा संदेश लेकर आई है। इस नीति में सहकारिताओं को लोगों की क्रियात्मक शक्ति को दिशा देने के लिए अनिवार्य सामुदायिक पहल और स्वायत्त व विकेंद्रीकृत आर्थिक उद्यम के रूप में देखा गया है। सहकारी सुधारों की दिशा में एक अन्य मील का पत्थर है राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम अधिनियम की गतिविधियों को ग्रामीण औद्योगिक सेवाओं तथा आधार ढांचे के विकास के लिए वृहत् बनाने की दृष्टि से इसमें संशोधन करना।

भारतीय सहकारिताएं स्वभाव से एकरूप नहीं हैं। इनमें से अधिकतर सरकारी वित्तपोषण पर आधारित हैं। इसलिए उदारीकरण का प्रभाव सभी सहकारिताओं पर एक नहीं होगा। उदारीकरण ने एक प्रतियोगी बाजार को जन्म दिया है और उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी एवं लागत प्रभावी तकनीकों वाले खिलाड़ी अर्थव्यवस्था में उभरकर आए हैं। भारतीय सहकारिताओं के लिए इस उभरते प्रतियोगी बाजार की चुनौतियों का सामना करने के लिए स्वयं को ढालना और परिवर्तन लाना अत्यावश्यक है। इस प्रकार, हालांकि सहकारिताएं अधिकारिता और लोगों के बीच संपत्ति के समान वितरण के लिए प्रभावी एजेंसी साबित हुई हैं, किंतु आम आदमी की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उन्हें अभी लंबा रास्ता तय करना है। स्वयं को ग्रामीण क्षेत्र के विकास का सक्षम और कुशल साधन बनाने के लिए सहकारिताओं को अपनी रणनीतियों की समीक्षा, अपनी गतिविधियों के पुनर्गठन और अपनी विचारधाराओं को पुनःपरिभाषित करना होगा।

सहकारिता का मूलमंत्र—सर्वोदय, सह-अस्तित्व, प्रतिबद्धता,
ईमानदारी, पारदर्शिता और परस्पर सहकार ।

भारतीय सहकारिता आंदोलन अतीत, वर्तमान और भविष्य

डा. पी. एन. शंकरन

किसी कारोबार को चलाने में एक–दूसरे की मदद लेने की परंपरा बहुत पुरानी है। आधुनिक सहकारिता आंदोलन की शुरुआत 1844 के अंत में रोशडेल इक्विटेबल पायनियर्स की स्थापना से मानी जाती है। प्राचीन भारत के लोगों की सामाजिक–आर्थिक गतिविधियां सहकारिता के आधार पर संचालित की जाती थीं जो चार आधारों पर निर्भर थीं। ये आधार थे– कुल, ग्राम, श्रेणी और जाति। भारत में सहकारिता आंदोलन की औपचारिक शुरुआत 25 मार्च 1904 को पारित सहकारी ऋण समिति अधिनियम से हुई।

किसी कारोबार को चलाने में एक–दूसरे की मदद लेने की परंपरा बहुत पुरानी है। आधुनिक सहकारिता आंदोलन की शुरुआत 1844 के अंत में रोशडेल इक्विटेबल पायनियर्स की स्थापना से मानी जाती है। रोशडेल सहकारी समिति बुनकरों ने बनायी थी। इसका अनुकरण कर अनगिनत समितियां इंग्लैंड और कई अन्य देशों में बनीं। इस समिति के उद्देश्य अनेक और दूरगामी महत्व के थे। इनमें कपड़े और सामान की बिक्री के लिए भंडार बनाने से लेकर सदस्यों के लिए आवासों का निर्माण, कार्यशालाएं खोलना, रोजगार देने के लिए खेती के फार्म खरीदना और आत्म–निर्भर आवासीय कालोनियां बनाना आदि शामिल था। इनमें राजनीतिक और धार्मिक निष्पक्षता होती थी। सदस्यों को सहकारिता की शिक्षा देना सहकारिता के सिद्धांतों का मूल है।

भारत में सहकारिता के परंपरागत रूप

प्राचीन भारत के लोगों की सामजिक–आर्थिक गतिविधियां सहकारिता के आधार पर संचालित की जाती थीं जो चार आधारों

फोटो : अर्चना सूद

पर निर्भर थीं। ये आधार थे– कुल, ग्राम, श्रेणी और जाति। कुल के अंतर्गत रिश्ते–नातेदार और मित्र आदि शामिल थे। ग्राम स्तर पर सहकारिता का मतलब था ग्रामसभा जो ग्रामीणों, खास तौर पर किसानों तथा हस्तशिल्पियों के विकास के लिए कार्य करती थी। श्रेणी व्यापारियों, हस्तशिल्पियों, महाजनों और ब्राह्मणों की संस्था को कहा जाता था। जाति के आधार पर सहयोग अक्सर सामाजिक कार्यों (जैसे शिक्षा, धार्मिक और धर्मादा) के लिए किया जाता था। जाति के आधार पर सहकारिताएं व्यवसायों/शिल्प–समुदायों की होती थीं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या बड़ी गंभीर हो गयी और काश्तकारों की जमीन जमींदारों के पास चले जाना एक आम बात हो गयी। राज्य की ओर से दिये जाने वाले तकावी ऋणों का अनुसरण अंग्रेजों ने किया लेकिन वे इसका अधिक उपयोग नहीं कर सके। दक्षिणी किसान राहत अधिनियम (1879), भूमि सुधार ऋण अधिनियम (1883), किसान ऋण अधिनियम (1884) ग्रामीणों की ऋणग्रस्तता को दूर करने की दिशा में उठाये गये कुछ महत्वपूर्ण कदम हैं। अधिनियमों के असफल हो जाने से किसानों की जो दुर्दशा हुई उससे किसानों को कर्ज देने के लिए वैकल्पिक एजेंसी की आवश्यकता महसूस हुई।

1892 में मद्रास सरकार ने सर फ्रेडरिक निकलसन को ग्रामीण ऋणग्रस्तता का अध्ययन करने तथा प्रेजीडेंसी में कृषि और भूमि बैंकों की प्रणाली शुरू करने की व्यावहारिकता के बारे में रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया। अपनी महत्वपूर्ण सिफारिश "फाइंड रैफीसेन" में निकलसन ने मद्रास में सहकारिता का यूरोपीय मॉडल अपनाने का सुझाव दिया। 1901 के वित्त आयोग ने भी ऋण सहकारिताओं के गठन के सुझाव की पुष्टि की। लेकिन न तो 1860 के समिति पंजीकरण अधिनियम सं. 2 में और न 1882 के भारतीय कंपनी अधिनियम 6 में सहकारिता के सिद्धांतों के अनुसार सदस्यों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए समितियों के गठन और पंजीकरण की व्यवस्था की गयी थी। 1901 में सर एडवर्ड लॉ ने सहकारी ऋण समितियों संबंधी विधेयक का प्रारूप तैयार

फोटो : अर्चना सूद

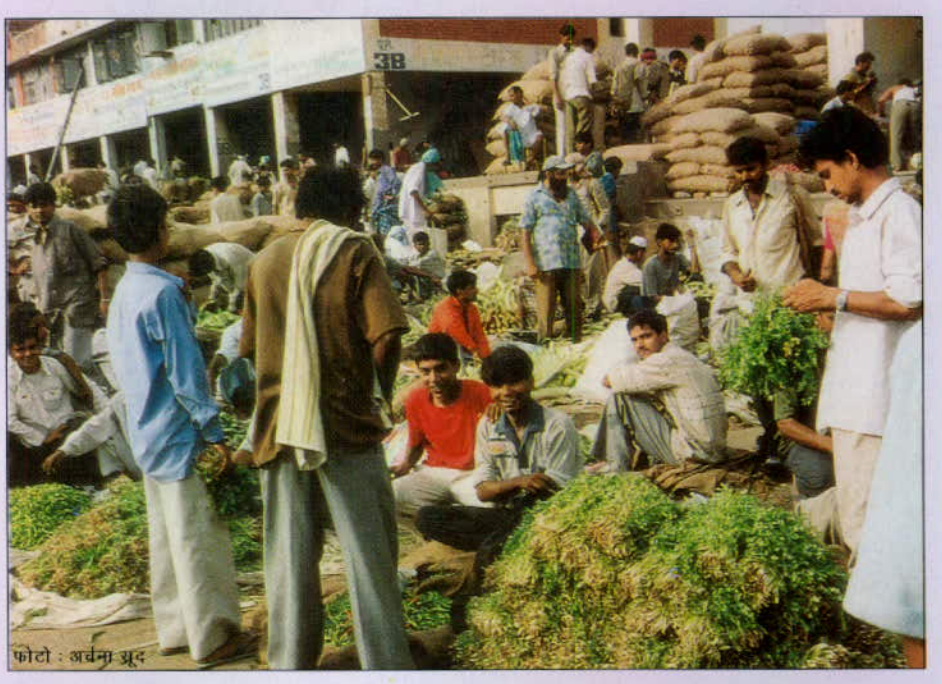

किया जिसका उद्देश्य किसानों, दस्तकारों और कम तनख्वाह पाने वाले कर्मचारियों को ऋण उपलब्ध कराकर उनकी मदद करना था। 25 मार्च 1904 को पारित सहकारी ऋण समिति अधिनियम से भारत में सहकारिता आंदोलन की औपचारिक शुरुआत हुई।

सहकारिता आंदोलन 1904–1950

हालांकि कानून में शहरी समितियों के गठन का प्रावधान था, लेकिन सहकारिता आंदोलन के पहले चरण के दौरान जो सहकारी समितियां गठित की गईं उनमें से अधिकतर ग्रामीण ऋण सहकारिताएं थीं। आंदोलन का गैर–ऋण सहकारी समितियों के क्षेत्र में विस्तार करने के लिए 1912 का सहकारी समिति अधिनियम पारित किया गया। सर ई.डी. मैकलैंगन की अध्यक्षता में गठित सहकारिता संबंधी समिति (1915) ने सहकारिता शिक्षा, लेखा परीक्षा और पर्यवेक्षण में सहयोग की आवश्यकता पर जोर दिया। 1919 के सुधार अधिनियम के बाद सहकारिता एक मंत्री के अंतर्गत प्रांतों का हस्तांतरित विषय बन गया। 1929 में धारवाड़, भरूच और पचोरा में भूमि बंधक रखने वाले बैंक बनाए गए। एक अन्य महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि औद्योगिक सहकारी संस्थाएं और सहकारी आवास समितियां बनीं। कृषि के बारे में रॉयल कमीशन ने सहकारिता आंदोलन के विकास के लिए सरकार की ओर से सहायता की जोरदार वकालत की। 1930 के दशक की महामंदी के दौर में सहकारिता आंदोलन को जबरदस्त धक्का लगा। इस दौरान देनदारियां बढ़ गयीं और कई समितियां धराशायी हो गयीं।

सहकारिता आंदोलन के इतिहास में 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना (इसके अंतर्गत कृषि ऋण विभाग का गठन) एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सहकारिता आंदोलन ने जोर पकड़ा। इस अवधि में गैर–ऋण समितियों की ओर रुझान भी दिखाई दिया। देश को स्वतंत्रता मिलने और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में सहकारिता की भावना को समाहित किये जाने से भी भारत में सहकारिता आंदोलन को और बढ़ावा मिला।

आधुनिक भारत में सहकारिता आंदोलन

सामुदायिक विकास परियोजनाएं, राष्ट्रीय विस्तार सेवा और पंचवर्षीय योजनाओं से आधुनिक भारत में सहकारिता आंदोलन के लिए नये रास्ते खुले। 1954 में ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों को लागू करने से राज्य की नीति के अंग के रूप में सहकारिता को बढ़ावा देने से सहकारिता के विकास की नयी नीति की बुनियाद पड़ी। सहकारिताओं की हिस्सा पूंजी में राज्य की भागीदारी की नीति का समर्थन सहकारी कानून समिति (1956–57), राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रस्ताव

(1958), सहकारिता के बारे में समिति (1964) सहकारिता कानून व सहकारिता सिद्धांत (1973) और राष्ट्रीय सहकारिता नीति प्रस्ताव में किया गया और इससे सहकारी संस्थाओं पर सरकार का नियंत्रण और मजबूत हुआ। विभिन्न राज्यों में सहकारिताओं के नियमन के लिए सरकार ने बहुराज्यीय सहकारी समिति अधिनियम (1984) पारित किया। 1987 में सहकारिताओं में प्रबंधन के लोकतांत्रीकरण और व्यावसायीकरण के लिए सहकारी कानून समिति का गठन किया गया जिसने सहकारिता व्यवस्था को सुदृढ़ करने के अनेक सुझाव दिये। योजना आयोग ने आदर्श सहकारिता कानून का प्रारूप तैयार करने के लिए चौधरी ब्रह्म प्रकाश के नेतृत्व में विशेषज्ञ समिति का गठन किया। इस आदर्श कानून में सहकारिता को एक ठोस आकार देने, सहकारी प्रणाली के विकास के लिए समन्वित सहकारी ढांचा तैयार करने में मदद करने, विभिन्न स्तरों पर संघीय संगठनों के सदस्यों के प्रति और अधिक संवेदनशील तथा उत्तरदायी बनाने, सरकारी नियंत्रण तथा हस्तक्षेप कम–से–कम करने, सहकारिताओं और उनमें काम करने वालों में आत्मनिर्भरता तथा आत्म–विश्वास जगाने के उद्देश्य से उन्हें निर्णय करने का अधिकार प्रदान करने और सहकारिताओं का राजनीतिकरण बंद करने पर जोर दिया गया।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण और उदारीकरण के परिणामस्वरूप बदले हुए परिदृश्य में सहकारिताओं की भूमिका को नया आयाम मिला। राष्ट्रीय सहकारी नीति न होने तथा इन संस्थाओं को एक समान अवसर प्राप्त न होने से सहकारी क्षेत्र पहली (1991) और दूसरी पीढ़ी के आर्थिक सुधारों का पूरा–पूरा लाभ नहीं उठा सका। आज कई सहकारिताएं महत्वपूर्ण सहकारी उपक्रमों के रूप में उभर कर सामने आ रही हैं और इनमें से कई बहु–राज्य सरकारी समिति अधिनियम के तहत पंजीकृत नहीं हैं। बाजार में निजी उपक्रमों के साथ प्रतिस्पर्धा के लिए एक समान अवसर दिये जाने की भी आवश्यकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने प्रो. वाई.के. अलघ की अध्यक्षता वाली समिति (सहकारी कारोबार को कंपनी में परिवर्तित करने के लिए उच्च स्तरीय समिति, 2000) की सिफारिश पर कंपनी कानून के तहत उत्पादक कंपनी संबंधी एक वैकल्पिक कानून बनाया है। उत्पादन कंपनी अधिनियम अन्य व्यावसायिक उपक्रमों की तरह सहकारिताओं को एक केंद्रीय कानून के तहत लाता है। लेकिन इसके लिए शर्त यह है कि सहकारी समिति की आम सभा दो तिहाई बहुमत से उत्पादक कंपनी में परिवर्तित करने के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दे। यह तर्क दिया जाता है कि नया कानून सहकारी ढांचे की संस्थागत तथा सैद्धांतिक शक्ति को कंपनी कानून के लचीलेपन, स्वायत्तता और अनुशासन के साथ समन्वित करने के लिए बनाया गया है। इस दौरान सहकारी ऋण संबंधी विशेषज्ञ समिति (कपूर समिति, 2000) ने ऋण क्षेत्र से जुड़े विशिष्ट मुद्दों पर विचार किया।

सारणी–1

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारिता का हिस्सा

• सहकारिताओं द्वारा दिये गये कृषि ऋण	46.15%
• सहकारिताओं द्वारा दिये गये उर्वरक (60.49 लाख टन)	36.22%
• उत्पादित उर्वरक (32.93 लाख टन) एन एंड पी पोषक तत्व	27.65%
• चीनी उत्पादन (32.93 लाख टन)	69.00%
• गेहूं की खरीद (45.01 लाख टन)	31.8%
• चारा उत्पादन/सप्लाई	50%
• फुटकर उचित दर दुकान (शहरी + ग्रामीण)	22%
• कुल दूध उत्पादन की तुलना में इसकी खरीद	7.44%
• बिक्री योग्य फालतू दूध की तुलना में इसकी खरीद	10.5%
• आइसक्रीम उत्पादन	45%
• तेल विपणन (ब्रांड वाला)	50.0%
• सहकारी करघों में पूनियों की कुल संख्या (35.18 लाख)	9.5%
• सूती धागा/कपड़ा उत्पादन	23%
• सहकारी क्षेत्र में हथकरघे	55%
• सहकारिता के अंतर्गत मछुआरे (सक्रिय)	21%
• भंडारण सुविधा (ग्राम स्तरीय पीएसीएस)	65%
• प्रत्यक्ष रोजगार के कुल अवसर	10.7 लाख
• व्यक्तियों के लिए स्वरोजगार	1.43 करोड़
• स्व उत्पादित (18266 मीट्रिक टन)	7.6%

स्रोत – द को–आपरेटर, जून 2004

सहकारिता के बारे में राष्ट्रीय नीति

सहकारिताओं की आंतरिक और संरचनात्मक कमजोरियों, व्यापक क्षेत्रीय असंतुलनों तथा उन्हें समुचित नीतिगत सहायता न मिलने से उनका सकारात्मक प्रभाव समाप्त हो जाता है। इससे सहकारिताओं के बारे में स्पष्ट राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता उजागर हो जाती है। सरकार ने अप्रैल 2002 में सहकारिता के बारे में जिस राष्ट्रीय नीति की घोषणा की है उसका उद्देश्य और विशेषताएं इस प्रकार हैं– इसके अंतर्गत सहकारिताओं को आवश्यक सहायता, प्रोत्साहन और सहयोग प्रदान किया जाएगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे स्वायत्त, आत्म–निर्भर और लोकतांत्रिक तरीके से संचालित ऐसी संस्थाओं की तरह कार्य कर सकें जो अपने सदस्यों के प्रति उत्तरदायी हों और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान कर सकें। राष्ट्रीय सहकारिता नीति का उद्देश्य 1995 की अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता गठबंधन की मानचेस्टर घोषणा के आधार पर सहकारिता के सभी कार्यों का सुचारू रूप से संचालन करना है। इस घोषणा में स्वैच्छिक और मुक्त सदस्यता, सदस्यों पर लोकतांत्रिक तरीके से नियंत्रण, सदस्यों की आर्थिक भागीदारी, स्वायतता और स्वतंत्रता, शिक्षा, प्रशिक्षण व सूचना, सहकारिताओं के बीच सहयोग और

समाज के प्रति सरोकार का लक्ष्य रखा गया है। इस नीति में निम्नलिखित पर जोर दिया गया है :

- सहकारिता ढांचे में नई जान फूंकना,
- क्षेत्रीय असंतुलन कम करना,
- शिक्षा, प्रशिक्षण और मानव संसाधन विकास को सुदृढ़ करना,
- सदस्यों की अधिकाधिक भागीदारी, और
- प्रतिबंधात्मक नियामक व्यवस्था को दूर करना।

राष्ट्रीय सहकारिता नीति में सहकारिताओं को लोगों की सृजनात्मक क्षमता का उपयोग करने की दिशा में मूलतः एक सामुदायिक पहल बताया गया है। इसके अलावा इन्हें स्वायत्त, लोकतांत्रिक तरीके से संचालित, विकेंद्रीकृत, आवश्यकताओं पर आधारित और टिकाऊ आर्थिक उपक्रम बताया गया है। लेकिन सहकारिताएं, सार्वजनिक नीति, खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में इस नीति पर अमल का प्राथमिकता वाला माध्यम बनी रहेंगी।

प्रतिबंधात्मक प्रावधानों को हटाने और सहकारिताओं के प्रबंधन में व्यावसायिकता लाने के लिए बहु–राज्यीय सहकारी समिति अधिनियम 1984 में संशोधन के लिए एक विधेयक पारित किया गया है। सहकारिता में सुधार की दिशा में एक अन्य मील का पत्थर राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम अधिनियम में किया गया संशोधन है जिसके माध्यम से निगम की गतिविधियों का आधार व्यापक बनाया गया है और ग्रामीण औद्योगिक सेवाओं के तहत बुनियादी ढांचे के विकास को इसमें शामिल किया गया है।

सहकारिता की स्थिति : 2004

भारत में विभिन्न प्रकार की 545 हजार सहकारिताएं हैं जिनकी सदस्य संख्या लगभग 23 करोड़ है जो दुनिया में सबसे अधिक है। देश के शत प्रतिशत गांव और 75 प्रतिशत परिवार इसके दायरे में आते हैं। सारणी–1 से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सहकारिता ने शानदार प्रगति की है:

भारतीय सहकारिता में विकास संबंधी मुद्दे

पिछले 100 साल से भी अधिक समय से (1904–2004) सहकारिता ने देश के लिए, खास तौर पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए व्यापक योगदान किया है। उनकी उपलब्धियों और उनके जबरदस्त फैलाव के बावजूद सहकारिताओं के समक्ष कई वित्तीय, संगठनात्मक और प्रबंधन संबंधी मसले हैं। आर्थिक सुधारों, वैश्वीकरण, विश्वव्यापार संगठन व्यवस्था आदि के संदर्भ में कुछ बातें सहकारिता के विकास के लिए प्रासंगिक बनी हुई हैं जो इस प्रकार हैं:

- प्रतिस्पर्धा और उदारीकरण के युग में क्या सहकारिताएं अपना अस्तित्व बनाए रख सकती हैं?
- क्या सरकार सहकारिताओं को सहायता और सहयोग जारी रखेगी?
- भारतीय राष्ट्रीय सहकारिता संघ ने सहकारिता को सफल बनाने के लिए उनकी गतिविधियों के निम्नलिखित क्षेत्रों की पहचान की है।
- कृषि–ऋण, विपणन, कृषि–आधारित उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण
- पशुपालन और डेयरी
- ग्रामीण विकास, गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तिकरण
- सिंचाई, पर्यावरण संरक्षण
- ग्राम और लघु उद्योग, ग्रामीण विद्युतीकरण
- जनजातियों का विकास

अर्थव्यवस्था में हुए बदलावों के संदर्भ में भारत में सहकारिता के एक सौ साल पूरे होने के अवसर पर 2004 में मनाए जा रहे समारोह का मुख्य विषय है : **स्वायत्त और प्रतिस्पर्धा सहकारिताओं की परिकल्पना को साकार करने के लिए सुधार की दिशा में पहल।** इस कार्यक्रम के अंतर्गत सहकारिता के विकास (1904–2004) पर एक स्मारिका का प्रकाशन, सहकारिता की परिकल्पना 2015 पर एक दस्तावेज, अनुसंधान अध्ययन/केस स्टडी, सफलता की कहानियां, स्मारिका, सेमिनार, व्याख्यान, प्रदर्शनी और प्रचार–प्रसार कार्यक्रम आदि शामिल हैं।

आत्म–निर्भर सहकारिताएं

अब तक इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि नियंत्रण मुक्त मूल्य प्रणाली और विपणन व्यवस्था का सहकारिता की बाजार भागीदारी पर कोई असर पड़ा है। लेकिन इस बात के संकेत हैं कि नियंत्रित बाजार में काम करने की अपनी परंपरा के कारण सहकारिताओं को प्रतिस्पर्धा बाजार वाले माहौल के अनुसार अपने आप को ढालने में परेशानी हो सकती है। एक दृष्टिकोण के अनुसार नियंत्रित विपणन और मूल्य प्रणाली को समाप्त करने की वर्तमान प्रक्रिया से (जो कई देशों की विशेषता रही है) सहकारिताओं की आवश्यकता और क्षमता और बढ़ गयी है। आवश्यकता उत्पन्न होने का कारण सहकारिताओं और कृषक समूहों की क्षमता है जिसके बल पर वे निजी क्षेत्र के अन्य उपक्रमों के समक्ष संतुलनकारी शक्ति का कार्य कर सकते हैं।

इस तरह वे किसानों और कमजोर वर्गों को अनुचित तौर–तरीकों से बचा सकते हैं। इधर नौ राज्यों (आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, उड़ीसा, बिहार, झारखंड, जम्मू–कश्मीर और उत्तरांचल) में नये जमाने की आत्म–निर्भर सहकारिताओं की शुरुआत हुई है जो दुनियाभर में सहकारी क्षेत्र में बह रही सुधार की बयार का नतीजा है। आत्मनिर्भर सहकारिता संबंधी कानून के माध्यम से उन सभी सहकारिताओं को उनके द्वारा वांछित स्वायत्तता प्रदान करने का प्रयास किया गया है जिनमें सरकार की हिस्सा पूंजी नहीं है। इसमें सहकारिताओं को अपना काम–काज करने के लिए वे सभी स्वतंत्रताएं देने की गारंटी दी गयी है जो इस समय अन्य प्रकार के उपक्रमों को मिली हुई हैं, लेकिन नई सहकारिताओं को उचित प्रबंधन, निगरानी और विस्तार संबंधी सहायता की राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर आवश्यकता है। इससे उन्हें राज्यों पर निर्भर सहकारिताओं का सक्षम विकल्प बनकर सामने आने में मदद मिलेगी। भारतीय सहकारिता आंदोलन का शताब्दी समारोह (2004) देश में इसकी उपलब्धियों और विफलताओं का आकलन करने का एक अवसर होगा। इसमें एक ऐसी रूपरेखा तैयार की जा सकेगी जिससे नई सहस्राब्दि में सहकारिताओं को टिकाऊ और आत्मनिर्भर बनाया जा सकेगा। ❑

(लेखक सेंट जोसेफ कालेज ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन, बंगलौर में ग्रामीण प्रबंधन पीठ में प्रोफेसर हैं।)

Rahul's IAS

a blue print of success.

विधि

लोक एवं न्यायिक सेवा परीक्षाएं

हमारी उपलब्धियाँ:

Alok Ranjan Jha, 1st Rank, IAS - 2001

Sameer Verma, 32nd Rank, IAS - 2001

Mayank Joshi, 4th Rank, IAS - 2002

Anvita Sinha, 137th Rank, IAS - 2002

Surat Singh Malik, E.T.O., Haryana C.S.

Mandip Singh Brar, 236th Rank, IAS - 2003

Nihal Chand Arora 5th Rank, Raj. Judicial Services '03

Ashka Rao 37th Rank, Raj. Judicial Services '03

उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा (प्रारम्भिक-2004) में 98 में से 82 अभ्यर्थी उत्तीर्ण।

हमारा शिक्षक दल:

1. **श्री राहुल** (निदेशक एवं स्थापक)
2. **प्रो. आर.सी. श्रीवास्तव**
3. **प्रो. अमित दुबे**
4. **प्रो. माता प्रसाद मिश्रा**
5. **श्री निहाल चन्द अरोड़ा** (राज. न्यायिक परीक्षा-5वां स्थान)

यह दल अपने आप में ज्ञान, अनुभव, भाव एवं कर्त्तव्यपरायणता का अद्वितीय एवं अनूठा समागम है।

पाठ्यक्रम प्रारम्भ (चक्रीय प्रणाली में) **03.10.2004 - Batch I**
28.10.2004 - Batch II

पाठ्यक्रम विस्तार :
1. न्यायिक परीक्षा (मुख्य एवं प्रारम्भिक - यू.पी., दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं अन्य राज्य)
2. लोक सेवा परीक्षा प्रारम्भिक एवं मुख्य परीक्षा - 2005

आदरणीय राहुल सर,

Nihal Chand Arora 5th Rank, Raj. Judicial Services-03

बड़े हर्ष के साथ मैं आपको सूचित कर रहा हूं कि मेरे अथक परिश्रम एवं दृढ़ संकल्प एवं आपके मार्गदर्शन का फल आज मुझे प्राप्त हुआ है।

अन्य अभ्यर्थियों से आज मैं बड़े गर्व एवं पूरी आस्था और विश्वास के साथ यह कह सकता हूं कि **'विधि' के मार्गदर्शन के लिए राहुल्स I.A.S. भारत की सर्वश्रेष्ठ संस्था है।** इस संस्था की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशिष्टता सिर्फ उत्कृष्ठ शिक्षण एवं मार्गदर्शन ही नहीं बल्कि यहां के शिक्षकों एवं समस्त **Staff** की आत्मीयता एवं स्नेह भी है। किसी भी परिस्थिति में कोई अभ्यर्थी अपने आप को अकेला नहीं पाता। तैयारी तो हर कोई करता है परन्तु पूर्ण आत्मविश्वास के साथ तैयारी राहुल्स **I.A.S.** में ही करायी जाती है।

हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों ही माध्यमों में एक ही शिक्षक दल द्वारा पृथक कक्षाओं में उसी तत्परता से मार्गदर्शन यहां की एक और विशिष्टता है।

आपके मार्गदर्शन एवं स्नेह के लिए धन्यवाद। मैं इस संस्था के विद्यार्थियों को अपना मार्गदर्शन देते रहने को तत्पर हूं।

आपका

(निहाल चन्द अरोड़ा)

B-9, Ist Floor, Commercial Complex, Above Bank of Maharashtra, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-9.
Ph.: 011-27655845, 9212053797. Cell.: 9811195920 • e-mail : rahuls_ias@rediffmail.com

राहुल सर से सीधी बात के लिए रात में 9.00 - 11.30 के मध्य 011-33139114 पर फोन करें।

सहकारी समितियां उभरते मुद्दे और चुनौतियां

संजीव चोपड़ा

यह वर्ष सहकारी समितियों का शताब्दी वर्ष है। इसलिए यह एक उपयुक्त समय है कि इस क्षेत्र में उभरते मुद्दों और चुनौतियों का आकलन किया जाए, यह पड़ताल की जाए कि क्या प्राप्त हुआ, बल्कि ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि देखा जाए कि क्या कुछ हासिल किया जा सकता था और वो कारण खोजे जाएं जिनसे उत्पादन व्यवस्था में नाकामी ने अपना स्थान सुनिश्चित कर लिया। इसके अलावा, हमें सहकारी समितियों के राज्य और बाजार के संस्थानों के मिलन–बिंदु को भी समझना होगा।

फोटो : अतुल परमार

हालांकि आपसी सहयोग मानव की प्रगति और विकास के लिए बहुत हद तक नींव का पत्थर साबित हुआ है, पर संविधान के तहत, औपचारिक वैधानिक संस्थान के रूप में कोआपरेटिव्स यानी सहकारी समितियां सिर्फ सौ साल पुरानी भर हैं। यह वर्ष सहकारी समितियों का शताब्दी वर्ष है। इसलिए यह एक उपयुक्त समय है कि इस क्षेत्र में उभरते मुद्दों और चुनौतियों का आकलन किया जाए, यह पड़ताल की जाए कि क्या प्राप्त हुआ, बल्कि ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि देखा जाए कि क्या कुछ हासिल किया जा सकता था और वो कारण खोजे जाएं जिनसे उत्पादन व्यवस्था में नाकामी ने अपना स्थान सुनिश्चित कर लिया। इसके अलावा, हमें

सहकारी समितियों के राज्य और बाजार के संस्थानों के मिलन–बिंदु को भी समझना होगा। और साथ ही, इस बात पर भी विचार करने की जरूरत है कि सहकारी समितियां एक उत्तर आधुनिक उत्पादन व्यवस्था से ऐसा तालमेल बनाएं जिसमे ऑनलाइन जानकारी बेहद कम कीमत पर उपलब्ध हो। एक और विचारणीय बिंदु यह उभरा है कि डब्ल्यूटीओ की इस सत्ता व्यवस्था में सहकारी समिति संगठनों की क्या भूमिका हो जो सिर्फ एक ही भाषा समझती है : प्रतियोगिता, प्रतियोगिता और खूब प्रतियोगिता।

उधर घरेलू मोर्चे पर, सहकारिता की सबसे ज्यादा गौरतलब सफल मिसालें किसी उत्पाद को पैदा करने के क्षेत्र में रही हैं। (दूध, गन्ना, फल और सब्जियां), फसल के लिए उत्पाद (उर्वरक), ढांचागत निर्माण (हाउसिंग) और लघु ऋण। ये ही वो अच्छे उदाहरण हैं जो अक्सर सहकारी समितियों के बारे में बात करते वक्त दिए जाते हैं। लेकिन इन्हीं में, इधर नए–नए दौड़ में शामिल हुए और कुछ हद तक ज्यादा निपुण खिलाड़ियों की उछाली गई चुनौतियों को देखें तो सहकारी समितियों पर सिर्फ 'ये भी हैं' जैसे हाशिए पर खड़े खिलाड़ियों में तब्दील होने का खतरा मंडराने लगेगा। इसकी वजह यह है कि पिछले पांच से भी ज्यादा दशकों में, सरकारी नीतियों ने सहकारी समिति को महज सरकार द्वारा निर्देशित सामान और सेवाएं उपलब्ध कराने का 'माध्यम' भर बनाकर रख छोड़ा है। जबकि इसके जरिए कुछ वो सामयिक काम किए जाने थे जो सदस्यों की नजर में तुरंत कारवाई करने लायक थे। यह सच है कि हाल में कुछ राज्यों में चंद साहसी कदम उठाए गए हैं, खासतौर पर आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, उत्तरांचल और मध्य प्रदेश में। लेकिन आंध्र प्रदेश और उत्तरांचल इनमें अपवाद हैं क्योंकि बाकी जगह सहकारी समितियों को राज्य के नियंत्रण को हटाकर सदस्यों के नियंत्रण में लाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कोई वास्तविक प्रयास नहीं किए गए।

इससे पूर्व, मैं मुद्दों और चुनौतियों की भारतीय संदर्भ में चर्चा करूंगा, एक बुनियादी प्रश्न उठाना बहुत अहम है : सहकारी समिति कब सामने आईं ? वो कैसे सफल हुईं ? और एक खास मुकाम पर पहुंचने के पश्चात् वो सहकारी समिति सरीखे मॉडलों के आगे पस्त क्यों हुईं ?

मेरे विचार से, इसका उत्तर कुछ यों है। उत्पादन और सेवा से जुड़ी, दोनों तरह की सहकारी समितियां, बाजार और राज्य की विफलता को समाज की ओर से दिए गए जबाब के तौर पर मौजूद था। उनका प्रवेश उस काल बिंदु पर हुआ था जब किसी क्षेत्र में न तो मात्रा, न तकनीक और न ही बाजार में पैठ जैसे कदमों को कोई आर्थिक समझ मानता था अथवा जब राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था की पकड़ भी उतार–चढ़ाव भरी स्थितियों की भरपाई करने में विफल थी और जब क्षतिपूर्ति तंत्र छोटे उद्यमी के खिलाफ बेहद पूर्वाग्रहों से भरा था।

इस पृष्ठभूमि में, आइए, देश के दो सबसे ज्यादा फैले सहकारी समिति नेटवर्क की पड़ताल करें – डेयरी नेटवर्क या अमूल पैटर्न जैसोकि उसे लोकप्रियता हासिल है और कृषि ऋण प्रदाता प्रणाली। दोनों सहकारी समितियां चुनौतियां झेल रही हैं – अपने भीतर से भी और उन नए खिलाड़ियों से भी जिन्होंने उनके मर्मस्थल में घुसना शुरू कर दिया है, अपनी रणनीतियां उपयोग में ला रहे हैं, खर्च घटा रहे हैं और ज्यादा कारगर सेवाएं दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त, इनमें से कई ने तकनीकों और अपने बेहतर संपर्क जाल से अनुपात और अवसरों की अर्थव्यवस्था को वैसे ही बदल डाला है जैसाकि सहकारी समिति के मूलभूत सिद्धांतों के संदर्भ में पारंपरिक रूप से बताया जाता रहा है।

दूध की सहकारी समिति क्या कर रही थीं ? ये सहकारी समितियां किसान को एक सेवा प्रदान कर रही थीं। ये समितियां किसान के दरवाजे से या उसके घर के बेहद नजदीक से, एक दिन में दो बार, निष्पक्ष और पारदर्शी ढंग से प्रामाणिक गुणवत्ता मापदंडों के अनुसार कीमत देकर उसका दूध खरीदने में जुटी हुई थीं। कीमत की अदायगी का पूरा भरोसा वहां था और तकनीकी जरूरतें – कृत्रिम गर्भाधान, पशुचिकित्सक संबंधी सेवाएं, पशुओं की अतिरिक्त खुराक आदि लागत मूल्य पर पूरी करने की व्यवस्था थी और अक्सर इन्हें दूध की कीमत के बदले समायोजित किया जाता था। अमूल ने एक बेहद कारगर व्यवस्था बनाई और अपनी इस उपलब्धि को गर्व के साथ पूरे विश्व को दिखाया। लेकिन, जैसे ही और उद्यमियों के लिए राहें खुलीं, निजी क्षेत्र के कई उद्यमियों ने भी यही सेवाएं आरंभ कर दीं और कई बार वे बेहद कारगर साबित हुए। यहां तक कि वे किसान को अधिक मूल्य देकर सेवाएं लेते भी देखे गए। दो दशक पहले, इस क्षेत्र में निजी उद्यमियों के प्रवेश पर खासी पाबंदियां थीं। मैट्रो शहरों में सांगठनिक रूप से दूध की आपूर्ति केवल सरकार द्वारा संचालित दुग्ध योजनाओं के तहत ही होती थी जिसमें नागरिकों को मिल्क बूथ पर पंक्ति में खड़े होकर दूध लेना पड़ता था। उन्हें या तो राशन कार्ड दिखाकर दूध लेना पड़ता था या फिर मदर डेयरी से। बल्कि, मदर डेयरी के बूथ तो खासी राहत का सबक बन गए थे क्योंकि कोई भी वहां से कितनी ही मात्रा में दूध खरीद सकता था। मदर डेयरी और सरकार की दुग्ध योजनाओं की अधिकतर दूध की आपूर्ति सहकारी समितियां करती थीं। कीमतें नियंत्रण में रखी जाती थीं और मांग आपूर्ति की स्थिति को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ताओं को टोंड या डबल टोंड दूध मिलता था।

इन स्थितियों में, एक सुव्यवस्थित व नियंत्रित प्रणाली के तहत दुग्ध सहकारी समितियां लगातार फलती–फूलती रहीं। जिसमें एनडीडीबी की अग्रणी टीम लगातार इन पर नजर रखती थी। एनसीसीएफ मिल्क पाउडर की सप्लाई करती थीं और राज्यों की फेडरेशन ने चुनींदा क्षेत्रों में इकट्ठा करके आपरेशन फ्लड को बढ़ावा देने के लिए करार किए थे। इससे भारतीय किसानों के जीवन में सकारात्मक योगदान की निराली मिसाल पेश कर सहकारी समितियां भारतीय डेयरी क्षेत्र में अग्रदूत बन कर छा गई। डीएसई, आईआरएमए, कॉर्नेल, आईडीएस जैसे संस्थानों ने इस प्रयोग का अध्ययन किया और प्रयोगाश्रित शोध करके इसे सुनहरे भविष्य का मॉडल कहा और अमूल, जीसीएमएफ और एनडीडीबी के सृजक व संरक्षक डा. वी कुरियन के नाम पर तब स्तुति गीत भी लिखे गए। क्लाड अल्वेयर्स सरीखे कुछ विरोध के स्वर भी उठे, लेकिन उन्हें शोधकर्त्ताओं व राष्ट्रीय मीडिया ने नजरअंदाज कर दिया।

हालांकि, आज स्थितियां बिल्कुल अलग नजर आ रही हैं। एनडीडीबी और जीसीएमएफ ने अपने सींग इस मुद्दे पर उलझा लिए हैं कि

किसानों की बेहतरी के लिए किस तरह की सहकारी समिति बने। डा. अमृता पटेल की अगुवाई में कार्यरत एनडीडीबी का मानना है कि एक खुली अर्थव्यवस्था के माहौल में, दुग्ध सहकारी समितियों की सफलता की एकमात्र राह रही है कि वो उन मार्केटिंग संगठनों से अनुकूल गठबंधन स्थापित करें जो उपभोक्ता का दिमाग पढ़ना जानती हो और जो राष्ट्रीय व वैश्विक बाजार में अपना तंत्र स्थापित कर सकें। वैश्विक प्रतिस्पर्धी शक्तियां वैश्विक उत्पाद निर्माताओं और राष्ट्रीय उपभोक्ता संगठनों के बीच रणनीतिक तालमेल करती हैं। छोटी सहकारिताओं के लिए यह संभव नहीं है, न ही राज्य के ब्रांडों के लिए बाजार में दुग्ध उत्पादों के बढ़ते चलन को देखते हुए, जहां मूल्य और गुणवत्ता विज्ञापन और ब्रांड जागरूकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, बिल्कुल ही संभव नहीं है। चूंकि नियमन मापदंड स्थापित हो चुके हैं और प्रत्येक चरण पर मूल्य निर्धारण प्रणाली को समझना भी सरल हो गया है, ऐसे में सहकारी समितियों की ईमानदारी भरे व्यापार, पारदर्शिता और आसान लेन–देन को लेकर एकाधिकारवादी छवि को निजी क्षेत्र में भी कई अनुसरण करने वाले मिल भी गए हैं। इसलिए रणनीति के संचालन के स्तर पर जहां निजी क्षेत्र सहकारी समितियों के सभी विशिष्ट गुणों को अपनाने की स्थिति में हैं, उसके विपरीत भी सच है ऐसा नहीं है। सहकारी समितियां अपने प्रतिद्वंद्वियों की तुलना में ज्यादा लचीली नहीं बन पा रहीं क्योंकि उनका सांगठनिक ढांचा और सरकारी दखल, इसकी गुंजाइश नहीं छोड़ता। यही नहीं, इसमें उनकी वो कर्त्तव्य भावना भी आड़े आ रही है जो सिर्फ उपभोक्ता के बारे में सोचती है जबकि असल में जिस पर दांव टिका है, वो उत्पादक ही है। इसलिए एनडीडीबी का प्रस्ताव है कि राज्य फेडरेशनों के साथ मिलकर अतिरिक्त दूध को खींच लिया जाए और राष्ट्रीय ब्रांड– मदर डेयरी के लिए उस दूध के उत्पाद बनाए जाएं। हालांकि, सहकारी समिति के रूप में अवतरित होने की बजाए, अब रूझान यह है कि कंपनी एक्ट संशोधन करके उसके तहत उत्पादक कंपनी बना ली जाएं। बल्कि मेरा यह मानना है कि आने वाले कुछ ही वर्षों में कृषि व्यवसाय क्षेत्र में अनेकों उत्पादन कंपनियां प्रमुख खिलाड़ियों के रूप में उभर कर आएगी।

अब कृषि ऋण क्षेत्र की पड़ताल करके देखें। नाबार्ड का लगातार प्रयास और जोर रहा है कि ग्रामीण ऋण की मात्रा में कई गुणा बढ़ोतरी हो। इसके लिए वो सहकारी समितियों की मदद लेता रहा है। परंतु तथ्य यह है कि पूरी अर्थव्यवस्था में कृषि ऋण का अनुपात लगातार घट रहा है। इसके कारण साफ हैं। उत्पादन और सेवा क्षेत्रों में जो विकास की गति है, उसने कृषि क्षेत्र में विकास को बहुत पीछे छोड़ दिया है। शुरुआती कृषि ऋण व्यवस्था एग्री प्रोसेसिंग और निर्धारित मूल्य में नए आकर्षण जोड़ना सरीखे नए पहलुओं को शामिल नहीं मानती, लिहाजा चीनी की मिलें, फूड पार्क, जैव प्रौद्योगिकी से जुड़े उद्यम और फार्म के उपकरण वगैरह उद्योग में शुमार किए जाते हैं न कि कृषि में। और ये सवाल चलिए एकबारगी छोड़ भी देते हैं कि एग्रो प्रोसेसिंग के लिए ऋण को कृषि के तहत दिया जाए या उद्योग क्षेत्र के तहत, तो भी, एक और विवाद मुंह बाए सामने खड़ा है। स्थिति यह है कि कृषि ऋण क्षेत्र के तहत भी सहकारी समितियों की भागीदारी बढ़ने से रुक गई है और अस्सी के उत्तरार्द्ध में ऊंचाइयां छूने के बाद से सहकारी समितियों का इस क्षेत्र में दखल धीरे–धीरे कम हो रहा है और राष्ट्रीय व निजी क्षेत्र के बैंकों का आक्रामक दखल बढ़ गया है। जैसे–जैसे किसान क्रेडिट कार्ड लोकप्रिय होने लगे और ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय मदद का विनिमय साध्य होने से किसानों को कई नई संभावनाओं का पता चला, इसने पीएसीएस की इमारत की चूलें हिलाकर रख दीं। यही वो इमारत थी जो किसानों की ऋण की आपूर्ति के लिए व्यवस्था करती थी और उसके उत्पादों की मार्केटिंग के सूत्रों को जोड़े रखती थी। निर्यात के लिए ठेके पर खेती की व्यवस्था की शुरुआत हो या स्थापित ब्रांडों से जुड़े एग्रो प्रोसेसिंग उद्यमियों के लिए की जाने वाली खेती हो– इन्होंने किसानों को चयन के नए रास्ते दिए। लेकिन साथ ही, इन नई संभावनाओं ने किसानों को गुणवत्ता के उन मापदंडों के साथ बांध दिया जोकि पारदर्शी थे यानी सबके आगे साफ व खुले थे।

इन हालात में हम कहां पहुंचेंगे ? क्या हम राज्य के नेतृत्व में काम करने वाली सहकारी समितियों की स्थिति में बाजार के इशारे पर चलने वाली सहकारी समितियों में तब्दील होने की तरफ हैं। क्या इसकी वजह यह है कि एक एग्रो–प्रोसेसर को भी यह लगता है कि प्रत्येक किसान से व्यक्तिगत स्तर पर व्यवसाय करने से बेहतर है कि वो किसानों/ उत्पादकों के समूह से बातचीत करे। उस व्यक्ति के लिए यह भी आसान है कि वो अपने उत्पादन/ तकनीकी साधन गांव के स्तर पर ही एक जगह इस्तेमाल में ला सके।

निष्कर्ष

पहला, सहकारी समितियों के सामने मुद्दे बदल रहे हैं। इन समितियों का प्राथमिक सरोकर अब उत्पादन नहीं है बल्कि निर्धारित कीमत में ही नए आकर्षण जोड़ना और मार्केटिंग करना है। उधर राज्य का एकाधिकारी दबाव और आपूर्ति में कमी भी उपभोक्ताओं को नए विकल्पों की तलाश की राह सुझाते हैं। इसके साथ–साथ, तकनीकों की बदौलत कीमतों में कमी लाना संभव हुआ है पर चूंकि उनमें पहले से अधिक पूंजी लगती है, इसलिए पूंजी के नए स्रोतों की आवश्यकता पड़ने लगी है।

कृषि व्यवसाय के क्षेत्र में नए खिलाड़ियों की ओर से पेश चुनौतियां निश्चित रूप से गहरी हैं। इन खिलाड़ियों ने मौजूदा सहकारी समितियों के बाजार हिस्से में दांत गड़ा दिए हैं। लेकिन सहकारी समितियों का भविष्य इस पर निर्भर करना है कि वो खुद को आत्मनिर्भर और परस्पर आर्थिक सहयोग पाने वाली ऐसी इकाइयों में बदल सकें जिनके सदस्य बदल रहे व्यावसायिक वातावरण में खुद को समायोजित करने में जरा भी देर न करें। सरकारी सहकारी समितियों के दिन लद गए और पूर्ववर्ती राज्य सरकारों ने इन सहकारी समितियों को चलाने में विभागीय व्यवस्था नहीं रखी, अच्छा रहता अगर ऐसा होता। एक सहकारी समिति की बुनियादी ताकत राज्य/बाजार के संस्थानों से मिलजुलकर मोलभाव करना ताकि अपनी व आपसी मदद को आधार मिले इस पर भी कभी सवाल नहीं उठाए गए और चूंकि, कभी भी एक आदर्श बाजार या आदर्श राज्य नहीं होगा, इसलिए सहकारी समितियां सदा प्रासंगिक रहेंगी। ❑

अनुवाद : दुष्यंत कुमार

ADMISSION OPEN
15th November

लोक प्रशासन

(हिन्दी माध्यम)

By

Atul Lohiya

(A person who believes in hard work and scientific approach)

UGC-NET

QUALIFIED IN TWO SUBJECTS

HISTORY & PUB. ADMINISTRATION

Course Offered:

* Mains
* Mains + Prelims (Foundation Course)
* Test Series for Mains
* Answer Formating Session for Mains
* Test Series with Answer Formating Session
* Test Series for Prelims

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध

(पूर्णतः कम्प्यूटराइज्ड नोट्स)

MAINS - 2500/-

MAINS + PRE. - 3500/-

डाक खर्च - 200/- अतिरिक्त

Send DD/MO in favour of Atul Lohiya

UPSC के साथ *UP, MP, Raj., Bihar, Uttaranchal, Jharkhand Chhattisgarh, Haryana, Himachal PCS* की भी तैयारी

NEXT BATCH STARTS FROM 22nd NOVEMBER

'अतुल लोहिया'

शिक्षक, मार्गदर्शक और मित्र भी

Our New Branch at Allahabad

*Contact : **Sanjay Singh** (Director-Allahabad Branch)*

Cell. : 9839746184

Director - Alok Lall

"PRABHA"

AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

FLAT No. 105, 1st FLOOR, VIRAT BHAWAN (MTNL BUILDING), NEAR BATRA CINEMA, DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009 • Ph.: 27655134. CELL.: 9810651005

Branch : 305/250, COLONELGANJ, NEAR COLONELGANJ POLICE STATION, ALLAHABAD.

नये युग में सहकारिता और सहकारी बैंकों के विकास की रणनीति

कटार सिंह

नये युग में उत्पन्न नवीन चुनौतियों का मुकाबला तथा विकास कर पाने की उनकी सामर्थ्य को लेकर अनेक विद्वानों तथा नीति निर्माताओं ने गंभीर आशंकाएं व्यक्त की हैं। इस आलेख का मकसद सहकारिता, विशेषतः सहकारी बैंकों के समक्ष उपस्थित कुछ मुद्दों और चुनौतियों का समालोचनात्मक परीक्षण करना तथा उन चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यावहारिक रणनीति सुझाना है।

भारत में सहकारिता ने 1904 में अपने उदय से लेकर अबतक के सौ सालों के दौरान लंबी और कठिन यात्रा तय की है लेकिन आज भी यह चौराहे पर है। भारत के विभिन्न भागों में अपनी उपलब्धियों और अभूतपूर्व विकास के बावजूद सहकारिता अनेक वित्तीय, सांगठनिक एवं प्रबंधकीय अवरोधों और समस्याओं से ग्रस्त है। यह स्थिति विनियमों और लाइसेंसों से मुक्ति, खुलेपन, निजीकरण और वैश्वीकरण के आधुनिक युग में है। नये युग में उत्पन्न नवीन चुनौतियों का मुकाबला तथा विकास कर पाने की उनकी सामर्थ्य को लेकर अनेक विद्वानों तथा नीति निर्माताओं ने गंभीर आशंकाएं व्यक्त की हैं।

ग्रामीण ऋण उपलब्ध कराने के मामले में ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाओं की केंद्रीय भूमिका होती है। जबकि शहरी सहकारी बैंकों का लक्ष्य मध्य तथा निम्न–मध्यम आयवर्ग की बचत इकट्ठ करना तथा कमजोर वर्गों को ऋण उपलब्ध कराना होता है। ग्रामीण लोगों को ऋण उपलब्ध कराने का दायित्व यदि केवल व्यावसायिक बैंकों पर छोड़ दिया गया होता और यदि ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाओं/बैंकों का अस्तित्व नहीं होता तो अनेक ग्रामीण इलाकों में संस्थागत ऋण उपलब्ध ही नहीं हो पाता।

इस आलेख का मकसद सहकारिता, विशेषतः सहकारी बैंकों के समक्ष उपस्थित कुछ मुद्दों और चुनौतियों का समालोचनात्मक परीक्षण करना तथा उन चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यावहारिक रणनीति सुझाना है।

प्रमुख मुद्दे और चुनौतियां

इस खंड में सामान्यतः सहकारिता के तथा विशेषतः सहकारी बैंकों के सम्मुख उपस्थित कुछेक प्रमुख मुद्दों तथा चुनौतियों की संक्षेप में पड़ताल की गई है।

कॉर्पोरेट प्रशासन का अभाव

सहकारिताओं तथा सहकारी बैंकों के वैधानिक प्रशासन का ढांचा राज्य सरकारों के सहकारी समिति अधिनियम तथा भारत सरकार के बहु–राज्य सहकारी समिति अधिनियम 1984 पूर्व बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के द्वारा निर्धारित किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर शहरी सहकारी बैंकों की देखरेख एवं विनियमन की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक की होती है तथा क्षेत्रीय सहकारी बैंकों का दायित्व नाबार्ड पर होता है। क्षेत्रीय सहकारी बैंकों की देखरेख विनियमन तथा विकास के संदर्भ में कुछ हद तक रिजर्व बैंक और नाबार्ड के दायित्व एक समान होते हैं। राज्य स्तर पर ग्रामीण ऋण सहकारिता एवं रजिस्ट्रार, सहकारी समिति द्वारा पंजीकृत अन्य प्रकार की सहकारिताओं सहित क्षेत्रीय सहकारी बैंकों के निरीक्षण, विनियमन और विकास का अधिकार तथा दायित्व संबद्ध राज्य सरकार का होता है। ग्रामीण सहकारिताओं के संबंध में वस्तुतः रजिस्ट्रार ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तिहरी भूमिका का निर्वाह करता है।

सहकारी बैंकों में कॉर्पोरेट प्रशासन की कोई औपचारिक पद्धति नहीं होती। परिणाम–स्वरूप अनेक सहकारी बैंक राजनीतिक संरक्षण, बेईमानीपूर्ण वित्तीय आचरण तथा पूरी तरह कुप्रबंधन का अड्डा बन गए हैं। कुछ मामलों में तो ये जनता के पैसों पर मौज करने वाले तथा अन्य कार्यकर्ताओं की निजी जागीरदारी बन गए हैं। भारत के सहकारी बैंकों में घोटालों और कपट के अनगिनत मामले हैं। संक्षेप में, कुशासन के कारण सहकारी बैंक, राजनेता और घोटालेबाजों ने मिलकर एक विध्वंसक गैर–सामाजिक गठजोड़ बना लिया है।

अत्यधिक सरकारी नियंत्रण और संरक्षण भी कई रूपों में सहकारिता के विकास में बाधक साबित हुआ है। इसमें पेशेवर प्रबंधकों की सेवाएं न ले पाना शामिल है, जबकि उन्हें अपना वित्तीय निष्पादन बेहतर बनाने की बेहद जरूरत है। सहकारी कार्यविधि तथा प्रोन्नति संबंधी नीति न केवल सख्त और पुरानी है, बल्कि उसमें राजनीतिकों तथा अन्य निहित स्वार्थ वाले लोगों द्वारा छेड़छाड़ भी की जा सकती है। साथ ही, सहकारी संस्थाएं पेशेवर प्रबंधकों को न तो आकर्षित कर सकती हैं न ही उन्हें बनाए रख सकती हैं। इनके अतिरिक्त, सहकारी संगठनों के प्रमुख के रूप में नियुक्त सरकारी अधिकारी संगठन के सदस्यों के प्रति जवाबदेह नहीं होते, सहकारिता में उनका कोई हिस्सा नहीं होता और सहकारिता के क्रियाकलापों में रत्तीभर पारदर्शिता भी नहीं होती।

दोहरा नियंत्रण

अधिकांश सहकारी बैंकों, खासकर शहरी सहकारी बैंकों की समस्याओं की मूल वजह दोहरी नियंत्रण प्रणाली है। एक तरफ सहकारी समिति अधिनियम के तहत राज्य सरकार की ओर से रजिस्ट्रार उनके लेन–देनों के लिए उत्तरदायी होता है, तो दूसरी तरफ, बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 के तहत भारत सरकार की ओर से रिजर्व बैंक उत्तरदायी होता है। मुख्यतः नियामक भूमिका के इसी दोहरेपन के कारण सहकारी बैंकों का प्रभावी विनियमन इन दोनों नियामक एजेंसियों में से कोई भी नहीं कर पाता। कोई भी समस्या उत्पन्न होने पर राज्य सरकार रिजर्व बैंक को दोषी ठहराती है और रिजर्व बैंक राज्य सरकार को लेकिन यहां मुद्दा नियंत्रण का दोहरापन नहीं है। शहरी सहकारी बैंकों के प्रभावशाली विनियमन के मार्ग में आने वाली अधिकांश बाधाओं के लिए रिजर्व बैंक तथा राज्य सरकार के कार्यों के बीच स्पष्ट विभाजन का अभाव जिम्मेदार है।

स्वतंत्रता तथा समान अवसर का अभाव

नवीन युग की बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करने के लिए भारतीय सहकारिता को समान अवसर दिए जाने की आवश्यकता है। भारत की अग्रणी सहकारिताओं का तर्क है कि खुलेपन का लाभ केवल निजी कंपनियों को मिल रहा है। कॉर्पोरेट जगत के अनुकूल सरकार ने भारत के हाल के इतिहास में अभूतपूर्व गति से कॉर्पोरेट क्षेत्र पर विभिन्न नियंत्रण हटाकर तथा वर्तमान विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय नियमों कार्यविधियों को संशोधित कर कंपनियों को यह लाभ पहुंचाया है। जबकि सहकारिता क्षेत्र पुराने कानून, सरकार, राजनेता, नौकरशाही से मुक्ति के लिए फरियाद करता रहा है लेकिन उसे मुक्त किया जाना और स्वतंत्रता प्रदान किया जाना अभी शेष है। हालांकि निजी कॉर्पोरेट क्षेत्र से प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए उसे इसकी जरूरत है।

सहकारी संस्थाओं को अपना कार्यव्यापार संचालन के लिए उसी स्वतंत्रता की आवश्यकता है जो उनके प्रतिस्पर्द्धियों को उपलब्ध है। किस तरह यह स्वतंत्रता हासिल की जाए और किस प्रकार सरकारी नियंत्रण से मुक्ति मिले आज यह कृषि व्यापार से संबद्ध सहकारिताओं सहित सभी सहकारिताओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। इसलिए ऐसे विधायी परिवेश की रचना करने/उसमें सहायता करने की आवश्यकता है जहां सहकारी संस्थाएं न केवल जीवित रह सकें बल्कि विकास करें और विश्वास के साथ प्रतिस्पर्द्धा का सामना करें।

नेतृत्व का अभाव

अच्छा प्रशासन और नेतृत्व ये दोनों ऐसी पूर्वापेक्षाएं हैं जो न केवल किसी सहकारी संस्था की रचना और उसके पालन–पोषण के लिए आवश्यक हैं बल्कि सदस्यों तथा प्रबंधन दोनों को सहकारिता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक संकल्पना प्रदान करने, प्रोत्साहित और दिशा–निर्देशन करने के लिए भी आवश्यक हैं। प्रत्येक सहकारिता को एक ईमानदार, कुशल, शुभचिंतक और समर्पित नेतृत्व की जरूरत होती है। यह व्यक्ति वरीयतः आधारभूत हिस्सेदारों में से होना चाहिए। अच्छे नेतृत्व की आवश्यकता निर्देशक मंडल/प्रबंध समिति में सदस्यों के प्रतिनिधियों तथा प्रबंधकों सहित पेशेवर कर्मियों, दोनों के लिए पड़ती है। नेता की बुनियादी भूमिका सदस्यों को एकत्रित करने, उनकी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का निर्धारण करने तथा सहकारिता को राजनीतिकों एवं अन्य निहित स्वार्थों के अनावश्यक हस्तक्षेप से बचाने की शक्ति विकसित करने की होती है। अच्छा नेतृत्व अच्छे पेशेवर प्रबंधकों और तकनीशियनों को

आकर्षित करने तथा उन्हें कार्यरत बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण अमूल है, जिसके संस्थापक अध्यक्ष स्व. त्रिभुवनदास के. पटेल, जो स्वयं एक उत्कृष्ट नेता थे, नें वर्गीज़ कुरियन सरीखे एक उत्कृष्ट प्रबंधक को न केवल अमूल के साथ काम करने के लिए आकर्षित किया, बल्कि उन्हें 20 वर्षों तक अपने संस्थान में बनाए रखा।

जब और जहां कहीं भी चाहे किसी भी कारण से सहकारिता में अच्छे नेतृत्व का अभाव होता है तो नेतृत्व के खालीपन को भरने के लिए शीर्ष प्रबंधन को मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा भर दिया जाता है। फिर यह अधिकारी आत्मवर्द्धन के लिए सहकारिता का हरण कर लेता है। दुखद रूप से यही घटना भारत की अधिकांश सहकारिताओं के साथ घटित हुई है। इसलिए सभी स्तरों पर रिक्तियों को भरे जाने के लिए संभावनाशील सहकारी नेतृत्व का समूह बनाने और उसे अक्षुण्ण रखने की आवश्यकता है।

वित्तीय प्रबंधन की उचित प्रणाली का अभाव

मजबूत वित्त के मार्ग में पहली और सर्वाधिक गंभीर रुकावट व्यापार के सहकारी स्वरूप में पूंजी निर्माण में होने वाला अवरोध होता है। दूसरे, पूंजी निर्माण कानूनों और विनियमों के कारण भी अवरुद्ध होता है क्योंकि इनके कारण सदस्य सहकारिता में एकत्र अधिशेष का लाभ नहीं उठा पाते। भारत में सहकारिता के स्वस्थ वित्तीय प्रबंधन में एक दूसरे प्रकार का अवरोध सहकारी लेखांकन और लेखापरीक्षा के पुराने कानून और विनियम हैं। ऐसे समय में, जब विश्वभर में लेखांकन मानकों को सुसंयोजित करने के प्रयास चल रहे हैं, सहकारिताओं को लेखांकन से संबंधित संबद्ध राज्य सहकारी विभागों द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन करना पड़ रहा है। इसके विपरीत हाल ही में कंपनियों के लिए लेखांकन मानकों को स्वीकृति प्रदान की गई है। इसके साथ ही सहकारिताओं के लेखा परीक्षक न तो पेशेवर होते हैं न ही वे सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं। यह तत्व आधुनिक लेखापरीक्षा के उद्देश्यों के विपरीत है। उचित वित्तीय प्रबंधन के अभाव में, आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अधिकांश सहकारिताएं वित्तीय व्यवहार्यता की क्षति से उत्पन्न समस्याएं झेल रही हैं।

चुनौतियों के मुकाबले की रणनीति

सहकारी बैंकों के पुनर्गठन के लिए एक समग्र और बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता है। इस रणनीति के मूल तत्व निम्नलिखित हैं।

बेहतर प्रशासन और नेतृत्व का विकास

सहकारी बैंकों में प्रभावशाली कॉर्पोरेट प्रशासन लागू करना आवश्यक है। इस संदर्भ में उच्च स्तरीय समिति (आरबीआई 2000) की अनुशंसाओं के अनुरूप रिजर्व बैंक द्वारा उठाए गए कुछ कदमों का उल्लेख यहां उचित होगा। इनमें यह शर्त शामिल है कि शहरी सहकारी बैंकों के बोर्ड में कम–से–कम दो निदेशक उचित बैंकिंग अनुभव वाले अथवा संबद्ध व्यावसायिक पृष्ठभूमि वाले होने चाहिए। साथ ही उसके प्रवर्तक किसी वित्तीय संस्थान या बैंक के न तो बकायेदार हों न ही किसी चिट फंड, अथवा गैर–बैंकिंग वित्तीय कंपनी अथवा किसी सहकारी बैंक या व्यावसायिक बैंक से संबद्ध निदेशक मंडल में निदेशक की हैसियत से संबद्ध हों। सहकारी बैंकों के प्रशासन को पेशेवर बनाने की दिशा में यह एक उचित कदम है। इसके बाद निर्धारित मानदंडों को लागू कराने के लिए एक पारदर्शी कार्यविधि लाने की जरूरत है। हाल की घटनाओं से सहकारी बैंकों में अन्य बातों के अलावा अधिक पारदर्शिता की जरूरत खुल कर सामने आई है। इससे बाजार के प्रतिभागी जोखिम की संभावनाओं तथा अपनी पूंजीगत निधि को ज्यादा बेहतर तरीके से आकलन कर पाएंगे।

किसी भी सहकारिता के लिए नेतृत्व विकास का कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि उसे मौके के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। सहकारिताओं के निदेशक मंडलों के द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनकी सहकारिता में अच्छे नेतृत्व का सतत प्रवाह बना रहे तथा बुरे नेतृत्व को जल्दी–से–जल्दी अच्छा नेतृत्व लाकर बदल दिया जाए और यह कि पेशेवर प्रबंधक सहकारिता का प्रबंधन सदस्यों के सर्वोत्तम हित में हो, उनके द्वारा सक्रिय और सकारात्मक कदम उठाए जाने की अपेक्षा है।

लेखा परीक्षा की बेहतर प्रणाली

पेशेवर चार्टर्ड एकाउंटेंटों के द्वारा बेहतर तरीके से लेखा परीक्षा कराए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान में, सहकारी बैंकों की लेखा परीक्षा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के द्वारा कराई जाती है। वे जिन लेखा परीक्षकों से लेखा परीक्षा करते हैं वे व्यावसायिक रूप से रत्तीभर योग्य और प्रशिक्षित नहीं होते, न ही उनका समुचित रूप से अभिमुखीकरण होता है। सहकारिताओं के द्वारा उपलब्ध कराई गई मेजबानी के आधार पर उन्हें ए, बी और सी वर्ग में रखने की कहानियां बेहद चिंतित करने वाली हैं। लेखा परीक्षा कार्य की तुलना में लेखा परीक्षा कर्मियों की कमी की वजह से सहकारिताओं की लेखा परीक्षा समयबद्ध तथा सुचारू रूप से नहीं हो पाती। लेखा परीक्षा हो जाए तो भी उसके प्रतिवेदनों में की गई अनुशंसाओं/ टिप्पणियों का अनुपालन नहीं किया जाता। परिणामतः वे घोटालों में बदल जाती हैं। चूंकि सहकारी बैंकों का संबंध अन्य वित्तीय संस्थानों से होता है, इसलिए इन घोटालों की थर्राहट समूचे वित्तीय तंत्र पर महसूस होती है। उदाहरण के लिए मार्च 2001 के दूसरे सप्ताह में माधवपुरा मर्केंटाइल कोऑपरेटिव बैंक के अपने ही पे–आर्डर का भुगतान करने में असफल होने का असर अनेक व्यावसायिक बैंकों, सहकारी बैंकों और कुछ विदेशी बैंकों पर भी पड़ा।

प्रबंधन में पेशेवर लोग शामिल किए जाएं

चुने गए प्रतिनिधियों को निदेशक मंडल/ प्रबंध समिति में शामिल करने पर अथवा राज्य सरकार द्वारा बैंक के कार्यकलाप के प्रबंधन के लिए नामित प्रतिनिधियों द्वारा कार्य नियंत्रित करने पर, दोनों ही स्थितियों में सहकारी बैंकों में पेशेवर तौर–तरीके की कमी देखी जा सकती है। चूंकि चुने हुए प्रतिनिधि बैंकिंग क्षेत्र के पेशेवर नहीं होते हैं इसलिए उनसे विशुद्ध रूप से बुद्धिमत्तापूर्ण बैंकिंग मानदंडों के आधार पर निर्णय लेने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। कई बार तो चुने हुए प्रतिनिधि किसी राजनीतिक दल के सदस्य होते हैं जिनकी अपनी दलगत निष्ठाएं होती हैं। ये निष्ठाएं प्रायः सदस्यों की सेवा अथवा जमाकर्ताओं के हितों का अतिक्रमण करती हैं। शीर्ष बैंकों तथा चुने हुए प्रतिनिधियों वाले निदेशक मंडलों के मुख्य कार्यकारी प्रायः राज्य सरकार के प्रशासनिक संवर्ग से संबद्ध होते हैं सहकारी बैंकों की आंतरिक नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण प्रणाली अधिकांशतया सरकारी संगठनों की नकल होती है जो वित्तीय संस्थाओं की अपेक्षाओं को प्रायः पूरी नहीं कर पातीं। इस तरह की प्रणाली दुर्विनियोजन/गबन

अथवा अन्य प्रकार के अनाचारों की स्थिति में त्वरित गति से उत्तरदायित्व के निर्धारण के मार्ग नहीं बताती।

बैंकिंग कंपनियों के अनुरूप बीआर अधिनियम के अनुप्रयोग का विस्तार

बैंकिंग कंपनियों के मामलों में रिजर्व बैंक के पास बैंकों के निरीक्षण को प्रभावी बनाने के सभी अधिकार हैं। इस उद्देश्य से बैंकिंग कंपनियों के प्रबंधन को नियंत्रित करने के लिए बीआर अधिनियम, 1949 के द्वारा रिजर्व बैंक को पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। निदेशक मंडल के चुनाव, मुख्य कार्यकारियों की नियुक्ति, उनके व्यापारिक लाभों के स्थगन तथा कंपनी बंद करने, बंद करने की कार्यवाही को तेज करने आदि के मामलों में रिजर्व बैंक को अधिकार दिए गए हैं। रिजर्व बैंक के पास लोकहित में किसी भी बैंक के निदेशक अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक अन्य अधिकारियों या कर्मचारियों को उनके पद से हटाने जैसे अन्य अधिकार भी हैं। विवाद की स्थिति में आरबीआई इनमें से अधिकांश अधिकार अधिनियम के अन्य प्रावधानों का अतिक्रमण करने वाले हैं। उनमें से कुछ को तो अदालत में चुनौती भी नहीं दी जा सकती। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से सहकारी बैंकों के मामले में इनमें से एक भी अधिकार रिजर्व बैंक को नहीं दिया गया है। इसकी वजह संभवतः यह है कि सहकारिता राज्य का विषय है। देश के केंद्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक का यह उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि देश की बैंकिंग प्रणाली सही तरीके से काम कर रही है, बैंक के कार्यकलापों को इस प्रकार संचालित किया जा रहा है कि उससे जमाकर्ताओं के हितों की अनदेखी नहीं हो रही है तथा उन्हें सामान्यतः जनता का और विशेषतः जमाकर्ताओं का विश्वास हासिल है। चूंकि भारत के संविधान में बैंकिंग संघीय सूची में है इसलिए उपर्युक्त बातें सहकारी बैंकों के मामले में भी उतनी ही लागू होती हैं जितनी कि व्यावसायिक बैंकों के मामले में। इसलिए इस बात का कोई कारण नहीं बनता कि पूरे का पूरा बीआर अधिनियम जिस तरह बैंकिंग कंपनियों पर लागू होता है उसी तरह उसे सहकारी बैंकों पर भी क्यों न लागू किया जाए। इसके अतिरिक्त बीआर अधिनियम के प्रावधानों को सहकारी समिति अधिनियम जैसे अन्य अधिनियमों के प्रावधानों का अतिक्रमण करने वाला होना चाहिए।

आरबीआई तथा नाबार्ड की भूमिका

नाबार्ड के गठन के बाद सहकारी बैंकों से संबंधित आरबीआई के केंद्रीय बैंकिंग के अनेक (सीमित) कार्य उसे स्थानांतरित कर दिए गए। अब आरबीआई से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन अधिकारों का उपयोग नाबार्ड की संस्तुति पर अथवा उससे परामर्श करके करें। ये मामले बैंकों के निरीक्षण, राज्य सहकारी बैंकों की शाखाएं खोलने तथा जिला सहकारी बैंकों एवं राज्य सहकारी बैंकों को लाइसेंस प्रदान करने से संबद्ध हैं। आरबीआई की तुलना में से नाबार्ड का ज्यादा करीबी संपर्क है तथा वह आरबीआई द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सीमा पर उनके क्रियाकलापों की निगरानी भी करता है। किंतु यह सहकारी बैंकों द्वारा अपने निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने में बहुत प्रभावी नहीं है क्योंकि उसके पास इस काम के लिए अपेक्षित सभी नियामक अधिकार नहीं हैं। इस तथ्य के आलोक में यह वांछनीय हो जाता है कि शहरी सहकारी बैंकों को छोड़कर सभी सहकारी बैंकों के लिए बीआर अधिनियम के अंतर्गत आरबीआई के तमाम नियामक तथा पर्यवेक्षी अधिकार नाबार्ड को दे दिए जाएं। हालांकि इसमें नाबार्ड द्वारा अपने अधिकारों के उपयोग के विरुद्ध आरबीआई में अपील का प्रावधान रखा जा सकता है ताकि सहकारी बैंकों के मामले में उक्त अधिकारों का उपयोग नाबार्ड द्वारा तथा व्यावसायिक बैंकों के मामले में आरबीआई के द्वारा कराए जाने में किसी प्रकार की 3 संगति न रहे।

विवेकपूर्ण प्रतिमानों का क्रियान्वयन

चूंकि शहरी सहकारी बैंक भुगतान प्रणाली के भागीदार होते हैं; जनसामान्य द्वारा की गई जमा राशि का तथा जमा बीमा योजना के लाभार्थियों तक उनकी निर्बाध पहुंच होती है इसलिए यह उचित प्रतीत होता है कि व्यावसायिक बैंकों पर लागू होने वाले विवेकपूर्ण और नियामक शर्तों को सहकारी बैंकों पर भी लागू कराया जाए ताकि वे उनके वित्तीय स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाए बगैर और अपने ग्राहकों के हितों के खतरे में डाले बगैर आधुनिक बैंकिंग के परिवर्तनों को पूरा करा सकें। हालांकि अनुभवों से वित्तीय प्रणाली की कमजोरियों तथा न केवल विदेशों से बल्कि अपने तंत्र के भीतर से भी संक्रमित होने के खतरों से अवगत करा दिया है। इस तरह देश के व्यावसायिक बैंकों पर वर्तमान में लागू होने वाले विवेकपूर्ण प्रतिमानों को सहकारी बैंकों पर भी लागू करने की स्थिति बनती है। जिन विशेष स्थितियों के अंतर्गत देश के सहकारी बैंक काम करते हैं उनको दृष्टि में रखते हुए एक तर्कसंगत समय सीमा के भीतर अलग-अलग चरणों में उन्हें विवेकपूर्ण प्रतिमानों का अंगीकार करने की अनुमति दी जा सकती है।

खुलासेपन और पारदर्शिता की उचित सीमा के साथ-साथ आज जरूरत एक सुचिंतित जोखिम प्रबंधन प्रणाली का इस्तेमाल करने तथा आंतरिक नियंत्रण प्रणाली में सुधार करने की है। भारतीय सहकारी बैंकिंग परिदृश्य पर एक नजर डालने से ज्ञात हो जाता है कि सहकारी बैंकों, विशेषतः शहरी सहकारी बैंकों में जोखिम प्रमुखतः ऋण संबंधी जोखिम नहीं वरन् ब्याजदर संबंधी जोखिम होते हैं। अधिकांश शहरी सहकारी बैंकों द्वारा दी जाने वाली ब्याजदर प्रायः शेष बैंकिंग प्रणाली में मौजूद ब्याजदर से अधिक होती है। साथ ही ये आमतौर पर अल्पकालिक जमा हासिल करते हैं और मध्यम अवधि के ऋण देते हैं। इसलिए उनकी परिसंपत्तियों और दायित्वों के बीच गंभीर असंतुलन पैदा होने की संभावना रहती है। इस पृष्ठभूमि में सहकारी बैंकों विशेषतः शहरी सहकारी बैंकों में अंतर्निहित जोखिम को तब तक दूर नहीं किया जा सकता जबतक कि एक समुचित और व्यापक परिसंपत्ति दायित्व प्रबंधन प्रणाली लागू न कर ली जाए। यह काम जितनी जल्दी पूरा कर लिया जाएगा, सहकारी बैंकों और उनके ग्राहकों के लिए उतना ही बेहतर होगा।

कुप्रशासन, राजनीतिक हस्तक्षेप, घुटने टेकने वाली प्रबंधन तथा ढीली-ढाले विनियमों ने सहकारी बैंकों को स्वेच्छाचारियों और घोटाला करने वालों का सहज निशाना बना दिया है। सहकारी बैंकों की मौजूदा प्रशासन व्यवस्था में सुधार करने की तत्काल जरूरत है। रिजर्व बैंक तथा नाबार्ड की विभिन्न समितियों ने समय-समय पर इनके प्रशासन में सुधार के लिए अनेक अनुशंसाएं की है। अब समय आ गया है कि आरबीआई, नाबार्ड, भारत सरकार का वित्त मंत्रालय जैसे प्राधिकारी उन अनुशंसाओं को लागू करने के बारे में गंभीरता से विचार करें जिन्हें अबतक लागू नहीं किया जा सका है। ❑

अनुवाद : अंजली सिन्हा

सहकारिता के विकास में पंचायती राज का योगदान

डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल

संविधान के अनुसार पंचायतों की कार्यसूची में मुख्यतः कृषि तथा विस्तार, भूमि-विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबंदी, भूमि संरक्षण, लघु-सिंचाई, जल-प्रबंध, पशुपालन, डेयरी-उद्योग, कुक्कुट पालन, मत्स्य, सामाजिक वानिकी, लघु-वन उपज, लघु-उद्योग, खादी-ग्रामोद्योग आदि हैं। सहकारिता के आधार पर इन क्षेत्रों में सफलता ही उपलब्ध हो सकी है।

फोटो : शेखर

पंचायती राज संस्थाओं को देश में ठोस संवैधानिक आधार प्राप्त है। हमारे संविधान के भाग 9 में पंचायतों से संबंधित विभिन्न प्रावधान हैं जो अनुच्छेद 243 से 243 ण तक 16 अनुच्छेदों में उल्लेखित हैं। संविधान के भाग 9 क में जिला योजना समिति से संबंधित अनुच्छेद 243 यघ है। अनुच्छेद 243 छ के अंतर्गत संविधान की 11वीं अनुसूची में उन नियमों की सूची है जो पंचायतों को आबंटित है। इस अनुसूची के अंतर्गत ग्रामीण विकास से संबंधित प्रायः सभी मुददे आ गये हैं। संविधान के भाग 4 में राज्य की नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 40 में यह निर्देश सन्निहित है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए

आवश्यक हों।

अतः हमारे शासन की वर्तमान पद्धति में पचायतें सर्वाधिकार सम्पन्न संस्थाएं हो गयी है। पर अनुच्छेद 243 य घ के अनुसार पंचायतें ऐसी योजनाएं तैयार करेगी तथा कार्यान्वित करेंगी जिनसे आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की अवधारणा और सामाजिक न्याय की अवधारणा फलीभूत हो तथा इन स्थानिक योजनाओं के आधार पर जल तथा भौतिक साधनों का उचित बंटवारा हो तथा एकीकृत विकास और संपन्न सुनिश्चित हों।

पंचायती राज संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण के लिए इस वर्ष 2004–2005 में प्रायः 214 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

पर जिस प्रकार पंचायती राज संस्थाएं देश में सशक्त होकर सामने आयी हैं, उसी समितियां (कोआपरेटिव सोसायटियां) कार्यरत हैं और 2.45 करोड़ लोग इनके सदस्य हैं। सहकारी समितियों की समग्र कार्य राशि 7,57,477 करोड़ रुपये है। कृषि विकास के लिए 60 प्रतिशत ऋण इन्हीं सहकारी समितियों के माध्यम से दिया जाता है जबकि रासायनिक उर्वरकों की 30 प्रतिशत ब्रिकी इनके माध्यम से की जा रही है। अतः भारत में सहकारी समितियों ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विकास में समान रूप से भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारी क्षेत्र का योगदान भी प्रशंसनीय और महत्वशील है।

संविधान के अनुसार पंचायतों की कार्यसूची में मुख्यतः कृषि तथा विस्तार, भूमि–विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबन्दी, भूमि संरक्षण, लघु–सिंचाई, जल–प्रबंध, पशुपालन, डेयरी–उद्योग, कुक्कुट पालन, मत्स्य, सामाजिक वानिकी, लघु–वन उपज, लघु–उद्योग, खादी–ग्रामोद्योग आदि हैं। सहकारिता के आधार पर इन क्षेत्रों में सफलता ही उपलब्ध हो सकी है। इन क्षेत्रों का विकास ऋण उपलब्धता पर निर्भर करता है। चालू वर्ष में कृषि ऋणों का स्तर मौजूदा 80,000 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 1.05 लाख करोड़ करने का निश्चय हमारे वित्तमंत्री ने किया है। पहली तिमाही में प्रगति भी ठीक हुई है।

ग्रामों में ऋण उपलब्धता का सरल एवं प्रभावशाली साधन सहकारी समितियां ही हैं। सहकारिता के माध्यम से निम्न ऋण योजनाएं कार्यान्वित होती हैं–

- फसल बीमा योजना
- कृषक समूह बीमा योजना
- किसान दुर्घटना बीमा योजना
- कृषकों को उपज के तारण पर ऋण प्रदाय योजना
- खाद्यान्न खरीद के लिए उपभोक्ता ऋण।
- किसान क्रेडिट कार्ड योजना।
- अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों के लिए उपभोग तथा सामाजिक उपभोग ऋण योजना।
- फसल प्रणाली के अंतर्गत कृषकों को अल्पकालीन ऋण की योजनाएं:

(क)नकद कृषि ऋण योजना और

(ख)वस्तु कृषि ऋण योजना।

इस प्रकार पंचायती राज तथा सहकारी संस्थाएं दोनों ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सहोदर बहिनें हैं। दोनों की सफलता उनके सदस्यों के त्याग एवं ईमानदारी पर निर्भर हैं। दोनों प्रकार की संस्थाएं विकेन्द्रीकृत प्रशासन की प्रतीक हैं। जहां पंचायतें ग्रामीण विकास के लिए अवसंरचना विकास के लिए शक्तिशाली माध्यम है वहां दूसरी ओर सहकारी संस्थाएं व्यक्ति के विकास तथा समृद्धि के लिए अपरिहार्य संस्थाएं हैं। अतः दोनों के समांतर विकास तथा परस्पर सहयोग से ही ग्रामों में विकास तथा समृद्धि के नये युग का प्रणयन संभव है। दोनों में अन्योन्याश्रम संबंध है।

(क) सहकारी ऋण समितियां और ग्रामीण विकास

बंगलादेश में ग्रामीण बैंकों के माध्यम से ही मुहम्मद यूनुस ने ग्रामीण विकास की सुदृढ़ नींव डाली। ये बंगलादेश के बैंक अन्य बैंकों से भिन्न हैं क्योंकि इन बैंकों में उनके सदस्यों की आवाज तथा उनके सुझावों का सम्यक् ध्यान रखा जाता है। आज बंगलादेश के 34000 ग्रामों में ग्रामीण बैंकों के 20 लाख सदस्य हैं जिनके माध्यम से उनके जीवन में कायापलट हो गयी है।

इसी प्रकार सहकारी विकास निधि (सी. डी.एफ) द्वारा आंध्र प्रदेश के वारंगल और करीमनगर जिलों में प्रायः एक लाख सदस्य बनाकर उनकी पूंजी 20 करोड़ के लगभग कर दी है।

इसी प्रकार इला बेन ने अहमदाबाद तथा गुजरात में महिलाओं की सहकारी समितियां बनाकर उनके जीवन में आमूल–चूल परिवर्तन ला दिया हैं। वे अब स्वावलंबी हैं तथा दूसरों को भी ऋण उपलब्ध करा सकती हैं।

भारत में पंचायती राज संस्थाएं शक्तिशाली प्रशासनिक इकाइयों के रूप में उभरी हैं जिन पर ग्रामीणों को विश्वास है तथा उनकी उनके संचालन में भागीदारी है। अतः ऐसी संस्थाओं को स्थापित करने तथा उनके विकास करने का नेतृत्व यदि पंचायतें ग्रहण करें तो देश को कुरियनों की तलाश नहीं करनी पड़ेगी। आज पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण भारत में योग्य तथा कुशल नेतृत्व मौजूदा है। बस उसे अपने उत्तरदायित्व तथा कार्यप्रणाली का सम्यक् बोध तथा जानकारी होना बाकी है।

(ख) डेयरी विकास

सन् 1946 में ग्रामीण दुग्ध सहकारी समिति के माध्यम से 'अमूल' का प्रारंभ हुआ। जब वर्गीज कुरियन ने देखा कि पॉल्सन उनसे प्राप्त दूध और मक्खन को मुंबई में विपणन करके मुख्य लाभांश ले रहा है, तो उन्होंने विपणन को अपने हाथों लिया। यही राज है अमूल सरकारी समितियों की सफलता का। आज इसी लाभ को 'अमूल' ने बड़े–बड़े कारखानों तथा विपणन तंत्र में निवेश करके दुग्ध उत्पादकों को स्वनिर्भर बना दिया है कि उन्हें अब बिचौलियों के ऊपर निर्भर नहीं रहना पड़ता है तथा वे इस विस्तार से स्वयं लाभांश अर्जित कर रहे हैं। गुजरात के आणंद ग्राम से उपजी इस छोटी दुग्ध सहकारी समिति ने अपने को फैलाकर राष्ट्रीय दुग्ध विकास उपक्रम के माध्यम से देश के अधिकांश दुग्ध कृषकों तथा उद्यमियों को विभिन्न प्रकार की सहायता एवं प्रोत्साहन दे रही है। यह है सहकारी समिति की सफलता का ज्वलंत उदाहरण। पशुपालन तथा डेयरी विकास पंचायतों का भी महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसको पंचायती राज संस्थाएं सहकारी समितियों के सृजन उनको प्रोत्साहन देकर साकार कर सकती है।

(ग) कृषि उत्पादों का विपणन

आज नैफेड की स्थापना हो चुकी है जो कृषि उत्पादों के विपणन के लिए देश की शीर्षस्थ संस्था है। किसी उत्पाद के अधिक मात्रा में होने की स्थिति में नैफेड किसानों से खाद्यान्नों या अन्य कृषि उत्पाद खरीद लेता है उसके बाद उसे किसी भी दर में बेच देता

है। इस तरह किसानों का घाटा बच जाता है और उनकी आर्थिक स्थिति खराब नहीं होती। किसी चीज़ की कमी के समय नैफेड उपभोक्ताओं के लिए आवश्यक चीजें उपलब्ध कराता है जैसे प्याज, आलू, अंडे आदि। इसके अलावा किसी चीज के दाम अकारण बढ़ जाने पर यह उस चीज के दाम अकारण बढ़ जाने पर यह उस चीज को बिना किसी घाटे या नुकसान पर उपलब्ध कराता है। कोई भी ग्राम स्तर, जिला स्तर या राज्य स्तर की सहकारी समिति जो किसी कृषि उत्पाद के विपणन से संबंध रखती है, वह नैफेड की सदस्य बनकर अपने सदस्य को लाभान्वित कर सकती है। ग्राम पंचायतें या पंचायत समितियां गांवों के उत्पादों की बाजारों के उतार–चढ़ाव से संरक्षण करने के लिए अपने पंचायत निधि से सदस्यों के शुल्क देकर या अन्य रियायतें देकर विभिन्न स्तरों पर सहकारी समितियों को खड़ा कर सकती हैं जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पूंजी पर आधारित बाजारू अर्थव्यवस्था के उतार–चढ़ाव से आवश्यक स्थिरता सुनिश्चित कर सकती हैं। यही भारत के गांवों की मुख्य समस्या है। आज गांवों में उत्पादन प्रचुर है पर बिचौलियों के माध्यम से शोषण होने के कारण ग्रामीणों में उत्पादन के प्रति लगन एवं उत्साह कम होता जा रहा है जोकि एक खतरनाक स्थिति है।

इसी प्रकार इफ्फको की 35,000 से अधिक सहकारी समितियां सदस्य हैं जो देश के 25 राज्यों और 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में इफ्फको के उत्पादों – एन.पी.के, डी.ए.पी. और यूरिया का विपणन करती हैं। यह विश्व में उर्वरक उत्पादन की सबसे बड़ी संस्था है जो देश के कृषकों को उर्वरकों के मूल्य में उतार–चढ़ाव से पृथक्करण कर समय पर आवश्यक उर्वरक उपलब्ध कराती है।

(घ) अन्य क्षेत्रों से संबंधित सहकारी समितियां

महाराष्ट्र में सहकारी क्षेत्र में अनेक चीनी मिलें हैं जो किसानों को समय पर ऋण उपलब्ध कराती हैं तथा उचित मूल्य पर उनसे गन्ना खरीदती हैं। इन शक्कर के कारखानों के कारण महाराष्ट्र के ग्रामीण अंचलों में आर्थिक सुरक्षा स्थापित हुई है तथा उनके हितों की रक्षा की आवाज विधान मंडलों तथा संसद में गूंजती है। यह संभव हुआ है पंचायत तथा सहकारी समितियों के सहयोग के कारण जो प्रत्येक क्षेत्र में एक दूसरे की पूरक हैं। इसी प्रकार ग्रामों एवं शहरों में आवास निर्माण तथा उपभोक्ता ऋणों के लिए भी विभिन्न सहकारी समितियां सफलतापूर्वक काम कर रही हैं। इन सहकारी समितियों के माध्यम से जहां लोग सामाजिक–जीवन जीना सीखते हैं वहीं उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है। उदाहरणार्थ वन्य रक्षक समितियों द्वारा आज वनों की रक्षा संभव हो पा रही है क्योंकि स्थानीय निवासी ही वनों के महत्व को समझ सकते हैं तथा हृदयंगम कर सकते हैं। वनों के लघु–उत्पाद तथा रख–रखाव के लाभांश के भागीदार होकर उन्हें प्रेरणा मिलती है तथा वे किसी भी परिस्थिति में वन की रक्षा करते हैं। इन वन्य रक्षक समितियों की स्थापना ग्राम पंचायतों के माध्यम से ही हुई है क्योंकि वे ही आजकल के प्रशासन की संरचना या पद्धति में भारत के सहज शासक हैं जोकि वैदिक काल से चला आ रहा था पर ब्रिटिश काल में उस पर सूर्य ग्रहण लग गया था।

इसी प्रकार सूखाग्रस्त राजस्थान में 'पानी की पंचायतों' को संगठित करके राजेन्द्रसिंह ने राजस्थान के कई जिलों में हरियाली उत्पन्न कर दी है। अलवर जिला इसका एक उदाहरण है। ये पानी की पंचायतें वस्तुतः जल उपयोग करने वाले उपभोक्ताओं के संगठित एवं असंगठित समूह हैं जो परस्पर सहयोग से वर्षा–जल को रोककर अपने यहां जलस्तर में वृद्धि करते हैं तथा उसका फलांश आपस में बांटते हैं इन 'पानी की पंचायतों' की सफलता से यह निश्चित विचार स्थिर हुआ है कि सहकारी समितियों, स्व–सहायता समूहों तथा पंचायतों में कोई मूलभूत अंतर नहीं है क्योंकि जहां पंचायतों की कार्यविधि में पांच पंच या अधिक अपना मस्तिष्क एक साथ लगाकर निर्णय लेते हैं, उसी प्रकार पानी की पंचायतों' में सभी एक साथ मिलकर गांव के जल–संसाधनों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करते हैं। पुरूलिया जिला, पश्चिम बंगाल एवं तमिलनाडु में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन ने यह प्रयोग सफलतापूर्वक किया कि गांव के स्वनिर्मित तालाब के रख–रखाव के लिए एक समूह को संगठित किया जा सकता है जो पंचायत के बरदहस्त से ही संगठित होगा पर वह अपने कार्यकलापों में पूर्णतः स्वतंत्र होगा। इस संस्था या समूह को न तो सहकारी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत करवाने की आवश्यकता है, केवल इसे समिति (सोसायटी) पंजीकृत अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराने से ही उद्देश्य पूरा हो जाता है। व्यावहारिक रूप से देखा गया है कि स्थानीय पंचायतों ने इन समूहों या तथाकथित पंचायतों अथवा सहकारी समितियों को पूर्ण सहयोग दिया है क्योंकि सभा का उद्देश्य एक ही है– ग्राम का समग्र विकास, व्यक्ति से समष्टि का विकास।

(ङ.) भूमि सुधार और सहकारिता

गांवों के स्तर पर पट्टेदार, बटाईदार एवं खेतिहर मजदूर मिलकर छोटे–छोटे संघ और समूह बनाएं, जिनके पास केन्द्रीय रूप से सिंचाई, बुआई, गुड़ाई तथा कटाई (हार्वेस्टर द्वारा भी) का काम हो तथा उनके पास प्रत्येक फसल पर बीज, खाद तथा कीटनाशक दवाईयों के लिए पर्याप्त धन या संसाधन उपलब्ध हों। ऐसे संघों की सफलता के पश्चात सरकार उन्हें मान्यता देना भी आरंभ कर देगी। इन समूहों या संघों का स्वरूप रूस की कृषि सहकारी समितियों तथा भारत की स्वतंत्र कृषि के बीच का होना चाहिए। कुछ–कुछ मिस्त्र की कृषि क्षेत्र में सहकारी समितियों जैसी व्यवस्था, जिसके अंतर्गत व्यक्ति अपनी भूमि का मालिक बना रहता है। साथ ही कृषि उत्पादन के लिए वे संयुक्त रूप से उर्वरक, सिंचाई, बुआई, गुड़ाई, कटाई आदि की व्यवस्था करते हैं तथा उस अनुपात में उत्पादन से खर्च काटकर और उसके श्रम या योगदान का क्रेडिट देकर समिति के सदस्य को उसका उत्पादन या मूल्य प्रतिवर्ष वापस कर दिया जाता है। उसका श्रम या योगदान भी उसके खाते में चढ़ा रहता है। यदि वह समिति से केवल अपने उपयोग के लिए उत्पाद लेकर शेष समिति के पास जमा करना चाहता है, तो वह भी संभव है। प्रत्येक सदस्य का उसकी जमीन पर स्वामित्व बना रहता है। समिति के द्वारा सिंचाई आदि में कम खर्च आता है, वैज्ञानिक कृषि यंत्रों का उपयोग हो जाता है तथा उत्पाद की बिक्री की संयुक्त रूप से व्यवस्था होती है। प्रायः खरीददार गांव में आकर ही उत्पाद ले जाते हैं तथा पास के

बाजार या मंडी तक उत्पाद ले जाने में कम खर्च आता है। इससे शोषण भी कम हो जाता है; क्योंकि सदस्यों में से एक दो पढ़े–लिखे व्यक्ति इसके प्रबंध में निःशुल्क सहयोग देते हैं। ये समूह या संघ पंजीकृत नहीं होते हैं। गांव में ही उनके अनुबंध के लिए आवश्यक स्टाफ कागज पर शर्ते लिख ली जाती हैं और पंचायत प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सभी के हस्ताक्षर हो जाते हैं।

सरकार ने भी गांवों में कृषि यंत्रों की मरम्मत के लिए कृषि अस्पताल तथा कृषि व्यवसाय केन्द्र योजना की अवधारणा तैयार की है। इन केन्द्रों में कृषि कार्य के लिए यंत्र होंगें, उनके मरम्मत की व्यवस्था होगी, कृषि कार्य के लिए आवश्यक धन या ऋण की उपलब्धता होगी तथा वे कृषि उत्पाद के विपणन की भी व्यवस्था करेंगे। इससे शहर के मध्यस्थों द्वारा ग्रामीणों का कृषि उत्पाद की बिक्री में शोषण कम हो जायेगा तथा कृषकों के शोषण का अंत हो जायेगा।

(च) स्वयं–सहायता समूह तथा पंचायतें

इला बेन से प्ररेणा लेकर आज स्वयं–सहायता समूहों की देश में बाढ़ सी आ गयी है। अब तक प्रायः 14.5 लाख स्वयं–सहायता समूह बना लिये गये हैं। 37 लाख से अधिक स्वरोजगारियों को सहायता प्रदान की गयी। इस प्रकार लगभग 7500 करोड़ रुपये की धनराशि का निवेश हुआ है। पश्चिम बंगाल में प्रायः 1 लाख स्वयं–सहायता समूह हैं जो समग्र ग्रामीण विकास के वाहक हैं। उत्तरांचल जैसे छोटे राज्य में प्रायः 14,091 समूहों की स्थापना हो चुकी है जिनमें प्राय 5500 महिला समूह हैं तथा 4409 मिश्रित समूह हैं। मध्य प्रदेश के शहडोल जिले से प्रारंभ होकर इन समूहों ने समस्त मध्य प्रदेश में अपना झंडा गांड़ दिया है। तमिलनाडु के एक जिले कोयम्बटूर में ही कई हजार स्वयं–सहायता समूह हैं। स्वयं–सहायता समूहों तथा स्वरोजगारियों द्वारा उत्पादित सामान के विक्रय तथा उसका उचित दाम दिलाने हेतु विपणन तंत्र को मजबूत बनाया जायेगा। उत्पादों की प्रदर्शनी के लिए ग्रामीण हाट और ताल्लुका। तहसील एवं जिला स्तर पर मंडियां बनायी जायेंगी। उत्पादों के मानकीकरण और प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए तकनीकी सहायता भी दी जायेगी।

इससे स्पष्ट है कि भारत के नागरिक तथा कृषक अब जाग्रत हो गये हैं। यदि सहकारी समितियों तथा पंचायतों के माध्यम से उनकी प्रगति में बाधा होगी, तो वे स्वयं–सहायता समूह बनाकर आगे बढ़ेगी। सारांश में उनकी प्रगति तथा आर्थिक समृद्धि को कोई भी व्यक्ति, संस्था या शासन बाधित नहीं कर सकता। यदि उदार दृष्टि से देखा जाये तो तीनों प्रकार की संस्थाएं एक ही प्रकार की हैं जिनमें व्यक्ति पारस्परिक आदान–प्रदान तथा सहयोग से निर्णय लेते हैं, कार्य करते हैं तथा आगे बढ़ते हैं। पर इन सभी की सफलता के लिए समूह के सदस्यों में ईमानदारी, परिश्रम तथा कुशलता प्रशिक्षण आवश्यक हैं ताकि वर्तमान प्रतियोगी अर्थतंत्र मे ठहर सकें तथा पल्लवित पोषित होते रहें।

सुझाव

- सहकारी समितियों को प्रोत्साहन देना पंचायतों का पावन कर्तव्य है। अतः संविधान की 11वीं अनुसूची में पंचायतों के कार्यों के साथ 'सहकारिता को प्रोत्साहन' भी जुड़ना चाहिए ताकि सहकारिता को बढ़ावा देना पंचायत का संवैधानिक दायित्व स्थिर हो सके। यह अनुसूची के तीसवें क्रमांक पर आसानी से जुड़ सकता है।
- सहकारिता तथा पंचायती राज की सफलता के पीछे उनके सदस्य ही हैं। उन्हें इन संस्थाओं के उद्देश्य के प्रति ईमानदारी तथा लगनपूर्वक समर्पित होना चाहिए।
- सहकारिता क्षेत्र में घुन की भांति प्रविष्ट लालफीताशाही के प्रभाव को कम करना चाहिए। वे सहकारी समितियों के प्रति जवाबदेह हों तथा उनके प्रति व्यवहार मित्र, दार्शनिक तथा पथ–प्रदर्शक की भांति हो। सहकारी इंस्पेक्टर पंचायतों के अधीन हों ताकि जमीनी स्तर पर दोनों समस्याओं के बीच पूर्ण तालमेल हो।
- पंचायतें गांव की सामंती शासक न बन बैठें तथा ग्रामोन्न्यन में लगें। सभी समूहों तथा समितियों को समान रूप से प्रोत्साहन दें।

आशा है कि इस प्रकार की रणनीति अपनाने से भारत के गांवों में विकास तथा समृद्धि का अभूतपूर्व परिवेश स्थापित होगा। ❑

(लेखक : भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी तथा कारागार विभाग और नारी, शिशु कल्याण एवं समाज कल्याण विभाग (पश्चिम बंगाल सरकार) में प्रधान सचिव हैं।)

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के तहत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए 4000 करोड़ रुपए खर्च किए जाएंगे

संपूर्ण ग्रामीण योजना के तहत मौजूदा वित्तीय वर्ष में अलग–अलग सहायता स्कीमों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसचित जाति/अनुसूचित जनजातियों की बस्तियों में जरूरी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने पर लगभग 4000 करोड़ रुपये खर्च किए जाएंगे।

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के तहत राज्यों को दैनिक वेतन रोजगार के लिए 4500 करोड़ रुपये की राशि और लगभग 5000 करोड़ रुपये मूल्य का अनाज उपलब्ध कराया जाएगा। राज्य अपने 25 प्रतिशत हिस्से के रूप में 1500 करोड़ रुपये उपलब्ध कराएंगे। केंद्र निःशुल्क अनाज उपलब्ध कराता है।

ग्राम पंचायतों के 50 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग जरूरत के आधार पर बुनियादी सुविधाओं के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। देश के 569 ग्रामीण जिलों को 2702.6 करोड़ रुपये की राशि जारी की जा चुकी है, जो 2004–05 के लिए संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के तहत वार्षिक योजना परिव्यय का 61 प्रतिशत है। ग्रामीण विकास मंत्री डा. रघुवंश प्रसाद सिंह ने कुछ मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखकर अनुरोध किया है कि वे अपनी पहली किस्त जल्दी से जल्दी ले लें। यह किस्त देश के केवल 13 जिलों के मामले में लंबित है।

अनाज तथा धनराशि जारी करने की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के दिशा निर्देशों में संशोधन किया गया है। जरूरी होने पर अब जिले धनराशि और अनाज अलग–अलग ले सकते हैं। योजना के तहत अनाज की आपूर्ति करने में आ रही बाधाओं को दूर करने के लिए ग्रामीण विकास सचिव तथा खाद्य सचिव के बीच एक उच्चस्तरीय बैठक हुई थी। इस वर्ष प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित राज्यों को 8.02 लाख मी. टन अनाज भी जारी किया गया है।

सहकारी बैंकिंग : उपलब्धियां और चुनौतियां

डा. अमृत पटेल

भारत की सहकारी संरचना एक शताब्दी पुरानी तथा विश्व की सबसे पुरानी सहकारी संरचनाओं में से एक है। इस तथ्य के बावजूद कि सहकारिताओं का अस्तित्व काफी पुराना है, उनका पूंजी आधार बेहद कम है। इस लेख में सहकारी साख संरचना के उदय, कार्य निष्पादन, कमजोरियों, मौजूदा बाजार– संचालित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में ग्रामीण इलाकों में इसके सम्मुख खड़ी चुनौतीयों तथा नवीन चुनौतियों से सफलतापूर्वक लड़ने के लिए अपेक्षित विशिष्ट उपायों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

भारत की सहकारी संरचना एक शताब्दी पुरानी तथा विश्व की सबसे पुरानी सहकारी संरचनाओं में से एक है। कृषि के लिए संस्थागत वित्तीय प्रणाली स्थापित करने के प्रयास सहकारी समिति अधिनियम, 1904 को लागू करने के साथ ही आरंभ हो गए थे। सर मेल्कम डार्लिंग की रिपोर्ट (1935) तथा भारतीय रिजर्व बैंक की आरंभिक तथा सांविधिक रिपोर्ट (1936 एवं 1937) जैसे विभिन्न अध्ययनों में सहकारी आंदोलन के पालन–पोषण, किसानों को पारंपरिक कर्जे के बोझ से मुक्त करने, मितव्ययिता को बढ़ावा देने और धीरे–धीरे महाजनों के शोषण से रक्षा करने जैसी अधिक सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करने की आवश्यकता पर बल दिया गया तथा इस भूमिका के सहकारी आंदोलन का विकास करने के उपाय सुझाए गए। सन् 1947 तक आम सोच ग्रामीण इलाकों में बहुउद्देश्यीय बुनियादी समितियों को प्रोत्साहन देने के पक्ष में थी। किंतु सन् 1947–56 के दौरान सहकारिताओं की पहचान आर्थिक विकास के उपकरण के रूप में की जाने लगी, क्योंकि कृषि साख के वितरण के लिए सहकारी प्रणाली को अधिक उपयुक्त माना गया। इस लेख में सहकारी साख संरचना के उदय, कार्य निष्पादन, कमजोरियों, मौजूदा बाजार–संचालित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में ग्रामीण इलाकों में इसके सम्मुख खड़ी चुनौतियों तथा नवीन चुनौतियों से सफलतापूर्वक लड़ने के लिए अपेक्षित विशिष्ट उपायों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

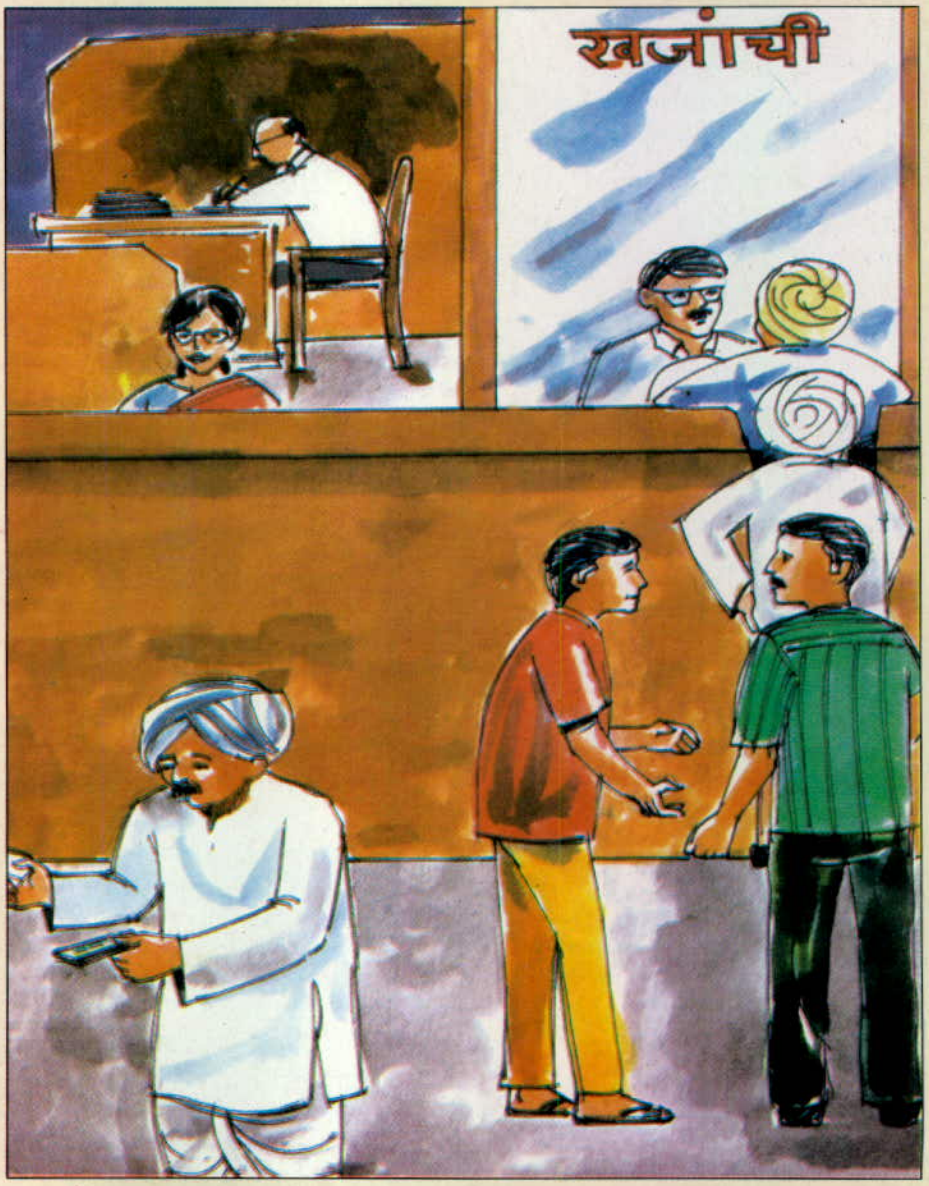

तालिका – 1

क्षेत्रवार प्रचालनात्मक, भूमि स्वामित्व सदस्यता तथा बुनियादी कृषि साख समितियां

(31 मार्च, 97 की स्थिति)

क्षेत्र	प्रचालनात्मक पूंजी लाख में	सदस्यता लाख में	कृषि साख समितियों की संख्या
उत्तरी	96.60 [9.40]	102.73 [10.50]	14125 [15]
उत्तर–पूर्व	40.53 [3.90]	27.94 [2.80]	2515 [3]
पूर्वी	216.38 [20.90]	148.43 [15.00]	17786 [19]
मध्य	284.75 [27.50]	255.50 [23.00]	14830 [16]
पश्चिमी	130.64 [12.60]	111.82 [11.40]	27359 [30]
दक्षिणी	266.32 [25.70]	365.82 [37.20]	15105 [17]
कुल	1035.22 [100]	982.24 [100]	91720 [100]

(कोष्ठक में दिए गए अंक कुल का प्रतिशत भाग दर्शाते हैं।)

ग्रामीण साख योजना

आरबीआई द्वारा गठित अखिल भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण द्वारा 'ग्रामीण साख की समेकित योजना' आरंभ करने की अनुशंसा करने के बाद कृषि के अपर्याप्त संस्थागत वित्त का प्रावधान करने पर उचित ध्यान दिया गया। इस योजना में सभी स्तरों पर सहकारी साख संस्थाओं का विकास तथा मजबूती प्रदान करने की संकल्पना की गई। यह संकल्पना समूचे संघीय ढांचे में राज्य की भागीदारी (वित्तीय भागीदारी सहित) कृषिगत संसाधन के समन्वित विकास; भंडारण, गोदाम की सुविधा एवं विपणन तथा सहकारी आंदोलन का योग्य, सक्षम एवं प्रशिक्षित लोगों द्वारा प्रबंधन एवं प्रशासन के सिद्धांत पर करने पर आधारित थी। 1904 में पहली प्राथमिक कृषि समिति के गठन से आरंभ कर सहकारी समितियों ने मौसमी कृषि संबंधी गतिविधियों के लिए अल्पावधि साख आवश्यकताओं तथा भूमि में निवेश या कृषकों के ऋण के भुगतान के लिए दीर्घावधि साख की आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती रही है। व्यावसायिक बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विशेष रूप से क्रमशः 1969 एवं 1975 में परिदृश्य पर पूरी ताकत से आने से पहले तक कृषि के लिए संस्थागत साख उपलब्ध करने वाली एकमात्र संस्था सहकारिताएं ही थीं।

संरचना

त्रिस्तरीय एवं द्विस्तरीय अल्पकालिक संरचना क्रमशः 16 एवं 12 राज्यों में अपनाई गई है। आंध्र प्रदेश में मिश्रित संरचना है। इस समय कुल लगभग 92,000 बुनियादी कृषि साख समितियां 367 जिला केंद्रीय सहकारी बैंक तथा 29 राज्य सहकारी बैंक (सिक्किम सहित) हैं जो देश के दूरदराज के क्षेत्रों तक अल्पावधि, मध्यावधि तथा दीर्घावधि कृषि साख उपलब्ध कराते हैं। दीर्घकालिक साख संरचना में संघीय ढांचे के संदर्भ में 745 बुनियादी सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों सहित 19 राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक हैं जबकि ऐकिक ढांचे में लगभग 1,500 शाखाएं हैं। दीर्घकालिक संरचना भी क्रमशः आठ–आठ राज्यों में ऐकिक तथा संघीय ढांचे में गठित हैं। तीन राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक – असम, हिमाचल प्रदेश तथा प. बंगाल में ऐकिक तथा संघीय दोनों ही ढांचे वाली प्रणाली को शामिल किया गया है।

तालिका–1 में देखा जा सकता है कि भूमि स्वामित्व तथा सदस्यता आबंटन के आलोक में बुनियादी कृषि साख समितियों के क्षेत्रवार विकास में असंतुलन रहा है।

इस तथ्य के बावजूद कि सहकारिताओं का अस्तित्व काफी पुराना है, उनका पूंजी आधार बेहद कम है तथा उन्हें बड़ी सीमा तक उधारियों पर निर्भर रहना पड़ता है (तालिका–2)। विवेकसम्मत विनियमों के अनुपालन के वर्तमान संदर्भ में यह बहुत ही निर्णायक तत्व बन गया है।

निष्पादन

जमीनी स्तर पर अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक संरचनाओं के क्रमशः 990 लाख

तालिका – 2

सहकारी बैंकों का संसाधन आधार

(31 मार्च, 99 की स्थिति) (रुपये करोड़ में)

एजेंसी	अंशपूंजी	रिजर्व	जमा	उधारी
राज्य सहकारी बैंक	585 [2.00]	2,917 [7.00]	25,786 [66.00]	9,849 [25.00]
जिला केंद्रीय सहकारी बैंक	2,484 [4.00]	4,801 [7.00]	45,609 [69.00]	12,796 [20.00]
बुनियादी कृषि साख समिति	3,329 [15.00]	00	5,255 [24.00]	13,299 [61.00]
राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक	582 [4.00]	1,440 [11.00]	240 [2.00]	11,093 [83.00]
बुनियादी सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक	610 [7.00]	559 [7.00]	152 [2.00]	6,849 [84.00]
कुल	7,590 [5.00]	9,717 [7.00]	77,042 [52.00]	53,886 [36.00]

(कोष्ठक में दिए गए अंक कुल का प्रतिशत भाग दर्शाते हैं।)

तालिका – 3

कृषि एवं संस्थागत साख का प्रवाह एवं विभिन्न एजेंसियों का हिस्सा

(वर्ष 1997–98 से लेकर 2003–04 तक)

(रुपये करोड़ में)

संस्थान	1997–98	1998–99	1999–00	2000–01	2001–02	2002–03	2003–04
सहकारिता	14,085	15957	18,363	20,801	23,604	24,296	30,080
प्रतिशत अंश	44	43	40	39	38	34	37
अल्पकालिक	10,895	12571	14,845	16,583	18,828	20,247	23,920
मध्य / दीर्घकालिक	3,190	3386	3,518	4,218	4,776	4,049	6,160
व्यावसायिक	45,831	18443	24,733	27,807	33,587	41,047	43,840
प्रतिशत अंश	50	50	53	53	54	58	55
अल्पकालिक	8,349	9662	11,697	13,486	17,904	21,878	23,400
मध्य एवं दीर्घकालिक	7,482	8821	13,036	14,321	15,683	19,169	20,440
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	2,040	2460	3,172	4,219	4,854	5,467	6,080
प्रतिशत अंश	06	07	07	08	08	08	08
अल्पकालिक	1,396	1710	2,423	3,245	3,777	4,156	6,680
मध्य / दीर्घकालिक	644	750	749	974	1,077	1,311	1,400
कुल	31,956	36860	46,268	52,827	62,045	70,810	80,000
प्रतिशत वृद्धि	21	15	26	14	17	14	13

एवं 137 लाख सदस्य थे। कुल सदस्यता का 42 प्रतिशत छोटे किसान थे। सहकारिताओं द्वारा दी गई कुल ऋण राशि का 50 प्रतिशत छोटे और सीमांत किसानों तथा कमजोर वर्गों को दिया गया। 1971–72 में अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की अनुशंसा के बाद कमजोर समितियों के आमेलन तथा समाशोधन के द्वारा पुनर्गठन कर बुनियादी कृषि साख समितियों की कुल संख्या 1,57,000 से कम कर 92,000 कर दी गई है। आज प्रत्येक बुनियादी कृषि साख समिति औसतन सात गांवों को सेवाएं उपलब्ध करा रही है। अल्पकालिक संरचना के तहत बुनियादी कृषि साख समिति के स्तर पर उधारी लेने वाले सदस्यों की संख्या लगभग 4.40 करोड़ है जो कुल सदस्यता का लगभग 41 प्रतिशत है। दीर्घावधि संरचना में जमीनी स्तर पर उधारी लेने वाले सदस्यों की संख्या तुलनात्मक रूप से अधिक, कुल सदस्यों के 71 प्रतिशत है। बुनियादी कृषि साख समितियां अमूमन शत–प्रतिशत गांवों को कवर करती हैं। वर्तमान में ग्रामीण साख संस्थाओं का 69 प्रतिशत साख सहकारिताएं है। ग्रामीण जमा खाते में उनका हिस्सा लगभग 31 प्रतिशत है और कुल ग्रामीण साख में उनका हिस्सा 40 प्रतिशत है। देश के कुल निवेश एवं उत्पादन साख में उनका हिस्सा क्रमशः लगभग 24 प्रतिशत एवं 51 प्रतिशत है।

सहकारिताओं द्वारा उपलब्ध कराई गई कुल ग्रामीण साख का लगभग 70 प्रतिशत अल्पावधि मौसमी कृषि प्रचालन के लिए होता है जबकि मध्यावधि एवं दीर्घावधि निवेश साख लगभग 30 प्रतिशत होते हैं।

जमा संग्रहण के संदर्भ में अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुल जमा का 61 प्रतिशत केवल चार राज्यों – महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु एवं उत्तर प्रदेश से प्राप्त होता है, जबकि पूर्वी और उत्तरी क्षेत्र के सभी राज्यों से प्राप्त जमा का प्रतिशत केवल क्रमशः 6.1 प्रतिशत तथा 3.4 प्रतिशत है। जहां तक ऋण–प्रावधान का संबंध है, जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों द्वारा उपलब्ध कराए गए ऋण का सबसे बड़ा हिस्सा

तालिका – 4

एजेंसीवार ग्रामीण साख शाखाएं, उधारी खाते, साख संवितरण

(खाते लाख में तथा राशि करोड़ रुपये में)

एजेंसी	साख शाखा	उधारी खाते	कुल साख	प्रति शाखा राशि	प्रति खाता राशि	उत्पादन साख
	2000-01	2000-01	2001-02	2001-02	2001-02	2001-02
सहकारिता	94663	574 [606]	27080	28.6 लाख	4718	21542
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	12233	40 [327]	4956	40.5 लाख	12390	3415
व्यावसायिक बैंक	3267	224 [686]	31964	97.9 लाख	14269	16004
कुल	**139533**	**838 [600]**	**64000**	**45.9** लाख	**7637**	**40961**

कोष्ठक में दिए गए अंक प्रति शाखा उधारी खातों की संख्या दर्शाते हैं।

लगभग 39 प्रतिशत महाराष्ट्र और तमिलनाडु को जाता है, जबकि दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब और कर्नाटक आते हैं जो लगभग 30 प्रतिशत ऋण लेते हैं। कृषि साख समितियों का औसत ऋण व्यापार केरल में सर्वाधिक था, उसके बाद हरियाणा, तमिलनाडु को जाता है, ज़बकि दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश, गुजरात, पंजाब और कर्नाटक। बुनियादी कृषि साख समितियों का औसत ऋण व्यापार केरल में सर्वाधिक था, उसके बाद हरियाणा, तमिलनाडु और पंजाब का स्थान था। हिमाचल प्रदेश, बिहार एवं पश्चिम बंगाल में यह सबसे कम पाया गया। प्रति हेक्टेअर सकल खेती योग्य क्षेत्र के आधार पर निर्गत ऋण केरल में सर्वाधिक था, उसके बाद हरियाणा और तमिलनाडु का स्थान था। इस आधार पर निर्गत ऋण सबसे कम बिहार और मध्य प्रदेश में था।

देखा जा सकता है कि 1970–71 तक भारत के किसानों की कृषि साख आवश्यकताओं को पूरा करने में सहकारिताओं का लगभग एकाधिकार था। इसी के अनुरूप, 1970–71 में सहकारिताओं ने 743.8 करोड़ रुपये वितरित किए। सातवें और आठवें दशक के दौरान सहकारिताओं ने 1971–72 से लेकर 1980–81 के दौरान रु. 26,349.6 करोड़ रुपये तथा 1981–82 से 1990–91 के दौरान 71596.2 करोड़ रुपये था। ग्रामीण वित्तीय संस्थानों द्वारा निर्गत कुल जमा ऋण का यह क्रमशः 70.6 प्रतिशत तथा 53.7 प्रतिशत था। व्यावसायिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा अपनाई गई आक्रामक शैली के कारण सहकारिताओं का हिस्सा निरंतर कम होता रहा और यह 1997–98 में 44 प्रतिशत तथा 2002–03 में महज 34 प्रतिशत रह गया। इसे तालिका–3 में देखा जा सकता है, यद्यपि यहां यह भी द्रष्टव्य है कि सहकारिताओं द्वारा साख वितरण में क्रमिक वृद्धि होती रही। अनुमान है कि 2003–04 के दौरान इसमें सहकारिताओं का हिस्सा 37 प्रतिशत तथा वर्ष 2004–05 की अवधि के दौरान 30 प्रतिशत रहेगा। ऐसा वित्त मंत्री द्वारा अपने बजट भाषण में दी गई दिशा के कारण कृषि साख में समग्र वृद्धि के कारण सहकारिताओं द्वारा वितरित साख 39,000 करोड़ रहने की संभावना है जो ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं द्वारा वितरित कुल 1,05,000 करोड़ का 37 प्रतिशत है।

तालिका–4 में प्रस्तुत आंकड़ों से यह संकेत मिलता है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा व्यावसायिक बैंकों की तुलना में ग्रामीण अंचलों में सहकारिताओं का बहुत ही व्यापक नेटवर्क है। वे बहुत ही लंबे समय से ग्रामीण परिवेश से अवगत रहे हैं। फिर भी, वर्ष 2000–01 के दौरान प्रत्येक सहकारी शाखा में उधारी खातों की संख्या 606 थी जबकि व्यावसायिक बैंकों के खातों की संख्या 686 थी। इसी अवधि में एक सहकारी शाखा ने 28.6 रु. लाख की ऋण राशि वितरित की जबकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने 40.5 लाख एवं व्यावसायिक बैंकों ने रु. 97.9 लाख की ऋण राशि वितरित की। इस अवधि के दौरान सहकारी बैंकों के मामले में प्रत्येक उधारी खाते पर ऋण रु. 4,718 थी जबकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में यह रु. 12,390 तथा व्यावसायिक बैंकों में रु. 14,269 थी।

विवेकसंगत विनियमन

भारत में आर्थिक तथा वित्तीय क्षेत्र में सुधार की शुरुआत 1991 में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण तथा वित्त बाजार के वैश्वीकरण की व्यापक प्रक्रिया के एक कदम के रूप में की गई। स्वस्थ वित्तीय प्रणाली वैश्वीकरण प्रक्रिया की एक प्रमुख शर्त है। बैंकिंग क्षेत्र चूंकि इसका एक महत्वपूर्ण अवयव है, इसलिए इस पर अधिक तीक्ष्णपूर्वक ध्यान दिया गया। बैंकिंग क्षेत्र से अपने लचीलेपन और अपनी क्षमताओं को और प्रखर करने की अपेक्षा थी ताकि यह शेष विश्व के साथ एकीकृत अर्थव्यवस्था में मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह कर सके। पारदर्शी क्रियाकलाप की तथा अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग संस्थानों के अनुरूप मानदंडों के अनुपालन की आवश्कता ने पूंजी पर्याप्तता, आय की पहचान तथा उसके लिए प्रावधान करने संबंधी विवेकसम्मत विनियमों को लागू किया जाने की ओर उन्मुख किया। विवेकसम्मत विनियमों की संस्तुति बैंक निगरानी पर बनी बासले समिति ने की थी। इस समिति ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाली बैंकों की वित्तीय मजबूती का मूल्यांकन करने के लिए आम संकेतकों और प्रचालनात्मक मानदंडों का एक समूह तैयार किया था। यद्यपि सहकारी बैंक जिलों एवं राज्य स्तर पर कार्यकर्त्ता हैं; तथापि इस आवश्यकता पर बल देने के लिए कि उन्हें भी अन्य बैंकिंग संस्थानों के सदृश स्वस्थ आधार पर काम करना चाहिए, विवेकसम्मत विनियमों को उन पर भी लागू कर दिया गया। वित्तीय क्षेत्र के सुधार राज्य सहकारी बैंकों पर 1996–97 से तथा राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों पर 1997–98 से लागू कर दिए गए। ऐसा विभिन्न एजेंसियों को सुधार–प्रक्रिया करने तथा उन संस्थानों में संभावित संगठनात्मक और क्रियात्मक परिवर्तनों को समायोजित करने के लिए किया गया। नीचे हम सहकारी साख संस्थानों के वित्तीय स्वास्थ्य का उल्लेख कर रहे हैं। विवेकसम्मत विनियमों के अनुपालन में उनकी सहायता के लिए सरकार और आरबीआई को उन पर तत्काल ध्यान देना चाहिए।

- 31 मार्च, 01 को 29 में से 11 राज्य सहकारी बैंकों तथा 367 में से 185 जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों का मांग की तुलना में वसूली का प्रतिशत 60 प्रतिशत से भी कम था। इसी प्रकार 19 में से 13 राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों तथा 727 में से 464 बुनियादी सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की वसूली 60 प्रतिशत से कम थी।
- राज्य सहकारी बैंकों, जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों तथा बुनियादी सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की कुल अनुत्पादक परिसंपत्तियां क्रमशः रु. 3889.28 लाख/ 9370.98 लाख रु./ 2580.56 लाख तथा रु. 2004.77 लाख थी। यह उनके बकाया ऋण को क्रमशः 13.02 प्रतिशत, 17.86 प्रतिशत, 20.49 प्रतिशत तथा 23.92 प्रतिशत थीं।
- राज्य सहकारी बैंकों, जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों, राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों तथा बुनियादी सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की संचित हानि क्रमशः 493 करोड़ रु., 3213 करोड़ रु., 901 करोड़ एवं रु. 1004 करोड़ रु. थी।
- क्रियाविधि निधि के प्रतिशत के रूप में सकल अतिरिक्त राशि राज्य सहकारी बैंकों में 2.6 जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों में 2.94 थी, जबकि क्रियाशील निधि के प्रतिशत के रूप में शुद्ध अतिरिक्त राशि क्रमिक रूप से 0.21, (–) 0.65, (–) 1.43 तथा (–) 0.82 थी।

कमजोरियां

भारत में सहकारी साख आंदोलन अपनी

सुदीर्घ उपस्थिति के बावजूद समकालीन ग्रामीण वित्तीय संस्थानों के साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाया है। न तो ये सदस्य–चालित उद्यम रह पाए हैं न ही ज्यादातर मामलों में इनका नेतृत्व स्वयं को पेशेवर, पारदर्शी, जिम्मेदार और क्रियात्मक रूप से प्रभावी साबित कर पाया है। दोनों हमेशा आपस में समन्वय स्थापित नहीं कर पाते और अपनी गतिविधियों को संतुलित नहीं कर पाते। इससे निवेश साख की उपलब्धता और उसका उपयोग प्रभावित हुआ है एवं समान रूप से उत्पादन साख भी प्रभावित हुआ है। निचले स्तर पर अल्पकालिक संरचना की महत्वपूर्ण कड़ी–बुनियादी कृषि साख समितियां आमतौर पर कमजोर रही हैं। इसमें से अधिकांश आकार में इतनी छोटी होती हैं कि आर्थिक रूप से कार्यक्षम नहीं रह पातीं तथा बड़ी तादाद में निष्क्रिय एवं मरणासन्न हैं। वे संरचनात्मक कमजोरियों, प्रचालनात्मक, अकुशलता एवं ढांचागत कमियों का शिकार हैं। वस्तुतः वे अपने मौजूदा एवं संभवित सदस्यों, जमाकर्ताओं एवं उधारी लेने वालों को एक वास्तविक वित्तीय संस्थान प्रतीत ही नहीं होतीं।

अब तक किए गए उपाय सहकारिताओं का बुनियादी एवं माध्यमिक ढांचा तैयार करने में सफल नहीं हो पाए हैं। सहकारिताओं की कार्यप्रणाली से जुड़ी हुई जटिलताएं, खासकर सच्चे जनतांत्रिक प्रबंधन का अभाव एवं संभावित सदस्यों, जमाकर्ताओं एवं उधारी लेने वालों को एक वास्तविक वित्तीय संस्थान प्रतीत ही नहीं होती।

अब तक किए गए उपाय सहकारिताओं का स्वस्थ एवं कार्यक्रम बुनियादी एवं माध्यमिक ढांचा तैयार करने में सफल नहीं हो पाए हैं। सहकारिताओं की कार्यप्रणाली से जुड़ी हुई जटिलताएं, खासकर सच्चे जनतांत्रिक प्रबंधन का अभाव, राजनीतिक दबावों द्वारा भेदा जाना, राज्य सरकारों द्वारा गंभीर कार्यवाही की आम कमी, जमा संग्रहण को बढ़ावा देने में साख संस्थाओं की अक्षमता तथा इसके फलस्वरूप उच्चस्तरीय संस्थानों पर निर्भरता, उधारी कार्य पर अपर्याप्त बचत और व्यापार के स्तर के अनुपात में उच्च लेन–देन लागत, वसूली के अपर्याप्त प्रयास तथा एक के ऊपर दूसरे ऋण/ब्याज माफी योजनाओं आदि के कारण दूषित वसूली परिवेश की वजह से ये संस्थाएं सदस्यों, आरबीआई, नाबार्ड तथा भारत सरकार की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर पाई हैं।

विभिन्न अध्ययनों के द्वारा साख सहकारिताओं के असंतोषजनक कार्यनिष्पादन के जो कारण बताए गए हैं, वे इस प्रकार हैं :

- अपर्याप्त प्रेरणा तथा सदस्यों की सहभागिता का निम्न स्तर
- जनतांत्रीकरण तथा पेशेवर प्रबंधन की कमी
- राज्य सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक का दोहरा नियंत्रण
- बुनियादी कृषि साख समिति पर सचिवों/प्रबंधकों के दलों से जुड़े होने के कारण वे अपने कार्य निष्पादन के लिए समिति के प्रति उत्तरदायी नहीं होते।
- राज्य के रजिस्ट्रार अथवा सहकारी विभागों द्वारा लेखा परीक्षा सहित अपर्याप्त निगरानी, इससे धोखे और गबन के मामले या तो पकड़े नहीं जाते अथवा पकड़े जाने वसूली की कार्यवाही जारी नहीं रखी जाती।
- बुनियादी कृषि साख समितियों पर ऐसी गैर–साख गतिविधियां चलाने के लिए दबाव डाला जाता है जो कृषि क्षेत्र के विकास से नहीं जुड़ी होती। फलतः उन्हें हानि उठानी पड़ती है।
- अधिक कर्मचारी तथा उच्च प्रबंधन लागत
- जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों द्वारा दी जाने वाली उधारी बुनियादी कृषि साख समितियों के लाभ संग्रहण से नहीं जुड़ी होतीं।

संविधान के तहत सहकारिता राज्यों का विषय है जिसे संबद्ध राज्य सहकारी समिति अधिनियमों के अंतर्गत संचालित किया जाता है। वर्तमान में, पंजीकरण, सदस्यता, चुनाव, वित्तीय सहायता, ऋण देने के अधिकार, व्यापार संचालन, ऋण वसूली तथा लेखा परीक्षा जैसे सभी मामलों में सहकारिताएं राज्य सरकारों के नियंत्रण में हैं।

सहकारी बैंकों के प्रमुख प्रायः ऐसे चुने हुए सदस्यों की समिति होती है जो आवश्यक नहीं कि ऐसे पेशेवर लोग हों जो ऋणों की स्वीकृति, निवेश, ब्याजदर निर्धारण आदि सहित गंभीर व्यावसायिक निर्णय लेने में सक्षम हों। इनके लिए विशेषज्ञता का एक न्यूनतम स्तर अपेक्षित होता है। सहकारी संस्थाओं के कार्यकलापों के प्रबंधन में मुख्य कार्यकारी अधिकारी की भूमिका प्रायः न्यूनतम या नगण्य होती है।

उपरोक्त कारकों के परिणामस्वरूप व्यापार की मात्रा कम हो जाती है, संसाधन आधार और उधारी लेने वाली सदस्यता अल्प हो जाती है, बहुत अधिक बकाए की घटनाएं बढ़ जाती हैं एवं वसूली प्रायः रुक जाती है।

चुनौतियां

भारतीय अर्थव्यवस्था उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण के आलोक में सहकारिता को अपनी भूमिका को साख तथा गैर–साख सेवाओं के द्वारा ग्रामीण घरों का स्तर सुधारने पर केंद्रित करना होगा ताकि ग्रामीण अर्थतंत्र के प्राथमिक, माध्यमिक तथा सहायक क्षेत्रों को उपलब्ध कराई गई साख बड़े पैमाने पर स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का माध्यम बन सके और इस तरह ग्रामीण परिवारों में व्याप्त गरीबी पर प्रहार किया जा सके। इस प्रक्रिया में उनकी भूमिका बहुआयामी हो जाएगी तथा उन्हें सभी उपलब्ध ग्रामीण संसाधनों का नियोजित एवं अल्पलागत वाली विधि से एकत्रण एवं विनियोजन करना होगा, तथा प्रायोगिक संस्थानों, सेवा और विपणन सुविधा प्रदाता, सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों/व्यापारिक घरानों आदि के बीच आवश्यक वर्तमान कमजोरियों को दूर करें, उदीयमान नवीन बाजार आधारित अवसरों को हासिल करने के लिए अपनी आंतरिक शक्ति को उभारें तथा ग्रामीण इलाकों के खतरों और प्राकृतिक आपदाओं का मुकाबला करने के लिए समुचित सुरक्षा उपाय करें। संक्षेप में, जिन चुनौतियों का सामना करना है वे ग्रामीण बैंकिंग के द्वारा समग्र ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में भागीदारी से संबद्ध हैं। राष्ट्रीय विकास तथा सामाजिक कल्याण के लिए ग्रामीण विकास को अब सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानना होगा। समस्या केवल ग्रागीण इलाकों के विकास की नहीं है, वरन ग्रामीण समाजों के विकास की है ताकि अज्ञानता और निर्धनता दूर की जा सके तथा एक आत्मनिर्भर तथा स्वपोषी स्वस्थ आधुनिक लघु समाज का निर्माण करने की प्रक्रिया में सहायता की जा सके। इस प्रकार ग्रामीण विकास को अब केवल सकल राष्ट्रीय उत्पाद अथवा प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। अब अपेक्षा यह है कि बढ़ी हुई आय का वितरण इस प्रकार हो कि उसके परिणामस्वरूप ग्रामीण आबादी और विभिन्न

भौगोलिक क्षेत्रों में आय एवं संपत्ति की असमानता में उल्लेखनीय कमी आए। संक्षेप में, सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने में प्रत्येक ग्रामीण परिवार का तर्कसंगत हिस्सा होना चाहिए। मुख्य उद्देश्य पुनर्निर्माण और विकास करने का होना चाहिए कि उत्पादक परिसंपत्तियों, और श्रम के स्वामित्व से होने वाली आय का क्रमिक रूप से अधिक समतापूर्ण वितरण हो। यह अवधारणा हमारा ध्यान उन्नत आवास, विश्वसनीय तथा सुलभ उर्जा आपूर्ति, यातायात और संचार की समुचित सुविधा से युक्त कार्यक्रम ग्रामीण बस्तियों के निर्माण पर केंद्रित करती है। इसे वह बृहत्तर विश्व, उपयुक्त स्वास्थ्य एवं शैक्षिक सुविधाओं से संपर्क स्थापित पाएगा, साख एवं बाजार तक पहुंच पाएगा, सांस्कृतिक रूप से अनुप्राणित होगा तथा जाति एवं भूमि और जल के स्वामित्व तथा पेशे पर आधारित सामंती विभेदों और वर्गीकरणों से मुक्त होगा।

अपेक्षाएं

सहकारिताओं के सामने खड़ी चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी कार्य शैली का बदलना होगा एवं गुणवतापूर्ण प्रतिस्पर्द्धात्मक कौशल हासिल करना होगा। आवश्यकता सहकारिताओं राज्य सरकारों, आरबीआई, नाबार्ड तथा केंद्र सरकार के समन्वित एवं सकेंद्रित प्रयास से सभी स्तरों पर व्यापक और सतत सुधार आरंभ करने तथा उन्हें कार्यरूप में परिणत करने की है। उन्हें तत्काल अपने कौशल, उत्पादकता एवं लाभ को प्रभावित करने वाले मसलों को हल करना होगा। अनेक विशेषज्ञ समितियों ने सहकारिताओं के कार्य का बहुत ही विस्तृत अध्ययन किया है। तथा उन्हें गतिशील साख संस्थान बनाने और ग्रामीण ग्राहकों की आवश्कताओं के प्रति संवेदनशील हेतु विशिष्ट अनुशंसाएं की है। कुछ महत्वपूर्ण उपायों की चर्चा नीचे की जा रही है। इनपर सरकार और आरबीआई द्वारा तत्काल ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है:

- अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक दोनों ही क्षेत्रों में शीर्ष बैंकों से निचले स्तर से लेकर समुचित साख संरचना के विकास में अग्रणी भूमिका निभाने की अपेक्षा की जाती है। यद्यपि व्यावसायिकता तथा स्वस्थ प्रबंध प्रणाली के विकास न हो पाने, अपनी भूमिका के निर्वहन के लिए संभावनाओं और निर्णय लेने की स्वायत्तता की कमी से सहकारिताओं में परिवर्तन की गति धीमी हुई है जिससे वे उदीयमान वित्तीय क्षेत्र के सुधारों से उत्पन्न चुनौतियों तथा प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला करने में असमर्थ हो गई हैं। शीर्ष बैंकों से विभिन्न स्तरों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने तथा भाषी चुनौतियों का सामना करने के लिए मानव संसाधन, प्रबंधकीय, संगठनात्मक एवं वित्तीय सामर्थ्य बढ़ाने में सहयोग करना चाहिए। उनके लिए ऋण व्यापार, गैर–निधि व्यापार, कुशल वित्तीय मध्यस्थता, जोखिम प्रबंधन तथा प्रत्येक स्तर पर अनुत्पादक परिसंपत्तियों को कम करने में विविधता और विशेषज्ञता के प्रति अधिक ध्यान देना आवश्यक होगा। उन्हें निचले स्तरों के पर्यवेक्षक के रूप में अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए तथा प्रत्येक स्तर पर कुशल आंतरिक नियंत्रण प्रणाली सुनिश्चित करना चाहिए। साथ ही उन्हें समयबद्ध आंतरिक निरीक्षण और बाह्य लेखा परीक्षा भी सुनिश्चित करना चाहिए। जिसका प्रभाव संस्थान के प्रबंधन और क्रियाकलापों की गुणवत्ता में देखा जा सके। अल्पकालिक क्षेत्र में जिला सहकारी बैंकों से भी बुनियादी कृषि साख समितियों के सदृश भूमिका का निर्वहन अपेक्षित है।
- हालांकि अनेक सहकारी बैंकों में प्रशिक्षण प्रणाली मौजूद है, तथापि उनका मिलान वर्तमान तथा भावी कर्मचारियों की जरूरतों से शायद ही कभी किया मिलान करने का प्रयास किया जाता है। वांछनीय है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम में कौशल अभिवर्द्धन तथा योग्यता विकास को समुचित रूप से शामिल किया जाए। समय–समय पर कर्मचारियों के काम में परिर्वतन, कार्य संवर्द्धन तथा कार्य निष्पादन की पहचान देकर उनको काम की ओर प्रवृत्त रखना भी अनिवार्य है। प्रशिक्षण बैंक की क्षमता–निर्माण करें जिससे कि ग्रामीण बैंक केवल बैंकिंग अधिनियमों तथा व्यवहारों का ज्ञान ही न प्राप्त करें, बल्कि विभिन्न तरह के कौशल हासिल करें। उदाहरण के लिए उसके पास ग्रामीण प्रवृत्ति तथा लोकाचार के अनुकूल दृष्टिकोण, अभिवृत्ति तथा प्रबंधन शैली हो। उसके पास बैंक के ऋण व्यापार को बढ़ाने की संभावना वाली गतिविधियों के संदर्भ में आर्थिक संभावना का आकलन करने की योग्यता भी हो। ग्रामीण ग्राहकों के साथ व्यवहार करने और उनका विश्वास जीतने के लिए ग्रामीण बैंकों के पास प्रभावशाली संचार क्षमता भी होनी चाहिए।
- वर्तमान में बुनियादी कृषि साख समितियों तथा दीर्घकालिक संरचना को बैंकिंग विनियमन अधिनियम के क्षेत्र से बाहर रखा गया है। कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों को पूर्ण बैंक के रूप में कार्य करने तथा ग्रामीण बचत को प्रभावी तरीके से संग्रह करने की अनुमति देने से वे मजबूत संसाधन आधार तैयार पाएंगे एवं बाहरी वित्तीय सहायता पर निर्भरता कम कर पाएंगे। इससे इन बैंकों को बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराने तथा अन्य बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थानों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने में मदद मिलेगी, उनकी कवरेज बढ़ेगी और सहकारी क्षेत्र से बाहर निकलेगी, उनकी निवेश की संभावनाएं बढ़ेगी तथा वे प्रतिस्पर्द्धात्मक बाजार में निवेश साख में अपने अनुभव और विशेषज्ञता का उपयोग कर पाएंगे। इससे कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की ढांचागत कमियों और अवरोध भी कम होंगे।
- साख की निरंतर बढ़ती मांग के बावजूद सीमित संसाधनों के कारण सहकारी बैंकों का व्यापार कम रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में, उनका व्यापार बढ़ाने के लिए उनका संसाधनगत आधार, विशेषतः पूंजी बढ़ाने की बेहद आवश्यकता है।
- सहकारिताओं की लाभ–संभाव्यता को बढ़ाने की दिशा में ऋण लेने वाली सदस्यता तथा व्यापार की मात्रा में वृद्धि अनिवार्य है।
- राज्य सरकार, आरबीआई/नाबार्ड को सदस्य चालित सहकारी, संगठनों को सुविधाएं उपलब्ध कराने की दृष्टि अपनानी चाहिए। इसके लिए राज्य के अधिनियमों तथा संगठनों के संविधानों में आवश्यक संशोधन के लिए समयबद्ध रूप से एक निश्चित कार्य योजना तैयार करनी होगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे अत्यधिक नियंत्रप और विनियमों का शिकार नहीं हो रहे हैं। सहकारिताओं पर उनके नियंत्रण का समीक्षा करने और उन्हें कम करने की जरूरत है।
- निदेशक मंडल के अधिक्रमण का अधिकार केवल राज्य सरकार के पास नहीं होना

चाहिए, बल्कि इनका उपयोग नाबार्ड के साथ परामर्श कर बहुत ही विरल स्थितियों में किया जाना चाहिए।

- अधिकांश सहकारी बैंकों की मौजूदा संरचनात्मक स्वरूप स्वस्थ व्यापार प्रबंध के सिद्धांतो के आधार पर वित्तीय संस्थान के प्रबंधन मानदंडों के अनुरूप नहीं है। उन्हें स्वस्थ कार्मिक नीतियां तैयार करनी होंगी जिनमें उपयुक्त मानव शक्ति नियोजन, मूल्यांकन, कर्मचारी मानदंड, प्रबंधन की दूसरी पंक्ति, भर्ती, नियुक्ति प्रशिक्षण, कैरियर प्रोन्नयन, प्रबंधकीय विकास, स्थानांतरण, प्रोन्नति, प्रोत्साहन–प्रावधान आदि को सम्मिलित करना होगा।
- अतिक्रमण की दशा में सरकार को बोर्ड के ऊपर मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में अपना अधिकारी नहीं नियुक्त करना चाहिए। मुख्य कार्यकारी अधिकारी को उपयुक्त बैंकिंग योग्यता अनुभव और विशेषज्ञता वाला व्यक्ति होना चाहिए।
- अधिक्रमण किए जाने की स्थिति में बोर्डों को अधिकतम छह महीने की अवधि के भीतर पुनर्स्थापित कर देना चाहिए।
- सहकारी बैंकों को स्वस्थ प्रबंधकीय प्रणाली अपनाकर व्यावसायिक संगठनों की तरह काम करना चाहिए। बाजार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए उन्हें भावी आवश्यकताओं के अनुमान को ध्यान में रखना चाहिए। उन्हें व्यावसायिक और उत्तरदायी होना चाहिए। चुने हुए सदस्यों को बैंकिंग, लेखांकन, कोष प्रबंधन, साख प्रबंधन, सूचना प्रौद्योगिकी आदि के क्षेत्र का व्यावसायिक ज्ञान हो। यदि वे उपरोक्त अपेक्षाएं पूरी नहीं करते हों, तो नाबार्ड को बोर्ड में उपरोक्त योग्यता वाले व्यक्ति नामित करना चाहिए।
- सहकारिताओं को स्वशासी विकेंद्रित संस्थान बनाने के समग्र लक्ष्य के मद्देनजर उन्हें जितनी अधिक स्वायत्तता दी जा सके, दी जानी चाहिए ताकि उनका समुचित विकास और प्रगति हो सके। सहकारी बैंकों के व्यावसायिक कामकाज के लिए सच्चे सहकारी नेतृत्व को समुचित प्रशिक्षण, विशेषज्ञतापूर्ण ज्ञान, सूचना तथा कौशल प्रदान कर उनका विकास किया जाए।
- राज्य सरकार और आरबीआई/नाबार्ड के बीच नेतृत्व के दोहरेपन के कारण प्रायः एक दूसरे के विपरीत दिशा निर्देश जारी हो जाते हैं जिनकी वजह से सहकारिताओं का कामकाज प्रभावित होता है। बैंकिंग विनियमन अधिनियम 1949 के प्रावधानों को राज्य अधिनियमों/उपनियमों से टकराव की स्थिति में उनके ऊपर प्रभावी होना चाहिए। बैंकिंग क्रियाकलाप आरबीआई द्वारा विनियमित बैंकिंग अधिनियम के अधीन लाए जाएं।
- नियंत्रणों की परस्पर व्याप्ति दूर करने तथा सहकारिताओं को क्रियात्मक स्वायत्तता एवं प्रचालनात्मक स्वाधीनता प्रदान करने के लिए विशेष योजना तैयार की जाए जिसमें राज्य सरकार, आरबीआई एवं नाबार्ड की भूमिका, जिम्मेदारियों तथा अधिकारों के विकेंद्रीकरण के द्वारा विनियमन के क्षेत्रों की संबंधों की स्पष्ट पुनर्व्याख्या हो।
- सहकारी साख संस्थानों में सभी स्तरों पर व्यापारिक उत्पादों के विविधीकरण की बड़ी आवश्यकता है। ग्राहकों/सदस्यों को त्वरित, कुशल सस्ती सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए बैंकों को अपनी तकनीक और सेवाओं को बेहतर बनाना चाहिए। विविधीकरण के ये क्षेत्र गृहऋण, उपभोक्ता ऋण, संघ को वित्त, सेवा क्षेत्र के लिए वित्त, बीमा उत्पादों का वितरण आदि हो सकते हैं।
- व्यापार की मात्रा बढ़ाकर और अपनी सेवाएं बेहतर कर स्वस्थ बैंक ग्राहक संबंधों का विकास करना बैंकों के कार्यक्रम बने रहने के लिए अनिवार्य है।
- खराब ऋण भुगतान तथा उसमें चूक की वजह प्रायः प्राकृतिक आपदाएं होती हैं। इसलिए एक ऐसी संस्थागत विधि तैयार करने की अवश्यकता है जिससे कि प्रभावित किसानों को अबाध रूप से साख की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।
- वर्तमान संदर्भ में सहकारी बैंकों को आर्थिक रूप से कार्यक्षम बनाने तथा अपने वित्तीय क्रियाकलापों को जीवनक्षम बनाने की जरूरत महसूस करनी चाहिए। उन्हें अपने कार्यकलापों की लागत का व्यावहारिक और वैज्ञानिक आकलन करना चाहिए। इसमें कोष उगाही, लेन–देन और जोखिम लागत, आकस्मिक स्थितियों के लिए तर्कसंगत प्रावधान कर सदस्यों से ऋण पर लिए जाने वाला ब्याज निर्धारित करना चाहिए। इसके अलावा, ग्राहकों की जमा पर दिया जाने वाला ब्याज बाजार से संबद्ध होना चाहिए, व्यावसायिक बैंकों की तुलना में स्वैच्छिक रूप से अधिक नहीं।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भागीदारी जैसे अलाभकर व्यापार छोड़ देना चाहिए।
- सहकारी बैंकों को संसाधनों के प्रत्येक स्रोत पर कुशल कोष प्रबंधन नीति तथा कार्यविधि के द्वारा लाभ को अधिकतम करने पर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए संस्था केंद्रित निवेश नीतियां विकसित करने की जरूरत है जिनमें कोष का स्वरूप, परिसंपत्तियों तथा दायित्वों की परिपक्वता विधि, मुद्रा बाजार के उपकरणों की उपलब्धता तथा कुशल निगरानी एवं नियंत्रण विधि शामिल हैं।
- सदस्यों की विविध प्रकार की साख एवं गैर–साख सेवा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक संरचना का तत्काल एकीकरण करने और 'एकल खिड़की' संगठन बनाने की आवश्यकता है। समय पर सहजता से ऋण उपलब्ध कराने के लिए साख संरचना की परतें कम करना सबसे जरूरी है।
- सरकार को यह निर्णय करना चाहिए कि किसी भी कारण से ऋण/ब्याज को न तो माफ किया जाएगा न ही स्थगित, न ही ब्याज दर पर सब्सिडी दी जाएगी।
- एक लाख रुपये से अधिक के ऋणों के मामले में बकाये की वसूली तेज करने के लिए सहकारी बैंकों में बकाया वसूली प्राधिकरण को लागू करना चाहिए।

निष्कर्ष

स्वाधीनता के उपरांत ग्रामीण सहकारिताओं ने कृषि में आत्म–निर्भरता प्रदान करने तथा इसे निर्यातोन्मुख बनाने में बहुत ही उल्लेखनीय योगदान किया है। हालांकि कृषि उपज के लाभ ग्रामीण आबादी के बड़े हिस्से तक नहीं पहुंच सकते। इसके अलावा, चूंकि ये संस्थाएं ग्रामीण इलाकों में सुगमतापूर्वक अपने कार्यसंचालन में गंभीर समस्याएं झेल रहे हैं, इसलिए उन्हें मान्यता प्रदान करने, पुनर्गठित करने तथा फिर से ताकत प्रदान करने की जरूरत है ताकि उन्हें ग्रामीण बैंकिंग एवं ग्रामीण विकास का प्रभावशाली उपकरण बनाया जा सके। ❑

अनुवाद : अंजली सिन्हा

सहकारी बैंकिंग की समस्याएं और संभावनाएं

डा. सैमवेल के. लोपोयेटम

सहकारी बैंकिंग प्रणाली का लक्ष्य है मध्यम आय समूहों से बचतों को इक्टठा करना और समाज के मध्यम तबकों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की ऋण आवश्यकताएं पूरी करना। इस प्रकार, यह अर्थव्यवस्था की वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ग्रामीण क्षेत्र में कृषि और संबद्ध गतिविधियों के लिए दिए जाने वाले कुल संस्थागत ऋण का सबसे बड़ा हिस्सा (55%) इसके द्वारा दिया जाता है। ग्रामीण इलाकों में ऋण देने वाली इकाइयों में से लगभग 70% के साथ ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाएं इन क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने वाली प्रणाली में ऊंचा स्थान रखती हैं।

भारत में सहकारी बैंकिंग प्रणाली के ग्रामीण सहकारी समितियां (पीएसीएस), शहरी सहकारी बैंक (यूसीबी), लघु अवधि एवं मध्यम अवधि ऋण के लिए राज्य स्तरीय संघ तथा दीर्घ अवधि ऋण के लिए राज्य स्तरीय संघ, जिन्हें राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है, शामिल है। यह सभी बैंक आज कड़े मुकाबले का सामना कर रहे हैं और प्रश्न यह उठता है इस सतत उदारीकृत आर्थिक वातावरण के कौन बचा रहेगा? उत्तर स्पष्ट है, जो स्वस्थ या उपयुक्त है और बदले वातावरण में अनुरूप बदलने को तैयार है, वही बचेगा।

सहकारी बैंकिंग प्रणाली का लक्ष्य है मध्यम आय समूहों से बचतों को इक्टठा करना और समाज के मध्यम तबकों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों का ऋण आवश्यकताएं पूरी करना। इस प्रकार, यह अर्थव्यवस्था की वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, ग्रामीण क्षेत्र में कृषि और संबद्ध गतिविधियों के लिए दिए जाने वाले कुल संस्थागत ऋण को सबसे बड़ा हिस्सा (55 प्रतिशत) इसके द्वारा दिया जाता है। ग्रामीण इलाकों में ऋण देने वाली इकाइयों में से लगभग 70 प्रतिशत के साथ ग्रामीण ऋण सहकारी संस्थाएं इन क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने वाली प्रणाली में ऊंचा स्थान रखती हैं। सहकारी ऋण संस्थाएं कृषि क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋण का 55 प्रतिशत उपलब्ध कराती हैं। ग्रामीण सहकारी बैंकों का ग्राम्य जमाओं में हिस्सा 30 प्रतिशत और कृषि व ग्रामीण विकास हेतु बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों और अग्रिमों में 44 प्रतिशत है।

दरअसल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यों में कुल शहरी सहकारी बैंकों के 80 प्रतिशत और जमाओं के 75 प्रतिशत की उपस्थिति है, बदलते वैश्विक बाजार रुझानों के अनुरूप जुलाई 1991 में आर्थिक उदारीकरण को औपचारिक रूप से अंगीकार किया गया था। नई आर्थिक नीति (एनईपी) इस उच्च आशा के साथ शुरू की गई थी कि यह सभी आर्थिक समस्याओं से मुक्ति दिलाएगी। सहकारी बैंकिंग क्षेत्र पहली और दूसरी पीढ़ी के आर्थिक सुधारों का पूरा लाभ नहीं ले पाए। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए कोई एक समान कार्यक्षेत्र नहीं था और आर्थिक उदारीकरण के विपरीत प्रभावों के चलते सहकारी क्षेत्र विशेष तौर पर प्रभावित हुआ। आर्थिक सुधार के पैकेज उचित रूप से तैयार (नियोजित) नहीं किए गए थे; इसलिए इनके लाभ सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के असली सदस्यों तक नहीं पहुंच पाए।

वैश्विकरण ने बेशक आर्थिक प्रणाली में नई चुनौतियां, भय संभावनाएं, अवसर और क्षमताएं उपलब्ध कराई हैं, इसका अर्थ है वैश्विक पहुंच को बढ़ाने, प्रतियोगिता का सामना करने, विश्वव्यापी उत्पादन प्रणालियां, विपणन व्यवस्थाएं, वित्तीय प्रवाह लागू करने और वैश्विक कार्य प्रणालियां/दृष्टिकोण को अंगीकार करने के लिए व्यापारिक रणनीतियों के लिए वैश्विक दृष्टिकोण को स्वीकारना और प्रस्तुत करना बैंकिंग प्रणाली के वैश्विकरण के लिए पोस्टकॉर्ब के सार्वभौमिकरण और संगठन को एक ऐसी आत्मनिर्भर प्रणाली के रूप में विकसित करने की आवश्यकता होगी जो कई समुद्रपारीय देशों में प्रचालन कर रहा हो, जो दोनों दिशाओं में प्रभावी संचार नेटवर्क के लिए सहयोग कर रहा हो। सहकारी बैंकिंग प्रणाली को उच्च स्तरीय बैंकिंग उत्पाद व सेवाएं उपलब्ध कराने, वित्तीय अभियांत्रिकी, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों में नवीनतम

फोटो : अर्चना सूद

ज्ञान व दक्षता का इस्तेमाल करने, उपभोक्ताओं और इस्तेमालकर्ताओं के हितों का ध्यान रखने के लिए साहस व दृढ़ता से होना चाहिए। वैश्विक वित्तीय प्रणाली में प्रतिभागी बने रहने के लिए सहकारी बैंकिंग व्यवस्था को इन उम्मीदों पर खरे उतरना चाहिए अपनी ढांचागत सुविधाओं को मजबूत बनाना चाहिए। आर्थिक उदारीकरण और वैश्विकरण के दौर में सहकारी बैंकिंग प्रणालियां आंतरिक और बाहरी मुश्किलों का सामना कर रही हैं, बेशक इनमें से कुछ समस्याओं को समझा जा सकता है, अधिकाधिक गला–काट प्रतियोगिता, स्वायत्तता और स्वतंत्रता का अभाव, जनतांत्रिक प्रबंधकीय नियंत्रण न होना (तमिलनाडु राज्य में पिछले 20 वर्षों से चुनाव नहीं हुए हैं), अप्रशिक्षित कर्मचारी और अपर्याप्त मानव संसाधन कार्यक्रम, लेखा परीक्षा प्रशासन में विशाल बकाए, राज्य व केंद्र सरकारों की प्रतिबंधात्मक नीतियां, कमजोर ढांचागत सुविधाएं, आर्थिक कार्यकलापों का अपर्याप्त फैलाव, उद्यमिता एवं व्यापार संचालन में आजादी न होना, अपर्याप्त कंप्यूटरीकरण, अपर्याप्त डाटाबेस मैनेजमैंट सिस्टम, कोष एवं नगद को संभालने में अक्षम होने से आवश्यकता से अधिक कोष इकटठा होना, प्रबंधन और सौदों की उच्च लागत, अफसरशाही, उत्पादकता एवं लाभप्रदता मे गिरावट का समान, क्षेत्रीय असंतुलन, विधायी एवं नीतिगत बाध्यताएं, संसाधनों की कमी, भारी बकाए और गैर–निष्पादन संपत्तियां, खराब प्रबंधन एवं कुप्रशासन, विशेष अधिकारियों (एसओ) की नियुक्ति, अत्यधिक राजनीतिकरण, कोषों में गड़बड़ियां (वित्तीय हानियां और खराब प्रबंधन), अंतर्राष्ट्रीय मानकों और गुणवत्ता का मुकाबला न कर पाना, सतत निगरानी और पर्यवेक्षण की आवश्यकता, स्वार्थी व बेईमान सदस्यों का होना, अपना हित देखना, निष्प्रभावी और अक्षम प्रबंध समिति सदस्य को उभरते आर्थिक उदारीकरण व वैश्विकरण से कदम मिलाकर नहीं चल पाने, कम लागत वाली विदेशी प्रतियोगी फर्मों का प्रवेश तथा उनकी निम्न स्तरीय सेवाएं, इन सभी समस्याओं ने भारत में सहकारी संस्थानों के संचालन पर प्रभाव डाला है।

सहकारी बैंकिंग व्यवस्था और वित्तीय क्षेत्र में सुधार

उदारीकरण और सार्वभौमिकरण के दौर में उपलब्ध प्राकृतिक, सामग्री और मानव संसाधनों का सबसे सक्षम और प्रभावी तरीके से उपभोग करने की त्वरित आवश्यकता है। इन सभी संसाधनों का उपयोग करने के लिए मैक्रो और माइक्रो स्तरों पर सुदृढ़ वित्तीय या बैंकिंग प्रणाली होना आवश्यक है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण (1969) के बाद भी, गरीबों के बीच बैंकिंग संस्कृति अभी भी नगण्य है, क्षेत्रीय बैंकिंग असंतुलन अभी पूरी तरह दूर नहीं हुआ है, और व्यापार व उद्योग के सभी स्तरों में अनुपयुक्त प्रगति हुई है। दरअसल ग्रामीण क्षेत्रों में, पीएसीबी, आरआरबी, लीड बैंक, आदि जैसे ग्रामोन्मुख बैंक ग्रामीण उपभोक्ताओं, ग्रामोद्योगों और ग्राहकों की समस्याओं से प्रभावी तरीके से नहीं निबट पा रहे हैं, यह सभी मानते हैं कि नरसिम्हन समिति (अगस्त 14, 1991) ने अपनी रिपोर्ट में बैंकिंग संस्थानों के संचालन में लाभप्रदता को सुधारने तथा सभी बैंकों के निर्णय लेने की प्रक्रिया में संचालनगत लचीलापन व स्वायत्तता को बढ़ाने और साथ ही वित्तीय क्षेत्र के सुधारों की सिफारिश की थी। सुधार बैंकिंग और पूंजी बाजार क्षेत्र दोनों पर लागू होने चाहिए। इन सुधारों को पूरा करने के लिए चक्रवर्ती समिति (1985) और नरसिम्हन समिति (1991) ने भारतीय बैंकिंग और वित्तीय प्रणाली के सुधार को लक्ष्य बनाना। उन्होंने एक बड़े हिस्से की न्यूनतम ऋण दर को कम करने की सिफारिश की और सावधि हिस्से की न्यूनतम ऋण दर को कम करने की सिफारिश की और सावधि जमाओं को ब्याज दर नियंत्रण से मुक्त कर

दिया गया। विशेष पंचाटों के माध्यम से शंकित और डूबे हुए ऋणों के भुगतान करने के लिए देशभर में संपत्ति पुनर्निर्माण कोष (एआरएफ) की स्थापना और बैंकिंग व वित्तीय गतिविधियों में निजी क्षेत्र के लिए अधिक अवसर देना इनमें शामिल थे। उन्होंने बैंकों और वित्तीय संस्थानों में संचालनगत लचीलापन और आंतरिक स्वायत्तता देने की आवश्यकता पर भी बल दिया है।

साथ ही, वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के जरिए नए सुधारों के पैकेज लाकर विवेकपूर्ण मानकों का मार्ग प्रशस्त किया गया। बैंकों की बैलेंस शीट और आय सारणियां पारदर्शी बनाई गई, बैंकिंग प्रणाली में ब्याज को नियंत्रण मुक्त किया गया, प्रौद्योगिकी को उन्नत बनाया गया, तथा पर्यवेक्षण व प्रतियोगी वातावरण की मजबूत प्रणाली लाई गई। यह सभी कारक सहकारी बैंकिंग व्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं। हालांकि, ऋणों के क्षेत्र में गुणवत्ता के गिरते स्तर ने आय के सृजन और पूंजी कोष में वृद्धि पर सीधा असर डाला है।

ऋणों के पैकेज की गुणवत्ता खराब होने पर यह सहकारी बैंकिंग प्रणाली के व्यापारिक कार्यनिष्पादन में कमी लाता है, जिसे सहकारी बैंकिंग संस्थानों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महसूस किया जा सकता है। इससे गैर–निष्पादनकारी संपत्तियां/अग्रिम बढ़ते हैं। जो आगे चलकर बैंकों के वित्तीय स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं यह सहकारी बैंकों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं और व्यापारिक प्रदर्शन पर जमाकर्त्ताओं और निवेशकों के विश्वास पर भी प्रभाव डालते हैं।

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां (पीएसी)

प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां ग्राम स्तर की सहकारी संस्था होती है। इनमें से बड़ी संख्या में आमतौर पर बहु–उद्देश्यीय और बहु–कार्य हैं। सदस्यों का अपना यह संगठन उनकी अपनी सामाजिक–आर्थिक बेहतरी के लिए काम करता है। एलपीसी के दौर में पीएससी के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह सदस्यों के उद्देश्यों को पूरा करने और खुली बाजार व्यवस्था के बने रहने के लिए लाभप्रद व्यापार को अपनाए। पीएसी के सदस्यों को भी इनके प्रबंधक और व्यापारिक सौदों में सक्रिय आर्थिक भागीदारी दर्शानी चाहिए। सभी प्राथमिक कृषि सहकारी समितियां जिला केंद्रीय सहकारी बैंकों से संबद्ध होती हैं और अपने संचालन क्षेत्र के रूप में कई गांवो को समेटे होती हैं। विभिन्न प्रकार के कृषकों को प्रवेश देते हुए वह बैंकिंग एवं गैर–बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। वह कृषि मजदूरों और कारीगरों को सेवा देती हैं। बैंकिंग संस्थानों द्वारा किए जाने वाले सभी प्रबंधकीय और वित्तीय सौदे भी यह निपटाती है। यह कृषि उत्पादन ऋण (लघु व मध्यम अवधि) उपलब्ध कराने के साथ–साथ उर्वरकों, उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री, भंडारण सुविधाओं को उपलब्ध कराने और कृषि आदानों की खरीद का काम भी करती हैं।

93816 प्राथमिक सहकारी कृषि ऋण समितियों के नेटवर्क के साथ भारतीय सहकारी ऋण प्रणाली ऐसी सबसे बड़ी व्यवस्था है। इनमें से 65.7 प्रतिशत लाभप्रद और 27 प्रतिशत लाभ कमाने योग्य हैं। इस नेटवर्क में शत प्रतिशत गांवों के 67 प्रतिशत कृषि परिवार शामिल हैं। इसका जमा आधार 196036 करोड़ रुपये का है और सदस्यों की संख्या दस करोड़ है इसलिए यह कृषि उत्पादन को सीधे ऋण देने और कृषि क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

पीएसी के सफल संचालन के लिए रणनीतियां

पीएसी के सफल संचालन की मूल पहलें इस प्रकार हैं :

- संवेदनशील नेतृत्व शैली : हालांकि यह ईमानदार, प्रवर्त्तनकारी, जोखिम लेने वाले, सदस्यों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील रहे हैं, नए दौर में उन्हें खुले दिमाग से काम करते हुए प्रभावी विकासात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उन्हें अपनी कार्य शैली, प्रबंधन व प्रशासनिक प्रक्रियाएं, व्यापार संचालन व्यवस्थाएं सुधारनी चाहिए, तभी वह एलपीजी से कदम मिलाकर चल सकेंगे।
- पीएसी के सदस्यों और प्रबंध समिति सदस्यों को एलपीजी के बारे में शिक्षा और प्रशिक्षण की सुविधाएं दी जा सकती है,
- ऋणों की पुनर्अदायगी को अधिक सक्षम और प्रभावी बनाया जाना चाहिए,
- पीएसी को उच्चतर व्यापारिक आय और अच्छे लाभ को लक्ष्य बनाना चाहिए,
- व्यापारिक सौदों में सभी सदस्यों की सक्रिय भागीदारी को अवश्य बढ़ाया जाना चाहिए,
- सहकारी प्रयासों के प्रबंधन और प्रशासन में सदस्यों की सक्रिय भागीदारी,
- लाभप्रदता और व्यावहारिकता के परिप्रेक्ष्य में व्यापारिक गतिविधियों को यथार्थ रूप देना।
- उपयुक्त सूचना और प्रबंध सूचना प्रणाली का इस्तेमाल
- ऋण अदायगी नीतियों और प्रक्रियाओं में सुधार
- पीएसी के व्यापारिक मामलों को चलाने के लिए पेशेवर प्रबंधकों की नियुक्ति
- पीएसी को व्यावहारिक व्यापार संवर्द्धन योजनाएं विकसित करनी चाहिए।

जिला केंद्रीय सहकारी बैंक (डीसीसीबी)

जिला केंद्रीय सहकारी बैंक आमतौर पर राज्य में जिला मुख्यालय पर स्थित होते हैं। यह बैंक भारतीय रिजर्व बैंक के बैंकिंग नियंत्रण अधिनियम द्वारा शासित होते हैं। इनकी शाखाएं ग्रामीण इलाकों में होती हैं, डीसीसीबी की सदस्यता में पीएसी और व्यक्ति हो सकते हैं। इन बैंकों की मुख्य योजनाओं में चालू व बजत खाते, सावधि जमाएं, राष्ट्रीयकृत बैंकों, शीर्ष बैंकों व सरकार से ऋण, सहकारी समितियों व व्यक्ति से जमाएं इकटठी करना शामिल है। दिए जाने वाले ऋणों में लघु, मध्यम और दीर्घ अवधि के ऋण शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलकर जमाएं इकटठा करने में यह व्यापारिक बैंकों से मुकाबला करते हैं। इस समय देश में कुल 367 जिला केंद्रीय सहकारी बैंक हैं, जो 30 राज्य स्तरीय सहकारी बैंकों से संबंध हैं। आर्थिक विकास में सहकारी ऋण प्रदाय प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है, विशेषकर कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में। दरअसल, इसका महत्व पहले से भी अधिक बढ़ा है क्योंकि वाणिज्यिक बैंक धीरे–धीरे कृषि क्षेत्रों के लक्ष्य को भी पूरा नहीं कर पा रहे हैं, जो कृषि और संबंद्ध गतिविधियों के सीधे वित्त पोषण के लिए उनकी शुद्ध ऋण अदायगी की 18 प्रतिशत तय किया गया था, हालांकि 1990 में यह 17.4 प्रतिशत

रणनीतियों को दर्शाने वाला फ्लोचार्ट

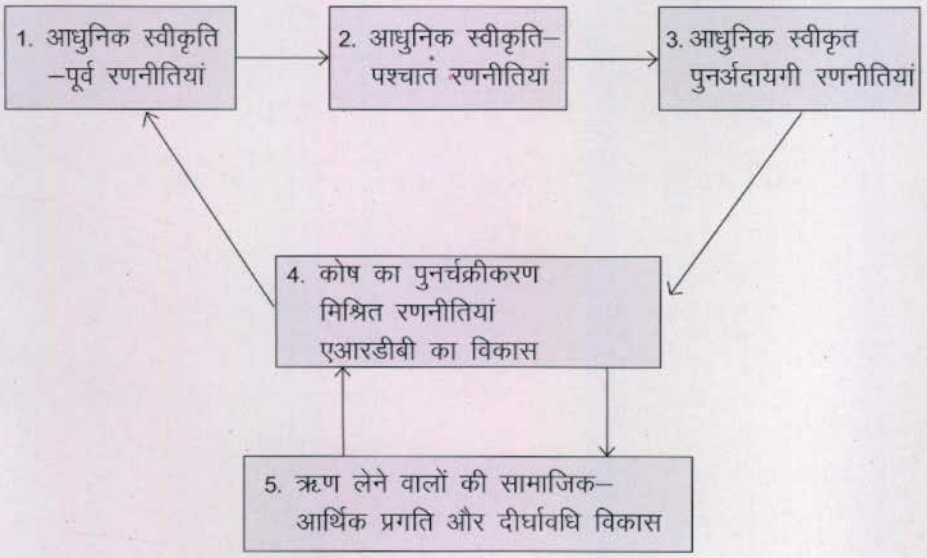

था और बाद के वर्षों में और भी नीचे आ गया।

शहरी सहकारी बैंक (यूसीबी)

पिछले दशक में शहरी सहकारी बैंकों ने उल्लेखनीय प्रगति की है, सहकारी ऋण आंदोलन और गैर–कृषि ऋण समितियों के रूप में पहचान बनाने में एक अलग स्थान पाने तक इन्होंने लंबा रास्ता तय किया है यह शहरी क्षेत्रों में रहने वाले सीमित साधनों से युक्त लोगों की ऋण आवश्यकताएं पूरी करते है। यह आमतौर पर छोटे दुकानदारों, कारीगरों, वेतनभोगियों और अन्य व्यक्तियों को व्यक्तिगत या स्वर्ण, चांदी या वस्तुओं की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं। बैंकिंग पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत शहरी सहकारी बैंकों का मुख्य उद्देश्य बैंकिंग है, जो अन्य वाणिज्यिक बैंकों के समान है, प्रमुख गतिविधियों में सदस्यों और गैर–सदस्यों से जमाएं इकटठी करना, सदस्यों और समाज के कमजोर वर्गों को ऋण उपलब्ध कराना, मूल्यांकन वस्तुओं को रखने के लिए लॉकर्स उपलब्ध कराना, पृष्ठांकित बिलों का संग्रहण, कर्मचारियों व निदेशकों के प्रशिक्षण और शिक्षण की सुविधाएं बनाना और उपभोक्ताओं को परामर्श सेवाएं प्रदान करना शामिल हैं, हाल ही में, भारतीय रिजर्व बैंक ने शहरी सहकारी बैंकों को उनकी प्रगति और कार्य के आधार पर कमजोर, बीमार और मजबूत श्रेणियों में बांटा है, क्योंकि यह आजकल बढ़िया कार्य निष्पादन नहीं कर रहे हैं, यूसीबी का प्राथमिक उद्देश्य किफायत, बचत, आपसी मदद और सहायता की भावना भरना है, जिसके परिणामस्वरूप इससे जुड़ने वाले लोगों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार आता है। कई शहरी सहकारी बैंकों को विदेशी मुद्रा विनिमय और अनिवासी भारतीय के खाते रखने की अनुमति भी दी गई है।

प्राथमिक कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (पीएआरडीबी)

लंबी अवधि के सहकारी कृषि ऋण का सांगठनिक ढांचा देशभर में एक समान नहीं है। इनमें पीएआरडीबी नाम प्राथमिक स्तर के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं। विभिन्न ग्रामीण सौदों के वित्तपोषण के लिए पीएआरडीबी और राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों को पुनर्वित्त सहायता देने के लिए नाबार्ड ने कदम उठाए हैं। यह बैंक कृषि और गैर–कृषि कार्यों के लिए ऋण देते हैं और मुख्यतः इन कामों से संबंधित हैं : i) भूमि सुधार और खेती के बेहतर तरीके इस्तेमाल करने के लिए ऋण देना ii) छोटे नलकूपों, नहरों आदि जैसे लघु सिंचाई योजनाओं के लिए ऋण देना iii) दक्ष और सस्ती खेती सुनिश्चित करने के लिए चकबंदी हेतु ऋण iv) बागवानी और सामाजिक वानिकी के लिए ऋण v) कृषि औजारों की खरीद vi) बैलगाड़ी, गोबरगैस संयंत्रों का विकास vii) नाबार्ड द्वारा स्वीकृत अन्य उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण उपलब्ध कराना।

पीएआरडीबी द्वारा ऋण वितरण कार्यों के विविधता लाना

पिछले दशक के दौरान सदस्यों को दिए जाने वाले ऋणों मे कई गुणा वृद्धि हुई है क्योंकि सदस्यों ने खेती के आधुनिक तरीकों और तकनीकों में रुचि दर्शायी है, इसलिए कृषि संबंधी फार्म ऋणों की और ग्रामीण गैर–फार्म क्षेत्र में ऋणों की आपूर्ति के लिए मांग बढ़ी है। ऋण अदायगी कार्यों के पुश और पुल कारकों को देखते हुए पीएआरडीबी अपने व्यापारिक संचालनों में विविधता ला रहे हैं। उनके पास मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्था के अनुरूप अपनी विविधीकरण नीतियां और उपाय हैं, इसलिए उनकी रणनीतियां और नीतियां बाजार की आवश्यकताओं से चलने वाली और बाजार आधारित ही होनी चाहिए, यानि वे लघु आकार के ग्रामोद्योगों, कृषि प्रसंस्करण, व्यापार सेवाओं, विपणन, वाणिज्य, वित्तीय सेवाओं, लघु आकार के व्यापारों की दिशा में उन्मुख होने चाहिए। दूसरे शब्दों में, एपीजी द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सामना करने के लिए पारंपरिक क्षेत्रीय दृष्टिकोण से अलग हटकर नई सोच अपनानी होगी। बैंकिंग व्यापार कार्यों में तेजी लाने और उसे बढ़ाने के लिए उदारीकृत आर्थिक–नीति वातावरण एक प्राथमिक शर्त होगी।

स्वपोषी दीर्घ अवधि की कृषि ऋण प्रणाली की आवश्यकता

दीर्घ अवधि कृषि ऋण रणनीति और नीति का विकल्प एआरडीबी के लंबी अवधि के मूल लक्ष्यों और उद्देश्यों तथा कार्य प्रणाली को अपनाने, ऋण देने, संसाधन आबंटित करने और प्राकृतिक संसाधनों में दक्ष उपयोग का निर्धारण हैं। कृषि ऋणों की पुनर्अदायगी प्रक्रिया में दक्षता भविष्य में इन लक्ष्यों को पाने में मददगार होगी।

लंबी अवधि में, सूत्रबद्ध आधुनिक रणनीतियां और नीति विकल्प के लहरी प्रभाव दीर्घावधि कृषि ऋण प्रणाली के सभी क्षेत्रों में हो सकते हैं, जैसे

- खुले बाजार की अर्थव्यवस्था में आरडीबी के लिए उपयुक्त विशिष्ट भूमिकाओं की पहचान।

- एलपीजी के दौर में अन्य बैंकों के साथ विभिन्न भूमिकाओं का यथायोग्य समागम।
- ताकत और अवसरों के संयुक्त प्रभावों को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयास।
- लक्ष्यों और उपलब्धियों के रूप में योजनाएं अभिव्यक्त करना।
- दीर्घावधि कृषि ऋण अदायगी की प्रक्रियाएं और पर्यावरणीय (आंतरिक व बाह्य) परिवर्तनों का समय निर्धारित करना।
- आधुनिक रणनीति विकसित करना और उसे प्रबंधकीय कार्यप्रणाली में परिवर्तित करना, जिसमें प्रत्येक चरण पर त्वरित निर्णय लेने की आवश्यकता होती है।
- निम्नलिखित के द्वारा आधुनिक रणनीति और विकल्पों के टिकाऊपन के निर्धारण
  i) एआरडीबी वस्तुओं और सेवाओं का लगातार मूल्यांकन
  ii) एलपीजी के दौर में बैंकिंग उद्योग/प्रणाली में प्रतियोगी समन्वय
  iii) प्रमुख सफलता कारक (केएसएफ) की गणना और उपयोग
  iv) एलपीजी के दौर में एआरडीबी के आगे बढ़ने की संभावनाओं और लाभ दक्षताओं का मूल्यांकन
  v) भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए बाजार की ताकत और कमजोरियों का निर्धारण
  vi) एआरडीबी के वित्तीय ढांचे को मजबूत बनाने के लिए लंबी अवधि के प्रबंधन व प्रशासन की वित्तीय क्षमता बनाना।

भारत में कृषि सहकारी ऋण प्रणाली की अदायगी और वापसी प्रक्रिया में आधुनिक बहु–योजक दृष्टिकोण

सभी अति महत्वपूर्ण कारकों को शामिल करते हुए ऋण अदायगी और वापसी प्रक्रिया के लिए नया आधुनिक मॉडल तैयार करने की कोशिश की गई है। (देखें फ्लोचार्ट)

ऋण अदायगी और वापसी प्रक्रिया में आधुनिक बहुयोजक दृष्टिकोण के घटक

1. आधुनिक स्वीकृतिपूर्व रणनीतियां और उनके प्रमुख गुण :

- ऋण लेने वाले की उपयुक्त पहचान
- उपयुक्त मूल्यनिर्धारण दक्षता–ऋण लेने वालों के स्वभाव और पुनर्अदायगी व्यवहार का मूल्यांकन
- ऋण या निवेश की उपयुक्त ऋण निर्णय संबंधी अवधि
- आवेदनों की अधिक सावधानीपूर्वक जांच–पड़ताल
- पुनर्अदायगी अवधि तय करने में उपयुक्त समझदारी
- समुचित ऋण अदायगी
- ऋण लेने वालों और उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि में अर्थिक विवरण
- ऋणी के परिप्रेक्ष्य में संबंध में एमआईएस प्रणाली स्थापित करना
- संभावित कमजोरियों की पहचान के लिए पूर्व–चेतावनी प्रणाली विकसित करना।
- ऋण की अदायगी से पूर्व संपत्ति, मूल्य आदि की जांच
- यथार्थपरक ऋण पुनर्अदायगी नीति तैयार करना, और लक्ष्य निर्धारित करना

2. आधुनिक स्वीकृति–पश्चात रणनीतियों के कारक और उनके प्रमुख गुण

- ऋण लेने वालों के साथ नियंत्रित और प्रभावी अदायगी पश्चात संपर्क
- संदिग्ध बाकीदारों पर समय से कार्रवाई करना।
- मांग पत्र और नोटिस समय पर जारी करना
- फसल या नकदी आने के समय ऋणिकों से मुलाकात करना
- ग्राहकों की उचित ऋण रेटिंग
- परिसीमन अवधियों के विस्तार, ऋण पावती, आंशिक पुनर्भुगतान, दस्तावेजों के नवीनीकरण का कार्य समुचित रूप से और समय पर करना
- प्राकृतिक आपदा होने पर ऋण का समयानुसार पुनर्भुगतान, दस्तावेजों के नवीनीकरण का कार्य समुचित रूप से और समय पर करना।
- गारंटीदाताओं पर जोर डालना
- संभावित लाभप्रद क्षेत्रों का पुनर्वसन
- ऋण का प्रभावी और सक्षम पर्यवेक्षण
- ऋण का पुनर्अदायगी आवश्यक रूप से व्यापार का आय क्षमता में से होनी चाहिए
- ऋणियों का ऐच्छिक, गैर–ऐच्छिक, सशंकित, नियमित श्रेणिकरण और प्रत्येक विशिष्ट श्रेणी के लिए पहचान पत्र जारी करना

3. आधुनिक एकीकृत पुनर्अदायगी रणनीतियां

- पुनर्भुगतान नीति वातावरण में उपयुक्त परिवर्तन
- वसूली संचालन में अधिक सक्रियता
- समुचित एमआईएस प्रणाली
- ऋणों के दुरुपयोग, दुर्प्रयोग और कम उपभोग के मुद्दों से निपटना
- वसूली इकाइयों की आंतरिक नियंत्रण प्रणाली को मजबूत बनाना
- संपत्तियों का उचित अनुरक्षण
- इरादतन बाकीदारों के साथ सौहार्दपूर्ण चर्चा
- समयानुसार सुधार के उपाय करना
- वसूली कार्यों को सक्षमता से करने के लिए बैंककर्मियों को प्रेरित करना
- विशेष वसूली एककों का गठन और निगरानी
- ऋण राशि का न्यायालय से बाहर समझौता और वसूली प्रस्तावों पर छूट देना
- निरोधक उपायों का प्रयोग
- गांवों में समय–समय पर वसूली शिविर लगाना
- ऋणियों को लंबित भुगतानों के बारे में नियमित रूप से नोटिस भेजना
- बाकीदारों का ध्यान आकर्षित करने के लिए सूचना पट्ट पर उनकी सूची लगाना (जैसा पिछले वर्ष पाकिस्तान में किया गया)
- वसूली नेटवर्क में सरकारी एजेंसियों की सीधी भागीदारी, जैसे राजस्व अधिकारी, तहसीलदार, संयुक्त वसूली दल
- ग्राम स्तर पर या माइक्रो स्तर पर विशेष वसूली एकक गठित करना
- वसूली प्रणाली पर समयबद्ध कार्ययोजनाओं के कार्यान्वयन की निगरानी
- ऋणों को आंशिक रूप से माफ करना
- ऋण वसूली पंचाटों में जाना

- वैधानिक प्रक्रिया द्वारा वसूली
- समानांतर गारंटीदाता या उसके विकल्प का इस्तेमाल
- ऋण को विपणन और प्रसंस्करण समितियों से जोड़ना
- ऋणियों द्वारा नियमित रखे जाने वाले बचत खातों की व्यवस्था और शुरूआत
- सक्षम ऋण प्रदान करने और वसूली की प्रक्रियाओं के सामाजिक–आर्थिक प्रभाव अच्छे होंगे यदि बैंकिंग संस्थानों द्वारा यह सभी रणनीतियां भली प्रकार अपनाई जाती हैं।

4. कोष संकरण पुनर्चक्रीकरण की रणनीतियां

कोष संकरण पुनर्चक्रीकरण रणनीतियों में आधुनिक स्वीकृति पूर्व, आधुनिक स्वीकृति–पश्चात् और आधुनिक एकीकृत वसूली रणनीतियों के मुख्य गुण शामिल हैं। इन रणनीतियों के समुचित मिश्रण से उपयुक्त परिणाम मिलेंगे, जो एआरडीबी को शत प्रतिशत वसूली अभियान के बाद अपने कोष को वितरित करने में मदद देगा और ऋणियों का सामाजिक–आर्थिक उन्नयन भी होगा, आने वाले वर्षों में यह दीर्घावधि कृषि ऋण की प्रगति और विकास को निर्धारित करेगा।

5. आधुनिक रणनीतियों का ऋणियों की सामाजिक–आर्थिक प्रगति और दीर्घावधि विकास पर प्रभाव

एआरडीबी द्वारा वसूली के बेहतर तरीके अपनाने से ऋणियों की सामाजिक–आर्थिक बेहतरी को पूरी तरह प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार, ऋणी समुदाय उच्चतर सामाजिक मूल्य, सामाजिक स्तर, बेहतर आत्मविश्वास, व्यक्तिगत निष्ठा और पहचान के विकास, स्थानीय एवं राष्ट्रीय अधिकारिता की प्राप्ति, आत्मविश्वास में वृद्धि जैसे लाभ भी पाएगा। सहकारी बैंक की नेतृत्व पद्धति बेहतर वसूली प्रक्रियाओं के चलते अधिक मान्यता प्राप्त करेगी। आगे चलकर, यह लोकतांत्रिक मूल्यों में वृद्धि, राजनीतिक तटस्थता लाने और सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में सामाजिक भागीदारी को बढ़ाने में सहायक होगा, यूं भी, जागरूक सहकारी सदस्य किसी संगठन के लिए लाभदायक ही होते हैं।

आर्थिक उदारीकरण और वैश्विकरण के दौर में सक्षम और प्रभावी सहकारी बैंकिंग प्रणालियों की आवश्यकता

सहकारी बैंकिंग व्यवस्था के समक्ष प्रमुख समस्याओं को सूचीबद्ध कर देने के बाद इस प्रणाली को नई आर्थिक व्यवस्था (खुले बाजार की आर्थिक प्रणाली) और वैश्विकरण का मुकाबला करने के लिए अधिक सक्षम और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है, लेखक यहां "सहकारी बैंकिंग के कायापलट और सहकारी बैंकिंग कार्यों के वैश्विकरण" की वकालत अत्यंत प्रभावी और सक्षम तरीके से कर रहे हैं। सहकारी बैंकिंग प्रणाली के प्रकाशमान भविष्य को निम्नलिखित के जरिए प्राप्त किया जा सकता है :

- सहकारी बैंकिंग प्रणाली का आत्मनिर्भरता की दिशा में विकास और परिवर्तन
- सहकारी बैंकिंग नेतृत्व को बढ़ावा देना और उसका विकास
- संपूर्ण सहकारी बैंकिंग संगठनों में प्रबंधन में व्यावसायिकता और प्रशासन में सक्षमता लाना अनिवार्य बनाया जाना चाहिए
- संगठन के ढांचे और उसकी कार्यशैली में उपयुक्त बदलाव लाना और लाभप्रद सांगठनिक ढांचे तैयार करना अति आवश्यक है।
- प्रभावी और शिक्षण व प्रशिक्षण प्रणाली
- सदस्यों की अधिकतर आर्थिक भागीदारी
- सहकारी व्यापारिक मामलों में महिलाओं और ऊर्जावान शिक्षित युवकों की भागीदारी मे वृद्धि
- प्रतिबंधात्मक प्रावधानों की समाप्ति
- निर्वहन खेती से अधिशेष खेती में बदलाव और कृति का वाणिज्यिकरण
- एलपीजी के समन्वय में सहकारी ऋण प्रणाली को दुरुस्त करना
- स्व–सहायता समूहों को सहकारी बैंकिंग प्रणाली से जोड़ना
- सहकारी बैंकिंग परिसंघों को दुरुस्त व मजबूत बनाना
- कमजोर सहकारी बैंकिंग संगठनों को पुनर्जीवित या समाप्त करना
- जहां कहीं संभव हो, सहकारी बैंकिंग प्रणाली अपने कार्य बाहरी एजेंसियों से करवा सकती हैं
- सहकारी बैंकों का सावधिक मूल्यांकन और लेखा परीक्षण
- सहकारी बैंकिंग प्रणाली में जवाबदेही और पारदर्शिता लाना
- बकाया राशि की वसूली और गैर–निष्पादनकारी संपत्तियों के प्रदर्शन को सुधारने के लिए सहकारी बैंकों को अधिकार संपन्न बनाया जाए
- आधुनिकीकरण/उन्नयन कार्यक्रमों के जरिए सहकारी बैंकिंग प्रणाली का कंप्यूटरीकरण और मशीनीकरण
- बेहतर बैंकिंग विपणन रणनीतियों और उपभोक्ता संबंध प्रबंधन (सीआरएम) को अपनाना
- सहकारी बैंकिंग प्रणाली को स्वतंत्र रूप से काम करने दिया जाए
- निर्वाचित बोर्ड का सम्मान हो और उसके फैसले मान्य हों
- आरसीएस की अत्यधिक शक्तियों को कम किया जाए
- गैर–जरूरी सरकारी नियंत्रणों और नियमों को हटाकर इसे अधिक प्रतियोगी बनाया जाए
- सहकारी बैंकिंग प्रणाली को लेखा परीक्षक चुनने तथा जवाबदेही और उत्तरदायित्व की छूट मिले
- ढांचागत सुविधाओं का सुधार
- बैंकिंग कार्यों और सौदों का विविधीकरण
- उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार
- वेतन वद्धि को सीधे तौर पर वाणिज्यिक बिक्री, उत्पादकता और लाभप्रदता से जोड़ दिया जाए।
- वे सक्षम और प्रभावी उद्यमिता दक्षता और ज्ञान को अपना सकते हैं।
- सहकारी बैंकिंग संस्थानों को व्यापारिक कार्यों और सौदों की नवीनतम एवं आधुनिकतम पद्धतियों को अपनाने का तरीका सीखना होगा
- सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के लिए प्रतियोगी पैनापन सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक उदारीकरण और वैश्विकरण के दौर में सहकारी बैंकिंग को अफसरशाही से मुक्त करना अति आवश्यक है। ❑

अनुवाद : नीति

भारत में सहकारी विपणन वर्तमान स्थिति, सीमाएं और सुधार के उपाय

डा. एल.पी.सिंह

पिछले चार दशकों में जो प्रगति हुई है उससे देश में सहकारी विपणन ढांचे का अच्छा विस्तार हुआ है। इस ढांचे के विभिन्न स्तरों पर अनेक बड़ी तादाद में सहकारी विपणन संस्थाएं कार्य कर रही हैं। सबसे निचले स्तर पर प्राथमिक विपणन समितियां हैं। ये समितियां उत्पादक सदस्यों से सीधे संबंधित हैं और उनकी ओर से कृषि उत्पादों की बिक्री करती हैं। पिछले 40 वर्षों में इन समितियों की संख्या में जबरदस्त वृद्धि हुई है।

अति प्राचीन काल से ही भारत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित रही है। पिछले पांच दशकों में विकास की दिशा में जो प्रयास हुए हैं उनसे निःसंदेह हमारा औद्योगिक आधार सुदृढ़ हुआ है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाए गए व्यावहारिक कदमों से आज हम दुनिया के सबसे तेजी से औद्योगिकृत हो रहे राष्ट्रों की श्रेणी में गिने जाने लगे हैं। फिर भी आज भी कृषि हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार बनी हुई है। कृषि और इससे जुड़ी गतिविधियां सकल घरेलू उत्पाद में सबसे बड़ा योगदान करने वाली गतिविधियां हैं। इनका योगदान लगभग 27 प्रतिशत तक होता है। कृषि कुल श्रमशक्ति में से करीब 65 प्रतिशत को रोजगार उपलब्ध कराती है। देश की कुल निर्यात आय में कृषि उत्पादों का हिस्सा काफी बड़ा यानी 23 प्रतिशत का है। कई उद्योग कच्चे माल और बाजार के लिए अब भी कृषि क्षेत्र पर निर्भर हैं। मुद्रास्फीति को काबू करने, कृषि मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने और रोजगार के अतिरिक्त अवसर जुटाने के लिए भी कृषि का विकास बहुत जरूरी है। इसलिए हमारे देश में आर्थिक विकास की रफ्तार तेज करने के लिए कृषि को उत्प्रेरक की भूमिका निभानी है।

आर्थिक विकास के कठिन कार्य में कृषि अपनी भूमिका का निर्वाह सही तरीके से कर सके इसके लिए कृषि उत्पादन बढ़ाना होगा। किसानों को कृषि पदार्थों का उत्पादन बढ़ाकर विपणन योग्य अतिरिक्त उत्पादन करना होगा। बाद में इसी को अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में लगाया जा सकता है। आज यह बात व्यापक रूप से मानी जाने लगी है कि वांछितस्तर पर विपणन योग्य अतिरिक्त पदार्थ उपलब्ध कराना (उत्पादन बढ़ाना) न केवल उत्पादन पर निर्भर है, बल्कि यह कुशल वितरण प्रणाली पर भी निर्भर है। अगर किसानों को वाजिब दामों पर अपने उत्पाद बेचने के लिए आसानी से कोई बाजार या मंडी नहीं मिलेगी उनके पास कृषि को लाभप्रद व्यवसाय या मंडी नहीं मिलेगी तो उनके पास कृषि को लाभप्रद व्यवसाय मानने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं रह जाएगा। इसलिए मूलतः कृषि विपणन की कुशल प्रणाली पर भी निर्भर है। "कुशल और विश्वसनीय विपणन प्रणाली स्वतः ही कृषि उत्पादन बढ़ा सकती है, जबकि इसकी कमी से उत्पादन कार्यक्रमों, प्रशासनिक प्रयासों और निवेश की मात्रा कम, सीमित और संकुचित हो सकती है, चाहे इस तरह के कितने ही कार्यक्रम क्यों न चलाए जाएं।"

लेकिन हमारे देश की जैसी कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था के आत्म–निर्भर विकास के लिए कृषि विपणन की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद समूची प्रणाली और तौर–तरीकों में कई कमियां रही हैं। और अब भी हैं। असल में कृषि विपणन का शायद ही कोई ऐसा चरण होगा जिसमें कोई न कोई गड़बड़ी न हो। "एक औसत भारतीय किसान, जो अपनी टुकड़ों में बटी थोड़ी सी जमीन पर खेती करता है, अपने उत्पादों के विपणन की दृष्टि से फायदे की स्थिति में नहीं रहता। परिवहन की अपर्याप्त सुविधाओं के कारण वह बड़े सीमित क्षेत्र में अपने उत्पाद बेच पाता है। इसके अलावा उसके पास बेचने को जो कुछ होता है वह मात्रा में बहुत कम और श्रेणीकरण रहित होता है इसलिए वह गुणवत्ता में एक समान नहीं होता। उसके पास कोई जमापूंजी तो होती नहीं, इसलिए फसल कटाई के बाद आम तौर पर उसे अपनी उपज तुरंत बेचनी पड़ती है। उसके बहुत–से पड़ोसियों की भी यही स्थिति होती है इसलिए गांव के व्यापारी चाहे अकेले में या सामूहिक रूप से किसानों को उनकी उपज के लिए कम दाम ही देता है।" श्रेणीकरण सुविधा न होने, मानक भार व माप के अभाव तथा मात्रा, लागत, मूल्य, उपभोक्ता–पसंद, क्रय शक्ति या संबंधित उत्पादों की अपूर्ति में परिवर्तन जैसे कारणों की श्रृंखला के परिणामस्वरूप इन सब में समन्वय के बारे में वाणिज्यिक दृष्टिकोण न होने से उत्पादकों और विक्रेताओं को वाजिब दाम नहीं मिल पाते।

हमारे देश में आर्थिक नियोजक इन समस्याओं के प्रति जागरूक हैं, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही यह बात महसूस की जाती रही है, और यह सही भी है, कि अगर स्थिति में बदलाव के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए जाते तो करोड़ों लोगों की स्थिति में कोई

कारगर बदलाव नहीं लाया जा सकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आजादी के तुरंत बाद कृषि विपणन की वर्तमान प्रणाली को चुस्त–दुरस्त बनाने के लिए कई कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। कृषि विपणन की बहुःआयामी समस्या से निपटने के लिए अनेक संस्थाएं गठित की गई और पहले से कार्य कर रही संस्थाओं को प्रेरित किया गया। सहकारी विपणन प्रणाली ऐसी ही एक संस्था है जिसका विकास कृषि उत्पादों की सीधी–फरोख्त के लिए किया गया है और इसे राज्य के स्वामित्व वाले/राज्य द्वारा प्रायोजित विपणन एजेंसियों में ऊंचा दर्जा हासिल है। पिछले पांच दशकों में सरकार द्वारा किए गए समन्वित प्रयासों से आज हमारे देश में बड़ा ही विविधतापूर्ण सहकारी विपणन ढांचा उपलब्ध है।

वर्तमान स्थिति

विविधतापूर्ण ढांचा

पिछले चार दशकों में जो प्रगति हुई है उससे देश में सहकारी विपणन ढांचे का अच्छा विस्तार हुआ है। इस ढांचे के विभिन्न स्तरों पर अनेक बड़ी तादाद में सहकारी विपणन संस्थाएं कार्य कर रही हैं। सबसे निचले स्तर पर प्राथमिक विपणन समितियां हैं। ये समितियां उत्पादक सदस्यों से सीधे संबंधित हैं और उनकी ओर से कृषि उत्पादों की बिक्री करती हैं। पिछले 40 वर्षों में इन समितियों की संख्या में जबरदस्त वृद्धि हुई है। 1960–61 में देश में प्राथमिक विपणन समितियों की संख्या मात्र 3,130 थी। 30 जून 2000 को इनकी संख्या 6,506 हो गई। देश में काम कर रही कुल प्राथमिक विपणन समितियों में से 3,216 बहु–उद्देशीय समितियां हैं जबकि बाकी विशेष कृषि उत्पादों से संबंधित हैं।

केंद्रीय या जिला विपणन समितियां देश में सहकारी विपणन ढांचे की मध्यम स्तर की संस्थाएं हैं। इस तरह की समितियां देश के कुछ ही राज्यों में है जिनके नाम इस प्रकार हैं : आंध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर और कर्नाटक।

राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन परिसंघ (नेफेड) का सहकारी विपणन ढांचे में सर्वोच्च स्थान है। देश में सहकारी विपणन संगठनों की शीर्ष संस्था के नाते नेफेड का प्रयास है कि इस क्षेत्र में कार्य कर रही विभिन्न संस्थाओं के बीच उद्देश्यपूर्ण संपर्क और समन्वय स्थापित किया जाए।

संस्थागत ढांचा

यहां देश में सहकारी विपणन के चहुंमुखी विकास की योजना बनाने तथा उसे बढ़ावा देने के उद्देश्य से पिछले वर्षों में सुव्यवस्थित रूप से विकसित संस्थागत ढांचे विशेष रूप से उल्लेख करना उचित होगा।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) इन संस्थाओं में प्रथम और अग्रणी है। इसकी स्थापना संसद के विशेष अधिनियम के तहत 1963 में हुई थी।

अपने गठन के बाद से ही राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम सहकारी संस्थाओं के माध्यम से नारियल, सुपारी, अंडा व अंडे से बने उत्पादों, शहद, फलों व सब्जियों, दूध व दुग्ध उत्पाद जैसे कृषि पदार्थों के उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन, भंडारण और आयात–निर्यात आदि की योजना बनाने और उन्हें बढ़ावा देने के कार्यक्रमों में लगा है। हाल में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम ने अपनी गतिविधियों का विस्तार डेयरी, मछली उत्पादन और लघु वनोपज के क्षेत्र में सहकारिता के विस्तार में किया है। असल में इसका उद्देश्य समाज के दुर्बल वर्गों को लाभ पहुंचाना है। मार्च 2002 तक राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम 3,458 करोड़ रुपए की कुल वित्तीय सहायता उपलब्ध करा चुका था। सहकारी विपणन, भंडारण, प्रसंस्करण आदि के विकास के लिए राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख वित्तपोषण और संवर्धनात्मक संगठन होने के कारण निगम ने इन गतिविधियों के लिए बड़े पैमाने पर सहायता देना जारी रखा है। असल में निगम तमाम विपणन गतिविधियों के लिए सहकारी विपणन समितियों को लगभग हर तरह की सहायता उपलब्ध करा रहा है। इनमें किसानों की उपज की सीधी बिक्री, कृषि और बागवानी उत्पादों का प्रसंस्करण, कृषि उत्पादों का श्रेणीकरण और मानकीकरण आदि शामिल हैं। राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम ने आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं जैसे अनाज, चीनी, खाद्य तेल, नियंत्रित मूल्य का कपड़ा, मिट्टी का तेल, नमक, कोयला आदि को ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा सहकारिताओं के माध्यम से वितरित करने में भी मदद दी है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, देश में सहकारी विपणन प्रणाली के तेजी से विकास में मदद के लिए कार्य कर रही दूसरी महत्वपूर्ण संस्था है– राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन परिसंघ लिमिटेड (नेफेड)। इसका गठन 2 अक्तूबर 1950 को हुआ था। नेफेड का मुख्यालय नई दिल्ली में है और यह चुनिंदा कृषि उत्पादों जैसे की खरीद, वितरण और आयात–निर्यात की गतिविधियों में संलग्न है। विपणन के क्षेत्र में सहकारी क्षेत्र की शीर्ष राष्ट्रीय संस्था के नाते नेफेड देश के भीतर तथा निर्यात बाजार में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

नेफेड राज्यों के बीच कृषि उत्पादों के व्यापार और निर्यात व्यापार को बढ़ावा देता है। यह प्याज, दलहन, मिर्च, अदरख, लहसुन और इलायची जैसी वस्तुओं का कई देशों को निर्यात करता है। दलहनों, एच.पी.एस.मूंगफली, प्याज और आलू का निर्यात नेफेड के माध्यम से ही किया जाता है। यह आवश्यक वस्तुओं के पर्याप्त उत्पादन वाले स्थानों से किल्लत वाले स्थानों को इन चीजों की आवाजाही का काम भी करता है और उपभोक्ताओं को इन चीजों की आपूर्ति सुनिश्चित करने में मदद करता है। नेफेड दलहनों और तिलहनों की मूल्य समर्थन गतिविधियों के संचालन के लिए केंद्रीय नोडल एजेंसी है। यह किन्नू/माल्टा, प्याज, आलू, अंगूर, कालीमिर्च और लाल मिर्च जैसे बागवानी उत्पादों के विपणन में भी बाजार हस्तक्षेप करता है। 2000–01 में नेफेड का कारोबार करीब 767 करोड़ रुपए का था 2001 कुल मिलाकर नेफेड ने प्याज और आलू के प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों में बाजार हस्तक्षेप के माध्यम से बाजार मूल्यों के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सहकारी विपणन के क्षेत्र में एक अन्य संस्था जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (ट्राइफेड) है। इसका गठन भारत सरकार ने जनजातीय क्षेत्रों में कृषि उत्पादों के विपणन की समस्या की ओर विशेष रूप से ध्यान देने के लिए किया है।

इन तीन संस्थाओं के अलावा सहकारी क्षेत्र में कुछ और संगठन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहकारी विपणन को बढ़ावा देने के कार्य में लगे हैं। इसी संदर्भ में राष्ट्रीय सहकारी तम्बाकू उत्पादक परिसंघ लिमिटेड, राष्ट्रीय

उपभोक्ता सहकारी परिसंघ, भारतीय कृषक उर्वरक सहकारिता (इफ्को), कृषक भारती कोआपरेटिव (कृभको) का विशेष रूप से उल्लेख आवश्यक है।

सहकारी विपणन संस्थाओं की सबसे महत्वपूर्ण सफलता शायद सहकारी विपणन ढांचे के विस्तार के क्षेत्र में देखी गई है। सहकारी विपणन ढांचे के नेटवर्क में अब 6,506 प्राथमिक विपणन समितियों हैं जिनमें से 3,216 सामान्य विपणन समितियां और बाकी यानी 3,290 विशिष्ट कृषि उत्पादों से संबंधित हैं। जिला स्तर पर 157 केंद्रीय विपणन समितियां हैं और देश की तमाम थोक मंडियां उनके दायरे में आती हैं। इनमें से 103 गन्ने की आपूर्ति, 3 कपास, 16 फल–सब्जियों, 3 तम्बाकू, एक–एक नारियल और सुपारी तथा 4 अन्य विशिष्ट वस्तुओं से संबंधित थीं। राज्य स्तर पर 29 सामान्य उद्देश्य के सहकारी विपणन परिसंघ और 16 विशिष्ट वस्तु विपणन परिसंघ थे। इसके अलावा अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि सहकारिता विपणन परिसंघ भी कार्य कर रहा था। इसके अलावा 8 राज्य स्तरीय व्यापार सहकारिता विकास निगम/परिसंघ, एक सुपारी सहकारी विपणन परिसंघ और एक राष्ट्रीय स्तर का तम्बाकू सहकारी विपणन परिसंघ भी है।

सहकारिताओं के माध्यम से कृषि उत्पादों के विपणन में शानदार प्रगति हुई है। उदाहरण के लिए सहकारी विपणन समितियों ने 1960–61 के दौरान जहां 161 करोड़ रुपए मूल्य के कृषि उत्पादों का विपणन किया था वहीं 1980–81 में यह बढ़कर 1,950 करोड़ रुपए और 2000–01 में 11,363.03 करोड़ रुपए हो गया। पंजाब, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, केरल, राजस्थान और तमिलनाडु ने सहकारिताओं द्वारा विपणन किए गए कृषि उत्पादों के कुल मूल्य में से 91 प्रतिशत मूल्य की वस्तुओं का विपणन किया। कुल बिक्री में से 75 प्रतिशत पैसा जिन वस्तुओं को बेचने से प्राप्त हुआ उनमें अनाज, चीनी और कपास शामिल हैं। सहकारी समितियों द्वारा खरीदी–बेची गई अन्य वस्तुओं में तिलहन, फल–सब्जियां, पटसन और बागानी फसलें शामिल हैं। सहकारिताएं कपास और पटसन निगमों के लिए इन वस्तुओं की खरीद में भी शामिल है।

बीते वर्षों में विपणन सहकारिताओं के व्यापार की मात्रा में शानदार वृद्धि के साथ–साथ उनके कार्यक्षेत्र में भी आकर्षक विविधता आयी है। सीधी खरीद, कमीशन एजेंसी, जमानत देने जैसे परंपरागत कार्यों को करने के साथ–साथ विपणन सहकारिताएं आज कई ऐसे कार्य भी कर रही हैं जो अब तक उनके द्वारा इतने बड़े पैमाने पर कभी नहीं किए गए हैं। उदाहरण के लिए सहकारिताओं ने उर्वरक तथा अन्य कृषि निवेशों जैसे उन्नतशील बीज, कृषि उपकरण और कीटनाशकों के वितरण में जबरदस्त प्रगति की है। 1999–2000 सहकारिताओं द्वारा वितरित उर्वरकों की कुल मात्रा 57.16 लाख टन थी जो देश में बेचे गए उर्वरकों की कुल मात्रा का करीब 31 प्रतिशत है। उर्वरक उत्पादन के क्षेत्र में सहकारी उपक्रमों ने अच्छा काम किया है। सहकारी क्षेत्र की दो महत्वपूर्ण उर्वरक उत्पादन इकाइयों ने 2000–01 में 28.79 लाख टन उर्वरकों का उत्पादन किया जो देश में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों के कुल उत्पादन का करीब 19 प्रतिशत तथा फास्फेटयुक्त उर्वरकों के उत्पादन का 33 प्रतिशत है।

सहकारी डेयरी

भारत की डेयरी सहकारिताओं की सफलता की कहानी की आज दुनिया भर में सराहना होती है। डेयरी सहकारिताओं ने देश में केवल सहकारी क्षेत्र की विकास दर बढ़ाने में अपना योगदान किया है, बल्कि समूची ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की है। इन क्षेत्रों को भारतीय सहकारिता आंदोलन के स्वर्णिम क्षेत्र कहा जाता है।

दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए सहकारी डेयरियों के माध्यम से चलाया गया आपरेशन फ्लड अभियान आजादी के बाद भारत में सबसे सफल कार्यक्रम माना जाता है। इसकी अनोखी बात यह है कि यह विस्तार और अवधि की दृष्टि से यह सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम है। इसके अंतर्गत ग्रामीण भारत के करीब एक करोड़ दुग्ध उत्पादक परिवार शामिल हैं। 1 जुलाई 1970 को प्रारंभ यह आंदोलन अब भी चल रहा है।

31 मार्च 1996 को देश के 23 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के 267 जिलों के 170 दुग्ध उत्पादक क्षेत्रों में 72,500 ग्राम दुग्ध उत्पादक सहकारिताएं गठित की जा चुकी थीं।

भारत में 1969–70 से 1969–97 के बीच दूध का उत्पादन 8 प्रतिशत वार्षिक की औसत दर से बढ़ा है। इस अवधि में यह तीन गुना बढ़कर 6.86 करोड़ मीट्रिक टन हो गया है। दूध की प्रति व्यक्ति दैनिक उपलब्धता 107 ग्राम से बढ़कर 200 ग्राम हो गई है। 1995 में अमरिका दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादन था जहां 7.2 करोड़ मीट्रिक टन दुग्ध उत्पादक होता था। ऑपरेशन फ्लड की बदौलत 1999 में भारत में दूध का कुल वार्षिक उत्पादन 7.4 करोड़ मीट्रिक टन हो गया है और इस तरह दुनिया के पहले नंबर के दुग्ध उत्पादक देश का सेहरा भारत के सिर बंध गया है।

प्रमुख बाधाएं

लेकिन विपणन सहकारिताओं की इस सफलता का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि उनके सामने कोई बाधाएं नहीं आयीं। असल में सहकारी विपणन संस्था के रास्ते में कुछ बाधाएं तो इतनी जबरदस्त थीं कि कभी–कभी ऐसा लगता था मानों सहकारिताओं के गठन का उद्देश्य ही विफल हो गया है। आज भी ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो मानते हैं कि "संख्या और मंडियों तथा गांवों को अपने दायरे में शामिल करने की दृष्टि से सहकारी विपणन संस्थाओं की तादाद भले ही शानदार रही हो लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर विपणन समितियों ने कृषि जिंसों के व्यापार पर कोई खास असर नहीं डाला है।" इस तरह का दृष्टिकोण मूलतः बाजार सहकारिताओं की भारी विफलता के कारण उत्पन्न हुआ है।

कई सहकारी समितियां कुप्रबंधन के चलते कमजोर, अक्षम और आर्थिक दृष्टि से अलाभप्रद हो गई हैं जिस कारण वे विपणन संबंधी समस्त गतिविधियां नहीं कर पाती हैं। अधिकतर विपणन सहकरिताएं केवल रासायनिक उर्वरकों और कृषि में काम आने वाले पदार्थों की खरीद–फरोख्त में लगी हैं। इसके अलावा सभी राज्यों और सभी कृषि पदार्थों की सहकारिताओं ने विपणन के क्षेत्र में एकसमान प्रगति नहीं की है। अगर हम गन्ने और कपास के विपणन को दर किनार कर दें तो सहकारिताओं के माध्यम से जो चीजें बेची जाती हैं उनकी मात्रा और लगभग इतनी नहीं है कि पीठ थपथपायी जा सके। आज भी सहकारी समितियों को राजनीति का मोहरा

बनाया जाता है और राजनीतिक व्यावहारिकता के आगे आर्थिक हितों तथा व्यापारिक आवश्यकताओं को कुर्बान कर दिया जाता है। विपणन सहकारिताओं के प्रबंधन और काम–काज में निहित स्वार्थों का प्रभुत्व उनके मुक्त और सुचारू रूप से काम करने के रास्ते में आड़े आता है और वे सदस्यों के हित में कार्य नहीं कर पातीं। बहुत बड़ी संस्था में सहकारी समितियां ऋण देने में भाई–भतीजावाद और धन के दुरुपयोग जैसी अनियमितताओं में लिप्त रहती हैं। ये समितियां लगातार सरकारी अधिकारियों/कर्मचारियों पर निर्भर रहती हैं जिनमें से अधिकतर को सहकारी उपक्रमों या किसी व्यावसायिक संगठन की जानकारी तथा उनके कार्य का अनुभव नहीं होता। नतीजा यह होता है कि एक ओर तो सहकारी समितियों की पहल बेकार चली जाती है और दूसरी ओर उनकी अंतर्निहित प्रबंधकीय क्षमता बाधित होती है। असल में इतने वर्षों से हम उपयोग करने वालों द्वारा समर्थित, उनके द्वारा नियंत्रित और उनके प्रति संवेदनशील सहकारिताओं को विकास नहीं कर पाए हैं, बल्कि हमने राज्यों द्वारा समर्थित, उनके द्वारा नियंत्रित तथा सत्तारूढ़ दल के प्रति संवेदनशील संस्थाएं ही विकसित की हैं।

भारतीय सहकारिता आंदोलन में अपनी प्रेरणा से कार्य करने की कमी है और सदस्यों में अपने तात्कालिक हितों से ऊपर उठकर काम करने की भावना का अभाव है। आज हमारा समूचा सहकारिता आंदोलन जिन अनेक कमजोरियों का सामना कर रहा है उनमें से ये दो प्रमुख हैं। सहकारिता एक तरह का संबंध है जो बाहर से थोपा नहीं जा सकता और अगर थोप भी दिया गया तो उसे लंबे समय तक कायम नहीं रखा जा सकता। यह सही है कि हमारी अधिकतर गतिविधियों में स्वार्थ सबसे प्रमुख प्रेरक शक्ति का काम करता है। हालांकि सहकारी उपक्रम कोई धर्मादा संस्था नहीं है लेकिन सदस्यों के अधिकतम कल्याण के लिए व्यक्तिगत हितों को सबके साझा हितों के अधीन करना आवश्यक है। तमाम अनुकूल परिस्थितियों और सुव्यवस्थित ढांचे के बावजूद देश के कई भागों में सहकारिता आंदोलन और सहकारी विपणन प्रणाली खास प्रगति नहीं कर पायी है। (इस तरह के इलाकों को आम तौर पर सहकारिता की दृष्टि से पिछड़े हुए राज्य/क्षेत्र कहा जाता है।) इसका कारण यह है कि सदस्य सहकारिता के बारे में बहुत कम सोचते या कार्य करते हैं। सहकारिता की विचारधारा पर सच्ची रुचि और आस्था न होना भी विपणन कई सहकारिताओं के संतोषजनक विकास और सुचारू कार्य संचालन का एक अन्य कारण है।

एक अन्य कमजोरी सहकारी विपणन ढांचे के तीनों स्तरों के बीच समन्वय न होना तथा ऋण सहकारिताओं के साथ तालमेल न होना है जिस कारण काम की दोहरावट होती है और सहकारी ढांचे के विभिन्न स्तर की संस्थाओं के बीच अनुचित प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हो जाती है।

सुधार के उपाय

समस्याओं की जटिलता की वजह से उनके समाधान का कोई बना–बनाया फार्मूला अपनाया नहीं जा सकता। लेकिन इसके लिए जो कार्यक्रम बनाया जाता है उसमें निम्नलिखित उपायों को शामिल किया जा सकता है।

- **आर्थिक दृष्टि से कमजोर समितियों में नई जान फूंकना** : आर्थिक दृष्टि से अव्यावहारिक और नाकारा समितियों का विशाल नेटवर्क कायम करने की बजाए बेहतर यही होगा कि सीमित संख्या में सक्षम और सुदृढ समितियां हों। गलत स्थिति, अपर्याप्त सदस्यता, संसाधन जुटाने में समितियों की अक्षमता और इनकी वजह से कारोबार तथा राजस्व प्राप्तियां पर्याप्त न होने से जैसे विभिन्न कारणों से समितियां आर्थिक दृष्टि से अक्षम होती जा रही है। अब वक्त आ गया है कि प्राथमिक सेवा समितियों में नई जान फूंकने के लिए जैसा कार्यक्रम प्रारंभ किया गया था वैसा ही प्राथमिक विपणन समितियों के लिए भी तैयार कर शीघ्रता और प्रभावशाली तरीके से लागू किया जाए। उदाहरण के लिए कई समितियां मुख्य विपणन केंद्रों से बाहर स्थित हैं। जिसका प्रभाव समिति के उत्पादक सदस्यों को कुशल विपणन सहायता उपलब्ध कराने की उनकी क्षमता पर पड़ा है। ऐसे में यह बिलकुल स्वाभाविक है कि योजना कार्यक्रमों के अंतर्गत जो गोदाम बनाए गए हैं वे आम तौर पर या तो बिना इस्तेमाल हुए पड़े हैं या फिर उनकी क्षमता का पूरा–पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है। इस स्थिति में तत्काल बदलाव की आवश्यकता है। जहां तक इनके दायरे का सवाल है, बेहतर यही होगा कि विपणन समिति के अंतर्गत बड़ी संख्या में प्राथमिक सेवा समितियां हों। हालांकि पर्याप्त वित्तीय संसाधन जुटाने के लिए व्यक्तिगत उत्पादकों को विपणन समितियों के सदस्यों के तौर पर पंजीकृत कराया जाना चाहिए। सबसे अच्छा तो यह होगा कि प्राथमिक सेवा समितियों के साथ व्यापारिक संबंध कायम किए जाएं। सहकारी विपणन के बारे में दांतेवाला कमेटी ने भी प्राथमिक सेवा समितियों के लिए प्राथमिकता के आधार पर सदस्यता का समर्थन किया था। इससे न केवल विपणन समितियां सुदृढ़ होंगी, बल्कि प्राथमिक सेवा समितियां भी इससे मजबूत होंगी। संयोजन, समन्वय और संपर्क जैसी गतिविधियों से ऋणों को विपणन, निवेश की जाने वाली वस्तुओं की आपूर्ति और उपभोक्ता वस्तुओं के विपणन आदि से जोड़ने से बेहतर तालमेल कायम कर लिया जाता है और इसके परिणामस्वरूप उनका पैमाना बढ़ा लिया जाता है। इतना ही नहीं, इससे प्राथमिक विपणन समितियों में निहित स्वार्थों के प्रवेश को भी रोका जा सकता है।
- **सहकारिता कानून में उदारता** : विपणन सहकारिताओं की कामकाजी कार्यकुशलता सहकारिताओं को संचालनात्मक स्वायतता प्रदान किए बिना नहीं बढ़ायी जा सकती। संचालनात्मक स्वायतता बढ़ाने के लिए सरकार के अनावश्यक नियंत्रण और विनियमन को हटाना जरूरी है। इसलिए अब वक्त आ गया है जब स्वेच्छा से योगदान, स्वायतता, उपयोग करने वालों के नियंत्रण और उपभोक्ताओं के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने के लिए कुछ उद्देश्यपूर्ण उपाय किए जाएं।
- **विभिन्न स्तरों के बीच कारगर समन्वय** : सहकारी विपणन ढांचे के विभिन्न स्तरों पर काम करने वाली संस्थाओं के बीच समन्वय के माध्यम से व्यावसायिक संबंध विकसित करना भी जरूरी है। विभिन्न स्तरों के बीच प्रभावी संपर्क स्थापित करने के लिए जहां कहीं संभव हो वहां खरीददारों के साथ दीर्घकालीन आधार पर अनुबंधात्मक व्यवस्था

अग्रिम रूप से कायम करना आवश्यक होगा। इस तरह के अनुबंध से खरीदी गई वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था संस्थागत सदस्यों के साथ (सदस्य समितियों से) निचले स्तर पर इसी आधार पर की जा सकती है। ये संबंध व्यक्तिगत सदस्य के स्तर तक बढ़ाए जा सकते हैं। विदेशों में विकसित सहकारी विपणन संघों में ऐसा आम तौर पर होता है। इस तरह के योजनाबद्ध तरीका अपनाने से न केवल उत्पादन में स्थिरता आएगी, बल्कि ठीक समय और उचित मात्रा में आपूर्ति का भी ध्यान रखा जा सकेगा। अंततः समन्वय के तमाम फायदे सहभागी उत्पादकों और संस्थाओं को मिलने लगेंगे। सहकारिता की दृष्टि से विकसित देशों में अनुबंध पर आधारित व्यवस्था बरकरार है। वर्तमान स्थितियों में इस तरह की व्यवस्था की संभावनाओं का पता लगाने की पहल नेफेड और राज्य विपणन परिसंघों की ओर से होनी चाहिए। इस समस्या के प्रति उनका दृष्टिकोण प्राथमिक विपणन समितियों के लिए मौजूदा व्यवसाय में भागीदारी की बाजाए सेवा की भावना से प्रेरित होना चाहिए।

- **विपणन सहकारिताओं का वित्तीय आधार सुदृढ़ करने की जरूरत** : विपणन सहकारिताओं को वित्तीय दृष्टि से सुदृढ़ करने के लिए जो बात सबसे पहले की जानी जरूरी है वह है उनका कोष का आधार मजबूत किया जाए। समिति में व्यापक वित्तीय हित जुड़ा होने से सदस्य उसके मामलों में गहरी दिलचस्पी लेने लगते हैं। इसके अलावा अपना कोष का आधार सुदृढ़ होने पर समिति सरकार से समतुल्य शेयर अंशदान प्राप्त कर सकती है और बैकों से लोन भी ले सकती है। ऐसा सदस्यों से अंशदान बढ़ाकर और उनसे अपना मुनाफा छोड़ने या मुनाफे का बड़ा भाग समिति की आरक्षित निधि में देने को कहकर किया जा सकता है। इसके बदले में उन्हें पांच साल बाद परिपक्व होने वाले जमा प्रमाणपत्र दिए जा सकते हैं। इसे एक लिवाल्विंग वित्तीय कार्यक्रम भी बनाया जा सकता है जिसमें सदस्य पहले प्रमाणपत्र के परिपक्व होने पर चाहें तो अपनी वार्षिक हिस्सा पूंजी वापस भी ले सकते हैं। व्यक्तिगत उत्पादकों को बड़ी संख्या में सदस्य बनाने के लिए भी अभियान चलाया जाना चाहिए और गांवों की प्रत्येक प्राथमिक समिति को विपणन संघ में शामिल किया जाना चाहिए। इसके बाद सदस्य उत्पादकों को विपणन समिति की हिस्सा पूंजी में उनकी चुकता पूंजी के एक निश्चित हिस्से के बराबर राशि का अंशदान करने को कहा जा सकता है। कुछ समय तक के लिए उनकी हिस्सा पूंजी को उनके द्वारा प्राप्त की गयी सेवाओं की लागत से जोड़ दिया जाना चाहिए। इसी तरह विपणन संघ में कृषक सदस्य की हिस्सा पूंजी इस तरह से होनी चाहिए जिससे इसका संबंध समिति से प्राप्त किए जाने वाले जमानती ऋण से हो। इसके अलावा शेयर पूंजी में सदस्यों का अनिवार्य अंशदान भी तय किया जाना चाहिए जो सदस्य के बिक्री कारोबार के एक निश्चित हिस्से के बराबर होना चाहिए। इस पर कुछ ब्याज दिया जा सकता है। अगर इन उपायों को सही तरह से लागू किया जा सके तो इससे प्राथमिक विपणन समितियों के अपने कोष की स्थिति सुदृढ़ होगी।

सहकारी विपणन समितियों के कामकाज में विविधता के परिणामस्वरूप स्थिर आस्तियों के अधिग्रहण और बड़ी मात्रा में कार्यशील पूंजी बनाए रखने के लिए अधिक धनराशि की आवश्यकता होगी। इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र के राष्ट्रीय ग्रामीण विकास बैंक नाबार्ड, सहकारी व गैर–सहकारी क्षेत्र की अन्य बैंकिंग संस्थाओं और राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम को और बड़ी भूमिका निभानी होगी। लेकिन इसके अलावा भी जिस बात की खास तौर पर आवश्यकता है, वह है राष्ट्रीयकृत और सहकारी बैंकों के बीच और अधिक तालमेल ताकि विपणन सहकारिताओं को सौंपी गई जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए पर्याप्त कार्यशील पूंजी उपलब्ध करायी जा सके। इस उद्देश्य से और सहकारी बैंकिंग की आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान देने के लिए अलग से राष्ट्रीय सहकारी बैंक बनाने का सुझाव दिया गया है। सहकारी वित्त एजेंसियों के शीर्ष संगठन के रूप में इस सुझाव पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। यह सही है कि अखिल भारतीय ऋण समीक्षा समिति इसके पक्ष में नहीं है और उसका तर्क है कि नये संगठन को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रिजर्व बैंक पर निर्भर रहना होगा। यह भी तर्क दिया जा रहा है कि रिजर्व बैंक देश का केंद्रीय बैंक होने के कारण सहकारी क्षेत्र सहित अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की ऋण की आपूर्ति का समन्वय और विनियमन करना रिजर्व बैंक की ही जिम्मेदारी रहेगा। लेकिन आने वाले समय में सहकारी क्षेत्र से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से अधिकाधिक महत्वपूर्ण भमिका निभाने की जो अपेक्षा की जा रही है, उसे देखते हुए सहकारी विपणन सहित सहकारी ऋण प्रदान करने के लिए अलग संस्था की मांग बिल्कुल जायज है। 21वीं शताब्दी में सहकारी विपणन संस्था को जो महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है उसे देखते हुए भी यह अधिक आवश्यक हो जाता है। जब औद्योगिक वित्त के लिए अलग शीर्ष संस्था भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना उचित है तो सहकारी वित्त के लिए भी अलग राष्ट्रीय संगठन बनाने खिलाफ कोई वाजिब तर्क नहीं दिया जा सकता है। इसलिए इस सुझाव पर अब उचित स्तर पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

- **विपणन के साथ ऋणों का समन्वय** : ऋण को विपणन से जोड़ना न केवल सहकारी विपणन या सहकारी ऋण संस्थाओं के संतोषजनक कामकाज के लिए आवश्यक है बल्कि समूचे सहकारिता आंदोलन के स्वस्थ विकास के लिए भी बहुत जरूरी है। सहकारी क्षेत्र के कामकाज की जांच के लिए जो भी समितियां और आयोग अब तक गठित किए गए हैं उनमें से अधिकांश ने सहकारी ऋण और सहकारी विपणन के बीच प्रभावी समन्वय सुनिश्चित करने की सिफारिश की है।
- **प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार** : विपणन सहकारिताएं अपनी प्रबंधन प्रणाली और तौर–तरीकों में गुणात्मक अंतर लाए बिना वांछित लक्ष्य पूरे नहीं कर पाएगी। इसलिए परिणाम–मूलक प्रबंधन समय की आवश्यकता है। विपणन सहकारिताओं को इस संबंध में बहुत कुछ करना है। उनका प्रबंधन नाममात्र का है और पुराने अनुभवों के आधार पर चलता है। अगर विपणन सहकारिताओं को जनता का विश्वास जीतना है और निजी तथा सार्वजनिक

उपक्रम के साथ प्रतिस्पर्धा में टिके रहना है जो उन्हें पेशेवर प्रबंधकों की एक नई पीढ़ी को काम पर रखना होगा ताकि उनके प्रबंधन को ठोस आधार मिले।

- **स्वतंत्र काडर का गठन :** समुचित वेतन, नौकरी की सुरक्षा, तरक्की के अवसर और प्रबंधन बोर्ड के निष्पक्षता आश्वासन वाला स्वतंत्र काडर गठित करने से प्रबंधन के पेशेवर लोगों को विपणन सहकारिताओं की ओर आकृष्ट करने में बड़ी मदद मिल सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि शीर्षस्थ पदों पर अंदर से ही सक्षम कर्मचारियों को लिया जाए। स्वतंत्र काडर के गठन के साथ कर्मचारियों के समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा अल्पावधि पुनश्चर्या का कार्यसाधन पाठ्यक्रमों से प्रबंधन को अफसरशाही से उत्तरोत्तर मुक्ति मिलेगी जिससे समितियों तथा सभी संबद्ध पक्षों को लाभ होगा।

यहां पर यह बताना प्रासंगिक होगा कि विपणन समितियों की सरकार से उधार लिए गए कर्मचारियों पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम ने शीर्ष समितियों में प्रबंधन कर्मियों का एक पूल तैयार करने की योजना तैयार की है। इन्हें संबद्ध को उपलब्ध कराया जाएगा। कुछ राज्यों में शीर्ष समितियों ने पहले ही इस तरह के पूल बना लिए हैं। यह एक स्वागत योग्य घटनाक्रम है और चरणबद्ध कार्यक्रम के तहत प्रबंधकीय पदों पर इसी योजना के तहत अधिकारियों की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए आगे कदम उठाए जाने चाहिए।

- **समूची विपणन गतिविधियों पर विचार :** यह बात बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण है कि केवल एक तिहाई विपणन समितियों ने ही अभी विशिष्ट विपणन गतिविधियां शुरू की हैं। बाकी समितियां सीधी खरीद या निवेश के वितरण में व्यस्त हैं। विपणन सहकारिताओं के लिए यह निश्चित रूप से उचित नहीं है। अपनी भूमिका के सही तरह से निर्वाह के लिए विपणन सहकारिताओं को तमाम विपणन गतिविधियों की ओर ध्यान देना होगा, जिनमें संयोजन, श्रेणीकरण, संकलन, भंडारण, परिवहन, बाजार की सूचना, प्रदर्शन और उत्पादों की नीलामी आदि शामिल हैं।
- **विनियमित बाजारों के साथ समन्वय :** विनियमित बाजार और विपणन सहकारिताएं मोटे तौर पर एक समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए परिकल्पित और विकसित की गई दो संस्थाएं हैं। ये लक्ष्य हैं : कृषि विपणन प्रणाली को चुस्त–दुरस्त करना और इसके माध्यम से किसी उत्पाद के उत्पादक विक्रेता के लिए लाभप्रद मूल्य सुनिश्चित करना। इस तरह से दो संस्थाएं काफी हद तक एक–दूसरे की पूरक और सहयोगी हैं। लेकिन व्यापक रूप में फैले एक भ्रम के कारण ये दोनों संस्थाएं एक–दूसरे की प्रतिस्पर्धी मानी जाती हैं। इस दुर्भाग्यपूर्ण दृष्टिकोण का बड़ा जबरदस्त प्रभाव दोनों संस्थाओं पर पड़ा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार ने हाल में कुछ उद्देश्यपूर्ण कदम उठाए हैं जिनका उद्देश्य उनके आंतरिक संबंधों की पारस्परिक निर्भरता को रेखांकित करना है। सहकारी विपणन संस्थाओं को कई राज्यों में विनियमित बाजारों की प्रबंधन समितियों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है। अब वक्त आ गया है कि सबसे निचले स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक दो संस्थाओं के कामकाज में प्रभावी समन्वय और तालमेल कायम किया जाए। यानी सबसे निचले स्तर पर बाजार समितियों से लेकर प्राथमिक विपणन समितियों तक राज्य स्तर पर राज्य विपणन परिसंघों और राज्य विपणन बोर्डों के स्तर पर तथा राष्ट्रीय स्तर पर नेफेड और हाल में गठित शीर्ष संस्था सीओएसएएमबी तक समन्वय और तालमेल बनाना जरूरी है।
- **डेयरी सहकारिताओं को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाना :** इसमें कोई संदेह नहीं कि डेयरी सहकारिताओं ने हमारे देश में शानदार सफलता प्राप्त की है। लेकिन अभी आराम से बैठने का वक्त नहीं आया है। खास तौर पर हमारी डेयरी सहकारिताओं को दूध के व्यापार में विश्व में अग्रणी बनकर सामने आने में मदद के लिए बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। यहां हमारे लिए संभावनाओं के द्वार पूरी तरह खुले हुए हैं। दुनिया के दूध बाजार में पिछले दो–एक वर्षों में भारी बदलाव आ गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि सब्सिडी खत्म करने से अब धीरे–धीरे पश्चिमी देश अपने आप को प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं पा रहे हैं। ऐसे में हम स्थिति का लाभ उठा सकते हैं। अगर कीमतों को थोड़ा निचले स्तर पर बनाए रखा जाए तो दूध और दुग्ध उत्पादों के निर्यात में बड़ी मदद मिलेगी। अन्य समस्याएं जिनकी ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है वे हैं : दूध की सुनिश्चित सप्लाई (कच्चे माल मे रूप में इस्तेमाल करते समय), स्वच्छता और स्वास्थ्य के मानदंडों को बनाए रखना; उत्पादों का बाजारोन्मुख और अभिनव विविधीकरण, विश्व स्तरीय पैकेजिंग, जोरदार प्रचार–प्रसार अभियान और दूध और दुग्ध उत्पादों को लाने ले जाने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त परिवहन के नवीनतम साधनों का उपयोग।

निष्कर्ष

सत्ता के समुचित विकेंद्रीकरण से अधिकतर विपणन समितियों के काम–काज में हाल में पाई गई प्रशासनिक अड़चनों को कुछ हद तक दूर किया जा सकेगा। इन अड़चनों की वजह से ये समितियां निजी व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करने के अयोग्य हो गई हैं। इसके अलावा सहकारिताओं का वित्तीय आधार सुदृढ़ करने तथा व्यापारिक गतिविधियों व प्रबंधन शैली में दूरगामी परिवर्तन लाने के लिए समन्वित प्रयास करने होंगे। बड़ी संख्या में समितियों में लोकतांत्रिक प्रबंधन व्यवस्था मजबूती से स्थापित करनी होगी। वित्तीय अनुशासन अपनाना होगा तथा इससे भी महत्वपूर्ण यह कि अगर वैज्ञानिक विपणन का फायदा उठाना है तो आधुनिक विपणन गतिविधियों, जैसे श्रेणीकरण, संकलन, बाजार–आसूचना आदि की आरे पहले के मुकाबले अधिक ध्यान देना होगा। विपणन सहकारिताओं को कृषि विपणन की तमाम गतिविधियों को अपनाने की ओर खास ध्यान देना होगा। राज्यों के कृषि सहकारिता परिसंघों और नेफेड को विकास की प्रेरक शक्ति के रूप मे कार्य करना होगा। इससे सहकारी विपणन के क्षेत्र में काम करने वाली विभिन्न संस्थाओं के समन्वित होकर कार्य करने का मार्ग प्रशस्त होगा। ❑

अनुवाद : निरुपम उपाध्याय

सहकारी समितियां – ग्रामीण विकास में भागीदार : वैश्विक परिदृश्य

सी. राजेंद्र कुमार, डा. संजय एस. कप्तान

उन्नीसवीं सदी में निर्धन लोगों ने गरीबी से उबरने में सहायता प्राप्त करने के लिए मूलतः आर्थिक संगठन के रूप में औपचारिक सहकारी संस्था का आविष्कार किया और उसकी नींव रखी। सहकारिता का जो पौधा 25 मार्च 1904 को लगाया गया था, वह आज 100 वर्ष बाद एक बड़े वृक्ष का रूप ले चुका है। ग्रामीण भारत की लगभग सभी जरूरतें इस वृक्ष के नीचे पूरी हो रही हैं।

विश्व में सहकारिता का विकास अति प्राचीन काल में उस समय से माना जा सकता है जब मानव ने पहली बार जीवन के सामान्य लक्ष्यों को मिलकर हासिल करने का फैसला किया होगा। उन्नीसवीं सदी में निर्धन लोगों ने गरीबी से उबरने में सहायता प्राप्त करने के लिए मूलतः आर्थिक संगठन के रूप में औपचारिक सहकारी संस्था का आविष्कार किया और उसकी नींव रखी।

भारत की 70 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है और खेती उसका मुख्य व्यवसाय है। कृषि की उपज का बड़ा हिस्सा किसान परिवारों द्वारा उपभोग किया जाता है और उपज की थोड़ी मात्रा किसानों के पास रह जाती है। विभिन्न प्रकार के विपणन कार्य जैसे संग्रह, भंडारण, वित्त व्यवस्था, सुरक्षा, कृषि उपज की श्रेणीबद्ध बिक्री और ढुलाई आदि, बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं, जो बिचौलियों की भूमिका अदा करते हैं और इस क्षेत्र में जरूरत से अधिक बिचौलिये हो जाते हैं, जो आमतौर पर अपनी सेवाओं के अनुपात में अधिक शुल्क वसूल करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि अंतिम उपभोक्ता द्वारा अदा किए गए उपज के मूल्य में प्राथमिक उत्पादक को उचित हिस्सा नहीं मिलता। इस समस्या के समाधान के लिए देश के विभिन्न भागों में सहकारी विपणन समितियां स्थापित की जा रही हैं।

सहकारी विपणन समितियों का इतिहास

- भारत में सहकारी विपणन का इतिहास 1912 में उस समय शुरू हुआ, जब सहकारी विपणन समितियां अधिनियम, 1912 पारित किया गया।
- पहली सहकारी समिति 1915 में हुबली में बनाई गई, ताकि उन्नत कपास की खेती को बढ़ावा दिया जा सके और सामूहिक रूप में उसकी बिक्री की जा सके।
- 1918 में सुपारी की संयुक्त रूप से बिक्री के लिए तत्कालीन मद्रास प्रांत में दक्षिण कैनरा उत्पादक, सहकारी बिक्री समिति बनाई गई।
- कृषि से संबद्ध रॉयल कमीशन (1928) ने अलग–अलग विपणन की बजाए सामूहिक विपणन की आवश्यकता पर बल दिया।
- केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931) ने संगठित विपणन की आवश्यकता पर बल दिया।
- सहकारी समितियों के रजिस्ट्रारों के ग्यारहवें सम्मेलन (1934) में भी सहकारी विपणन के महत्व पर बल दिया गया।
- 1945 में सहकारी नियोजन समिति ने सिफारिश की कि अगले दस वर्षों में विपणन योग्य अधिशेष का कम–से–कम 25 प्रतिशत हिस्सा सहकारी समितियों के माध्यम से बेचा जाए और इसके लिए 200 गांवों के समूह के लिए एक समिति का गठन किया जाए।
- अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति (1954) ने मौजूदा विपणन सहकारी समितियों की अक्षमता को उजागर किया। 75 जिलों के नमूनों का सर्वेक्षण किया गया, जहां 63 जिलों में सहकारी विपणन समितियां थीं।
- प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) में कृषि विपणन और प्रसंस्करण सहकारी समितियों की स्थापना पर जोर दिया गया।
- 1958 में सहकारी विपणन की मुक्त संस्था के रूप में राष्ट्रीय कृषि सहकारी परिसंघ (नैफेड) की स्थापना की गई।
- 1963 में सहकारी समितियों से संबद्ध कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) की स्थापना की गई।
- मिर्धा समिति (1965) ने सिफारिश की कि कृषि विपणन समितियों की सदस्यता कृषकों तक सीमित रखी जाए और व्यापारियों को कृषि विपणन समिति का सदस्य बनने की अनुमति न दी जाए।
- दांतेवाला समिति (1966) ने सहकारिता

और विभिन्न सहकारी संगठनों के बीच एकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया।

- 1968 में भारतीय रिजर्व बैंक ने यह स्वीकार किया कि ऋण और विपणन के बीच कारगर संबंध अनिवार्य हैं।
- 1969 में अखिल भारतीय ग्रामीण समिति ने भी सहकारी विपणन को मजबूत बनाने की सिफारिश की, ताकि सरकारी एजेंसियों को समर्थन मूल्य कार्यक्रमों पर अमल करने में सहायता पहुंचाई जा सके।

सहकारी विपणन के लक्ष्य और उद्देश्य

- सदस्यों की उपज की बिक्री व्यवस्था करना, ताकि उन्हें अधिक से अधिक लाभ पहुंचाया जा सके और सट्टेबाजी या उगाऊ सौदों की प्रवृत्ति को समाप्त किया जा सके।
- उत्पादकों को सुविधाएं प्रदान की जा सकें और उपज की गुणवत्ता में सुधार के लिए उनका मार्गदर्शन किया जा सके।
- मूल्यों में स्थिरता लाना।
- सदस्य उत्पादकों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- अनाज की वसूली के लिए सरकारी एजेंट के रूप में काम करना।
- पैदावार की ढुलाई की सुविधा प्रदान करना।
- समर्थन मूल्य नीति को लागू करने के लिए सरकारी एजेंट के रूप में काम करना।
- किसानों की मोल–भाव करने की क्षमता बढ़ाना।
- सदस्य उत्पादकों के लिए नियमित व्यापार सुनिश्चित करना।

सीमाएं

वर्तमान में, विपणन समितियों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, जिनसे उनके विकास में रुकावट आई है। मुख्य समस्याओं में अपर्याप्त पूंजी, कार्य क्षेत्र अधिक बड़ा होना, नियंत्रण में लापरवाही, भ्रष्ट पद्धतियां, बेचे जाने वाली उपज की गुणवत्ता कम होना और सदस्यों का समुचित शिक्षित एवं प्रशिक्षित न होना, शामिल है। इस तरह उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक समूची विपणन प्रणाली को यह समझना चाहिए कि ये समितियां किसानों के लिए बैंक की तरह काम नहीं कर पाईं। समितियों के पास धन का अभाव है, जिससे वे बिक्री के लिए लाई गई पैदावार को रहन रखकर किसानों की ऋण संबंधी जरूरतें पूरी नहीं कर पाईं और न ही वे खरीदी गई उपज के दाम का अग्रिम भुगतान कर पाईं। वे व्यापारियों तथा आढ़तियों की प्रतिस्पर्धा में सहकारी विपणन समितियों के माध्यम से उपज को बेचने में भी विफल रहीं, क्योंकि उनके कर्मचारियों में समुचित व्यापारिक विशेषज्ञता का अभाव था।

गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में पर्याप्त मात्रा में अनाज का विपणन सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में 75 प्रतिशत गन्ना, महाराष्ट्र और गुजरात में 75 प्रतिशत कपास और कर्नाटक में 85 प्रतिशत बागान फसलों का विपणन सहकारी समितियों के माध्यम से हो रहा है। किंतु देश के अधिकतर राज्यों में सहकारी विपणन समितियों की प्रगति संतोषजनक नहीं है, क्योंकि कृषक सदस्य इन समितियों को अपनी उपज की बिक्री के लिए संरक्षण प्रदान नहीं करते, बल्कि वे आढ़तियों की सेवाओं का इस्तेमाल करते हैं।

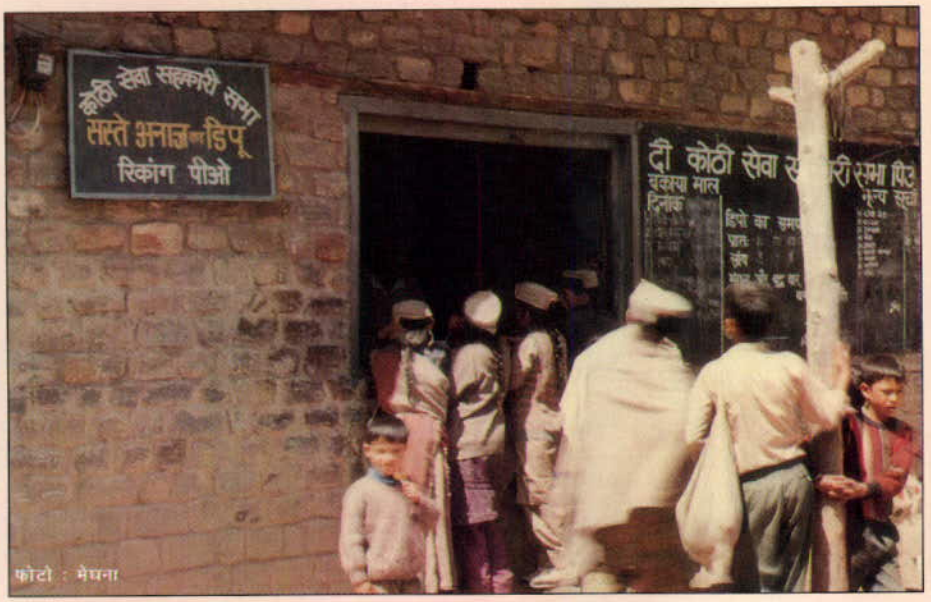

फोटो : मेघना

सहकारी समितियों के समक्ष चुनौतियां

सहकारिता का जो पौधा 25 मार्च, 1904 को लगाया गया था, वह आज 100 वर्ष बाद एक बड़े वृक्ष का रूप ले चुका है। ग्रामीण भारत की लगभग सभी जरूरतें इस वृक्ष के नीचे पूरी हुई हैं और भविष्य में भी ग्रामीण भारत के लिए सहकारिता आंदोलन ही एक मात्र विकल्प है, जो न केवल उसे आश्रय प्रदान करेगा, बल्कि उसके विकास और संभावनाओं को बढ़ाएगा। सहकारिता आंदोलन के पिछले सौ वर्षों के इतिहास का अध्ययन करने पर हमें दो चरण साफ दिखाई देते हैं, पहला 1904 से 1954 तक, जिसे गरेवाल समिति ने विफल सहकारी आंदोलन की संज्ञा देकर रद्द कर दिया था। किंतु इस समिति ने सरकार को सुझाव दिया था कि "सरकार को चाहिए कि वह कृषि और ग्रामीण विकास के माध्यम के रूप में सहकारिता आंदोलन को स्वीकार करे। सरकार ने इसे स्वीकार किया और अगले 50 वर्षों में कुछ क्षेत्रों में सहकारिता आंदोलन का तेजी से विकास हुआ।

किंतु महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सहकारिता आंदोलन का प्रसार केवल बैंकिंग और अन्य सीमित क्षेत्रों जैसे कृषि उत्पादों के विपणन, प्रसंस्करण, हथकरघा, चीनी उद्योग आदि तक सीमित रहा है।

भारत में 1991 से आर्थिक सुधारों ने अर्थव्यवस्था को मुक्त बनाया है और बहु–राष्ट्रीय कंपनियां ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपना वर्चस्व कायम कर रही हैं। इस नए युग में जहां एक ओर वैश्विक प्रतिस्पर्धा के कारण प्रत्येक व्यक्ति गुणवत्ता, समग्र गुणवत्ता प्रबंध (टीक्यूएम) जेआईटी की बात कर रहा है, वहीं दूसरी ओर सहकारी समितियों में अस्तव्यवस्तता का दौर प्रारंभ हो गया है। कार्पोरेट खेती, अनुबंधात्मक खेती का प्रसार गांवों में सभी ओर होता जा रहा है, जिससे ग्रामीण कृषक और सहकारिता आंदोलन को

भारत में सहकारी विपणन और प्रसंस्करण समितियों की प्रगति

मद	1960–61	1970–71	1980–81	नब्बे के दशक के मध्य में
प्राथमिक कृषि सहकारी विपणन समितियां (क) समितियों की संख्या	3108	3222	3789	7506
(ख) सदस्यता (लाख)	13.98	26.71	34.51	48.77
सहकारी समितियों द्वारा विपणन की गई कृषि उपज का मूल्य (करोड़ रुपये में)	179	649	1950	7378
सहकारी समितियों द्वारा वितरित कृषि निवेश का मूल्य (करोड़ रुपये में)	36	317	1114	2117
सहकारी चीनी मिलों की संख्या	56	123	179	240
सहकारी कपास प्रोसेसिंग समितियों की संख्या	155	234	327	327
सहकारी क्षेत्र में कृषि प्रसंस्करण इकाइयां	3000	–	–	2300

खतरा पैदा हो गया है। भारत के गांवों में भूमि के असमान वितरण, अत्याधुनिक कृषि उपकरणों, भूमि पर आबादी की निर्भरता जैसे क्षेत्रों में उसकी तुलना विकसित देशों से नहीं की जा सकती। इन चुनौतियों का सामना करने की दृष्टि से मौजूदा स्थिति बड़ी चिंताजनक है।

स्वतंत्रता के बाद परंपरागत खेती की सुस्त अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए हमने मिश्रित आर्थिक नीतियां अपनायीं और सरकारी नीतियों की मदद से कृषि के आधुनिकीकरण, उद्योगीकरण और बुनियादी ढांचागत सुविधाओं की योजना बनायी। सहकारिता आंदोलन में भी कई गुणा वृद्धि हुई। किंतु, भारत में मौजूदा विश्वव्यापीकरण और आर्थिक सुधारों के बाद की स्थिति में, सहकारी आंदोलन को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, क्योंकि बदलते माहौल में सहकारी संगठनों में व्यावसायिकता का अभाव है और सरकारों की ओर से उन्हें पर्याप्त सहायता नहीं मिल पा रही है। सहकारी संस्थाएं घाटे में चल रही हैं। आर्थिक सुधार परवर्ती काल में अपना अस्तित्व बचाए रखने और उनसे उत्पन्न लाभप्रद स्थितियों का दोहन करने के लिए सहकारी संस्थाओं को प्रबंध संबंधी कार्य हाथ में लेने होंगे और परंपरागत प्रणाली को छोड़ते हुए व्यावसायिकता का दृष्टिकोण अपनाना होगा और प्रत्येक सदस्य को उत्तरदायित्व का निर्वाह करना होगा। मौजूदा गतिविधियों के अलावा सहकारी संस्थाएं बीमा, पर्यटन, स्वास्थ्य, शैक्षिक परिषदों, क्रेडिट कार्ड और वित्तीय क्षेत्रों के लिए अधिकृत केंद्र बन सकते हैं। इन क्षेत्रों में निजी उद्यमों का बोलबाला है, किंतु बैंकिंग क्षेत्र को छोड़कर सहकारी संस्थाओं की उपस्थिति इन क्षेत्रों में नहीं है, किंतु, अधिसंख्य सहकारी बैंक कई कारणों से घाटे में चल रहे हैं।

शहरी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ते विकास को देखते हुए सहकारी संस्थाओं को उन क्षेत्रों को लक्ष्य बनाना होगा, जहां वे निजी क्षेत्र से पिछड़ रही हैं। इनमें आवास समितियां, बीमा क्षेत्र, स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा, मनोरंजन, परिवहन, संभारतंत्र परिचालन आदि क्षेत्र शामिल हैं। मुंबई डिब्बावाला (लंच बॉक्स पहुंचाना) छह खंडों में बड़े कारगर ढंग से काम करते हैं। डिब्बावाला एसोसिएशन निरक्षर व्यक्तियों के माध्यम से विश्व स्तरीय सेवाएं प्रदान कर रही है। दूसरी ओर उनकी एसोशिएशन उन लोगों के लिए भी काम कर रही है। केवल गिने–चुने सहकारी क्षेत्र के बैंक ही टेलीफोन के बिल, बिजली के बिल आदि स्वीकार करते हैं, जिससे न केवल व्यापार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं, बल्कि निचले तबके को समर्थ भी बनाया जा सकता है।

सहकारी संगठनों के लिए नीतियां

ग्रामीण भारत में जीवन के अनेक ऐसे क्षेत्र और व्यवसाय हैं, जिनकी ओर सहकारी संस्थानों का ध्यान नहीं गया है। देश के भीतर और बाहर मौजूदा चुनौतियों को देखते हुए सहकारी संस्थाओं को नए क्षेत्रों में प्रवेश करना चाहिए।

- ग्रामीण बीमा क्षेत्र, ग्रामीण वित्तीय सेवाएं
- वर्तमान ढांचे का इस्तेमाल ग्रामीण परिवहन या संभार–तंत्र के लिए किया जा सकता है।
- ग्रामीण सहकारी संस्थाएं क्रेडिट कार्ड और डेबिट कार्ड का काम शुरू कर सकती हैं।
- निजी ऑपरेटरों और बीएसएनएल के लिए बिल भुगतान केंद्र संबंधी सेवाएं प्रदान करते हुए ग्रामीण दूरसंचार में प्रवेश करने की संभावनाएं हैं।
- कृषि से संबद्ध सभी जल–निकायों की मरम्मत, उनके पुनः निर्माण का काम हाथ में लिया जा सकता है।
- लघु सिंचाई परियोजनाएं शुरू की जा सकती हैं (उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश सरकार ने लघु सिंचाई परियोजनाओं के लिए 1,200 करोड़ रुपये का प्रावधान बजट में किया है)। अखिल भारतीय स्तर पर 55,000 करोड़ रुपये का प्रावधान लघु सिंचाई परियोजनाओं के लिए किया गया है।
- सहकारी संस्थाओं को पुष्प उत्पादन क्षेत्र (पुणे–बंगलौर), अंगूर की खेती (नासिक, आर.आर.जिला), केले की खेती (जलगांव), मूंगफली की खेती (गुजरात) परियोजनाओं, आदि पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।
- सहकारी संस्थाओं को फसल विविधता पर ध्यान देना चाहिए, यह कृषि का सबसे महत्वपूर्ण घटक है, अन्यथा कृषि में हमारी वृद्धि दर कम हो जाएगी।
- उपभोक्ता उत्पाद वितरण।

सहकारिता : वैश्विक उदाहरण

सहकारी संस्थाओं का इस्तेमाल विकसित और विकासशील दोनों ही देशों में, सामाजिक–आर्थिक समस्याओं के लिए, समान रूप से किया जाता है। विश्व में चारों ओर

सहकारिता क्षेत्र की उपलब्धियों के उदाहरण मिलते हैं।

युगांडा में कपास ओटाई क्षमता पर 100 प्रतिशत नियंत्रण सहकारी क्षेत्र का है। इसी तरह स्वीडन में डेयरी उत्पादन का 99 प्रतिशत, जापान में चावल की खेती पर 95 प्रतिशत, पश्चिमी कनाडा में अनाज उत्पादन पर 75 प्रतिशत, भारत में चीनी उत्पादन पर 65 प्रतिशत और इटली में शराब बनाने पर 60 प्रतिशत नियंत्रण सहकारी संस्थाओं का है। शंघाई में एक सहकारी संगठन को कचरा–प्रबंध में विश्व का प्रमुख संस्थान माना जाता है। इसी तरह दक्षिण अमरीका में एक सहकारी संस्था पुस्तक–प्रकाशकों में से एक है।

अमरीका से बाहर वाणिज्यिक क्षेत्र के सबसे बड़े बैंकों में से आठ ऐसे हैं, जो सहकारी रूप से संचालित हैं अथवा सहकारी संगठनों के स्वामित्व में हैं, इनमें फ्रांस के **क्रेडिट एग्रीकल्चर** और हालैंड के **रेबो बैंक** तथा जर्मनी के **डी जी बैंक** जैसे विशाल बैंक भी शामिल हैं।

ग्रामीण विपणन के लिए सहकारी उत्प्रेरण

सहकारिता और ग्रामीण विपणन् के बीच एक उत्प्रेरक का संबंध यह है कि वे अपने सदस्यों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार के माध्यम से ग्रामीण मांग में बढ़ोतरी पर बल प्रदान करते हैं।

सहकारी संगठन परोक्ष रूप से कई लक्ष्यों को हासिल करने में सहायता कर सकते हैं जैसे :–

- व्यवहार के परंपरागत तौर–तरीकों में परिवर्तन करते हुए सदस्यों को नए दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं, ताकि वे अपने संसाधनों का अधिक उत्पादक इस्तेमाल कर सकें।
- उत्पादन संरचनाओं में विविधता लाना और आय में बढ़ोत्तरी।
- पूंजी निर्माण में वृद्धि।
- मानव संसाधनों में सुधार।
- संस्थागत और भौतिक ढांचे में सुधार।

सहकारिता और ग्रामीण विपणन के बीच संबंध को विभिन्न देशों में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी के प्रसार; खेती से इतर रोजगार के अवसर पैदा करने; जोखिम प्रबंध; कम लागत पर ऋण उपलब्धता; और ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं तथा कृषि निवेशों के वितरण की स्थिति के उदाहरणों के माध्यम से भी समझा जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिकी का प्रसार

ग्रामीण लोगों की उत्पादकता कम होने की एक बड़ी वजह समुचित प्रौद्योगिकी का अभाव रही है, किंतु अध्ययनों से पता चला है कि सहकारी संगठन बेहतर चैनल प्रदान करते हैं, जिनसे प्रौद्योगिकी ग्रामीण लोगों तक पहुंचती है। ग्रामीण अपेक्षित प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके उत्पादन और विपणन के तौर–तरीकों में सुधार करने में सक्षम होते हैं। इससे उनकी क्रय शक्ति में सुधार होता है। उदाहरण के लिए घाना में अनाज बैंकों की शुरुआत से छोटे किसानों को अपनी उपज का कुछ हिस्सा भंडारों में जमा कराने की सुविधा दी गई। इससे वे बाद में फसल कटाई के समय प्रचलित दामों से ऊंचे दामों पर अपनी उपज बेच सकते हैं और अपने परिवार की जरूरतें पूरी कर सकते हैं।

कृषि इतर रोजगार के अवसर

रोजगार में अधिक लोग होने पर ज्यादा सामान और सेवाओं की आवश्यकता होती है। आज सहकारी संस्थाएं रोजगार प्रदान करने में अग्रणी हैं। वे न केवल कृषि में बल्कि विभिन्न प्रकार के कृषि इतर रोजगार भी प्रदान कर रही हैं। निम्नांकित उदाहरणों से इस तथ्य को समझा जा सकता है।

आर्मेनिया

पांच सहकारी संगठन–अरारत, अरताश्त, अरापन, वार्डेनिस और तालिन उपभोक्ता सहकारी संस्थाओं की सदस्यता 24,300 है और उनमें करीब 1,320 कर्मचारी काम करते हैं। इन संगठनों का कुल कारोबार 9,90,000 अमरीकी डॉलर मूल्य का है।

बांग्लादेश

बांग्लादेश में डेयरी सहकारी संगठन, जिन्हें **"मिल्क वीटा"** के नाम से जाना जाता है, ने दूध उत्पादन, संग्रह, प्रोसेसिंग और वितरण जैसी सेवाएं प्रदान की हैं। यह संगठन व्यापक तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है। सहकारी संगठनों के संस्थागत विकास से उत्पन्न सेवाओं और शहरी केंद्रों में दूध वितरण के संचालन के लिए सामाजिक स्तर पर ऋण योजनाओं की व्यवस्था से किसानों की आय में दस गुना बढ़ोत्तरी हुई है। इससे करीब तीन लाख परिवारों की आय बढ़ाकर उन्हें गरीबी रेखा से ऊपर लाया गया और करीब 4,400 रोजगार के अवसर पैदा किए गए।

डेयरी सहकारिता मॉडल का आसानी से अनुकरण किया जा सकता है। वास्तव में बांग्लादेश ने भारत का अनुकरण करते हुए यह मॉडल अपनाया है, जहां 1946 में डेयरी सहकारी संस्थाओं की शुरुआत हुई थी। 1970 के दशक में सरकार ने उन्हें प्राथमिकता दी थी और 1980 के दशक के उत्तरार्ध में विश्व बैंक ने सहकारी क्षेत्र के माध्यम से दूध उद्योग के विकास के लिए 50 करोड़ अमरीकी डॉलर का ऋण दिया था। अन्य विकासशील देशों में कई सरकार समर्थित परियोजनाओं से भिन्न इस परियोजना का लक्ष्य उत्पादकों के स्वामित्व और प्रबंध वाले व्यवहार्य सहकारी व्यापार को प्रोत्सहित करना था। इसके नतीजे चौंकाने वाले हैं क्योंकि 70,000 ग्राम दूध सहकारी संस्थाओं को मिलाकर एक राष्ट्रीय परिसंघ अस्तित्व में आया है, जिसके 90 लाख सदस्य हैं। वे 1.3 करोड़ लीटर दूध का हर रोज उत्पादन करते हैं, जिससे प्रत्येक परिवार के लिए 90 अमरीकी डॉलर अतिरिक्त वार्षिक आय होती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण अर्थव्यवस्था में करीब 2,50,000 कृषि इतर रोजगार के अवसर भी पैदा हुए हैं।

जोखिम प्रबंध

गरीबों की जरूरतें प्रभावकारी ढंग से और लचीलेपन के साथ पूरी करने में सहकारी संगठन और सहकारिता दर्शन की सफलता को देखते हुए गरीबों को बीमा कवरेज प्रदान करने में सहकारी संस्थाओं की सफलता की प्रबल संभावनाएं हैं। सहकारी संस्थाएं उद्यम के स्तर पर जोखिम उठाकर व्यक्तिगत स्तर पर जोखिम कम करने में सहायता कर सकती हैं। लधु ऋण उद्यम और सहकारी संस्थाएं अत्यंत निर्धन लोगों को सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित स्वास्थ्य सेवाएं और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने में कारगर सिद्ध हुई हैं। वे अंशदायी बीमा योजनाएं प्रदान करने में विशेष रूप से कारगर हैं क्योंकि उनमें अंशदान वसूल करने और लाभ अदा करने की अनौपचारिक संचालन क्षमता होती है। उदाहरण के लिए रूस में **पोद्दरजाखा** म्युचल इंश्योरेंस ग्रुप की कंपनी एक मात्र ऐसी कंपनी है, जो

ग्रामीण समुदायों में बीमा लाभ प्रदान कर रही है। इससे उन क्षेत्रों में आपदाओं से सुरक्षा प्रदान की जा रही है।

सोमालिया में पशु सहकारी संस्थाएं पशुओं के इन्फैक्शन की व्यापक घटनाओं के बाद से बीमारी मुक्त प्रमाणपत्र प्रदान कर रही है; पशु सहकारी संस्थाएं अपने सदस्यों को पशु चिकित्सा सेवाएं भी प्रदान करती हैं। सहकारी संस्थाओं द्वारा अपेक्षित बीमारी मुक्त प्रमाणपत्र प्रदान किए जाने से पशुओं की खरीद–फरोख्त संभव हो जाती है, अन्यथा उनका बिकना मुश्किल होता है।

रवांडा में प्रत्येक परिवार 'म्यूचल डी सांते' के माध्यम से 5 अमरीकी डॉलर का अंशदान करता है, जिससे परिवार के सभी सदस्यों को एक वर्ष की अवधि के लिए चिकित्सा परामर्श और औषधियों की सुविधा प्रदान की जाती है।

कम लागत पर ऋण उपलब्धता

ग्रामीण क्षेत्रों में समुचित ऋण का अभाव लोगों की आर्थिक स्थितियां सुधारने में उनके संघर्ष में सबसे बड़ी रुकावट है। किसानों को उर्वरकों, बीज, कीटनाशक और अन्य कृषि निवेश तथा उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद के लिए ऋण की आवश्यकता होती है। ऋण सहकारी संस्थाएं एकमात्र साधन हैं, जो किसानों को साहूकारों के चंगुल से मुक्त रख सकती हैं।

बांग्लादेश में महिला ऋण सहकारी संस्थाएं उन महिलाओं को लघु ऋण प्रदान करती हैं, जिन्होंने विभिन्न प्रकार की आय संबंधी गतिविधियां अपना रखी हैं। ऋण की वसूली 90 प्रतिशत से कम कभी नहीं रहती और कई सहकारी संस्थाओं ने पहली बार व्यक्तिगत और समूह बचत की भी व्यवस्था की है, जिससे आपदा के समय छोटी लेकिन महत्वपूर्ण सुरक्षित राशि जुटाई जा सकती है।

बांग्लोदश में ही ग्रामीण बैंक गरीबों को समूह की संयुक्त धरोहर को रखकर ऋण प्रदान करते हैं। इन ऋणों की वसूली का स्तर 90 प्रतिशत से ऊपर रहता है।

इराक में तुर्की के कुर्द शरणार्थी कई तरह की सहकारी संस्थाओं का इस्तेमाल अपनी मुसीबतों के समाधान के लिए करते हैं। कुर्द शरणार्थियों से संबंद्ध विभिन्न क्षेत्रों में कृषि, आवास और रोजगार के लिए ऋण देने वाली सहकारी संस्थाएं विकसित की गई हैं।

उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण

उपभोक्ता सहकारी संगठन दुनियाभर में प्रसिद्ध सहकारी संस्थाओं में से एक हैं, जिनका गठन अपने सदस्यों की जरूरतें पूरी करने के लिए किया जाता है। विकासशील देशों में सहकारी संस्थाओं का इस्तेमाल उपभोक्ता वस्तुओं और कृषि निवेशों, दोनों के वितरण के लिए किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में उपभोक्ता सहकारी संस्थाओं ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उपभोक्ता सहकारी संस्थाएं उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए कारगर ढंग से बाजार में हस्तक्षेप करती हैं और इस तरह वे सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार करती हैं। भारत में उपभोक्ता सहकारी संगठनों की सार्वजनिक वितरण प्रणाली में दोहरी भूमिका है। पहली यह कि वे उचित दर/राशन दुकानें चलाते हैं, और दूसरी यह कि वे अन्य अनिवार्य वस्तुओं के वितरण के जरिए बाजार कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं। इस तरह वे उपभोक्ता वस्तुओं के मुक्त बाजार मूल्यों पर असर डालते हैं। कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं:

स्पेन

श्रमिकों, उपभोक्ताओं और किसानों के स्वामित्व वाले मोन्ड्रागोन को–ऑपरेटिव सिस्टम नाम के सहकारी संगठन ने स्पेन के बासक्यू क्षेत्र में 60,000 रोजगार के अवसर पैदा किए हैं।

अमरीका

अमेरिका में देश के मिड–वेस्ट क्षेत्र में अपेक्षाकृत एक नए सहकारी संगठन ने खाद्य प्रसंस्करण उत्पादों के मूल्य संवर्धन के जरिए निर्धन परिवारों के लिए धन जुटाने में मदद की है।

जापान

जापान में एक सशक्त उपभोक्ता सहकारी क्षेत्र है, जिसे "हैन" नाम की बेजोड़ संयुक्त क्रय प्रणाली द्वारा मदद की जाती है।

सदस्यों के लिए लाभकारी मूल्य

सहकारी संस्थाओं की सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक है कि इनके जरिए सदस्यों को उनके उत्पादों या उपज का लाभकारी मूल्य सुनिश्चित किया जाता है। विकासशील देशों में इसका खास असर देखा गया है। सहकारी संस्थाओं के माध्यम से बेईमान बिचौलियों के शोषण को समाप्त या सीमित या दूर करने में मदद मिलती है। इस संदर्भ में निम्नांकित उदाहरण देखे जा सकते हैं।

बोतस्वाना

बोतस्वाना में पशु विपणन सहकारी संस्थाओं ने देश के दो बूचड़खानों में से एक के लिए ऐसी व्यवस्था की है कि उसे वध के लिए पशुओं की आपूर्ति किसानों को उनके पशु के मरने के बाद के भार के आधार पर भुगतान होने के बाद की जाती है। सहकारी विपणन समितियों के अस्तित्व में आने से पहले व्यापारी किसानों से सीधे औने–पौने दाम पर पशु खरीदते थे। अक्सर किसान भी उधार ली गई उपभोक्ता वस्तुओं के लिए उन्हीं व्यापारियों के कर्जदार होते थे। जिससे गरीबी का दुष्चक्र बढ़ता रहता था।

नामीबिया

उत्तरी नामीबिया में महिलाओं के मारुला तेल सहकारी संगठन के अंतर्गत नौ सामुदायिक समूहों से संबद्ध करीब 1,000 महिलाएं मारुला पौधे की गुठलियों से मारुला तेल निकालती हैं। यह तेल एक कंपनी को बेचा जाता है, जो इसे सौंदर्य उत्पाद के रूप में विश्व बाजार को निर्यात करती है।

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका में उत्पादक संगठनों की स्थापना की गई है, जो लघु उत्पादकों को अधिक मूल्य देने वाले बाजारों तक पहुंचाने में सहायता करते हैं, ताकि वे एजेंसी समझौतों के माध्यम से प्रतिष्ठित निर्यातकों का इस्तेमाल करते हुए सहकारी संगठनों के जरिए उन बाजारों में अपने फल और सब्जियों का विपणन कर सकें। कुछ महिला समूहों ने स्थानीय उपज की बिक्री बड़े बाजारों में करने के लिए बड़े सुपर बाजारों के साथ समझौते किए हैं।

सहकारी संस्थाएं, विशेषकर विकासशील देशों के, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस तरह सहकारी संस्थाओं और ग्रामीण विपणन के बीच भागीदारी का सार इस बात में निहित है कि वे अपने सदस्यों के लिए बेहतर और स्थिर आय की व्यवस्था करने में कितनी सक्षम हैं। ❑

अनुवाद : अंजली सिन्हा

महिला डेयरी परियोजनाओं का एक अनुभव

वी. एम. राव

भारतीय सहकारिता आंदोलन विश्व के सबसे बड़े आंदोलनों में से एक है। राष्ट्र के संस्थापक तथा आधुनिक भारत के निर्माताओं ने इस आंदोलन को बल दिया और समुदाय आधारित संगठनों में महिलाओं की अधिक भागीदारी के माध्यम से समाज में सामाजिक रूपांतरण हेतु सहकारिताओं को आदर्श माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया। इस लेख में महिलाओं की भागीदारी पर ध्यान केंद्रित करने के साथ विभिन्न राज्यों में महिला डेयरी परियोजनाओं के अभिलेखों तथा आंकड़ों के आधार पर अध्ययन, सर्वेक्षण और मूल्यांकन किया गया है।

सहकारिताएं समान आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं/अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु स्वैच्छिक रूप से संगठित लोगों का साझा स्वामित्व तथा लोकतांत्रिक रूप से नियंत्रित स्वायत्तशासी संगठन होती हैं। भारतीय सहकारिता आंदोलन विश्व के सबसे बड़े आंदोलनों में से एक है। यह कृषि ऋण वितरण, कृषि उपक्रमों के वितरण, किसानों को बाजार समर्थन प्रदान करने, सहकारिता शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रदान करने इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता रहा है। यद्यपि सहकारिता हमारी विरासत का अंग रही है तथापि इस आंदोलन की औपचारिक शुरुआत 1904 में सहकारिता ऋण संस्था अधिनियम लागू करने के साथ हुई थी। इस अधिनियम का उद्देश्य किसानों तथा जरूरतमंद व्यक्तियों को शोषक महाजनों से राहत प्रदान करना था। यह बाद में 1912 तथा 1919 में अधिनियमों द्वारा परिवर्द्धित किया गया तथा सहकारिताएं एक राज्य का विषय हो गईं। सहकारिता आंदोलन के महत्व को कृषि पर रायल कमीशन (1928) द्वारा स्पष्ट रूप से इस तरह वर्णित किया गया था – "यदि सहकारिता विफल होती है तो यह भारत के लिए बेहतरीन आशा की विफलता होगी"। स्वतंत्रता पश्चात् के योजनाकारों ने इस आंदोलन को बल दिया तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इच्छा व्यक्त की कि भारत सहकारिताओं से अभिप्रेरित हो।

उद्देश्य

इस लेख में यह कोशिश की गई है (क) महिलाओं की भागीदारी पर ध्यान केंद्रित करते हुए भारतीय सहकारिता आंदोलन का सामान्य सर्वेक्षण करना। (ख) महिला डेयरी परियोजनाओं संबंधी विशेष संदर्भ के साथ महिलाओं हेतु प्रशिक्षण एवं रोज़गार कार्यक्रम (स्टेप) लागू करने की समझ, तथा (ग) राजस्थान महिला डेयरी परियोजना के प्रभाव का विश्लेषण करना। इस उद्देश्य हेतु विभिन्न प्रकाशित तथा अप्रकाशित अभिलेखों से आंकड़े संग्रहित किए गए हैं। विभिन्न राज्यों में महिला डेयरी परियोजनाओं के मूल्यांकन पर लेखक द्वारा किए गए अध्ययनों को भी शामिल किया गया है।

आन्दोलन की वर्तमान स्थिति

भारत में लगभग 5.45 लाख सहकारी समितियां हैं जिनके सदस्यों की संख्या 23.6 करोड़ से अधिक है। आंदोलन में लगभग 19854.2 करोड़ रुपये की अंश पूंजी लगी है। इनका विस्तृत नेटवर्क है, जिसमें सभी गांव तथा 70 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण घर शामिल हैं तथा ये कृषि विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कृषि ऋण वितरण का 46 प्रतिशत, उर्वरक वितरण का 36 प्रतिशत, चीनी उत्पादन का 59 प्रतिशत, गेहूं प्राप्ति का 32 प्रतिशत, सूती धागा/वस्त्र उत्पादन का 23 प्रतिशत, संसाधित एवं विपणित रबड़ का 95 प्रतिशत, दूध के विपणित अधिशेष का कुल 15 प्रतिशत, आदि का वितरण सहकारिताएं कर रही हैं।

ग्रामीण ऋण संरचना में 98,843 प्राथमिक कृषि समितियां, 371 जिला केंद्रीय सहकारी बैंक तथा 30 राज्य सहकारी बैंक हैं। आगे, 1421 शाखाओं वाले कुल 19 राज्य सहकारी भूमि/कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक हैं। इस ऋण संरचना ने अपनी कृषि साख के द्वारा आर्थिक विकास दर को सहायता प्रदान की है, जिसने अर्थव्यवस्था की वृद्धि में योगदान किया है। इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स को–ऑपरेटिव लिमिटेड (इफको) तथा कृषक भारती को–ऑपरेटिव लिमिटेड (कृभको) दो विशाल उर्वरक उत्पादन संगठन हैं, उर्वरक उत्पादन में 28 प्रतिशत का योगदान है और जिनका सुदृढ़ वित्तीय प्रबंधन के सिद्धातों पर व्यावसायिक रूप व्यवस्थित हैं। कर्नाटक मिल्क प्रोड्यूसर्स को–ऑपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड तथा गुजरात को–ऑपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड तथा गुजरात को–ऑपरेटिव मिल्क मार्केटिंग फेडरेशन लिमिटेड इसी श्रेणी के समान संगठन हैं। यही स्थिति महाराष्ट्र राज्य सहकारी शक्कर कारखाना लिमिटेड तथा गुजरात राज्य सहकारी चीनी फेडरेशन लिमिटेड की है।

तालिका 1

महिलाओं के नेतृत्व में कुछ सफल सहकारिताओं के उदाहरण

क्र.सं	संगठन	राज्य
1.	श्री महिला सेवा सहकारी बैंक लिमिटेड, अहमदाबाद	गुजरात
2.	श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़, मुंबई	महाराष्ट्र
3.	उत्तरांचल महिला डेयरी विकास निगम, अल्मोड़ा	उत्तरांचल
4.	इचामती सहकारी दुग्ध उत्पादक संघ लिमिटेड, बारासात	पश्चिम बंगाल
5.	गुजरात राज्य सेवा महिला सहकारी फेडरेशन, अहमदाबाद	गुजरात
6.	भगिनी निवेदिता सहकारिता बैंक, पुणे	महाराष्ट्र
7.	जीजामाता महिला सहकारी बैंक लिमिटेड, पुणे	महाराष्ट्र
8.	इंदिरा महिला सहकारी स्पिनिंग मिल, इन्चलकरनजी	महाराष्ट्र
9.	सावित्रीबाई कोरे महिला औद्योगिक सहकारी समिति, वरानानगर	महाराष्ट्र
10.	जवाहरलाल महिला सहकारी स्पिनिंग मिल लिमिटेड, धुले	महाराष्ट्र
11.	शेतकारी महिला सहकारी स्पिनिंग मिल लिमिटेड, संगोल	महाराष्ट्र
12.	किओझार जिला सहकारी उत्पादक संघ लिमिटेड, केओनझर	उड़ीसा
13.	मुल्कानूर महिला डेयरी सहकारिता समिति, करीमनगर	आंध्र प्रदेश

स्रोत : लेखक द्वारा संकलित

आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी

राष्ट्र के संस्थापकों तथा आधुनिक भारत के निर्माताओं ने भी समुदाय आधारित संगठनों में महिलाओं की अधिक भागीदारी के माध्यम से समाज में सामाजिक रूपांतरण हेतु सहकारिताओं को आदर्श माध्यम के रूप में देखा। अलाभकारी और हाशिए पर रहनेवाली महिलाओं की हैसियत में वृद्धि करते हुए तथा सामूहिक कार्रवाई की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने हेतु महिलाओं का उपयोग करते हुए सहकारिताएं एकीकृत विकास का मार्ग हो सकती हैं। महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक असमर्थताओं को दूर करने के लिए केंद्रित ढेर सारे कार्यक्रमों के बावजूद सभी स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी संतोषजनक नहीं है और सहकारिताएं इसकी अपवाद नहीं हैं। यह उल्लेख करना अत्यधिक दुखद है कि सभी सहकारिताओं की मात्र 2 प्रतिशत ही महिला सहकारिताएं हैं। इस तरह यह क्षेत्र बड़े पैमाने पर पुरुष वर्चस्व वाला तथा पुरुष–केंद्रित है। अनुभव यह प्रदर्शित करता है कि महिलाओं के स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध वाली कई सफल सहकारिताएं हैं। इनमें में से कुछ तालिका–1 में दी गई हैं। यह सूची सांकेतिक है विस्तृत नहीं। महिलाओं ने पारिवारिक दायित्वों तथा सहकारिताएं जैसे व्यापारिक संगठनों के बीच संतुलन कायम कर स्वयं को बढ़िया प्रबंधक/ उद्दमी सिद्ध किया है। महिला एवं बाल विकास विभाग, संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा महिलाओं हेतु प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम (स्टेप) के अंतर्गत लागू की जा रही सहकारिताओं, महिला डेयरी परियोजनाओं में से एक सफल उदाहरण का वर्णन आगे अनुच्छेद में किया गया है।

स्टेप के उद्देश्य

पारंपरिक अनौपचारिक क्षेत्रों में महिलाओं की बेहतरी सुनिश्चित करने हेतु स्टेप का कार्यान्वयन किया जा रहा है। यह महिलाओं की उत्पादकता में वृद्धि, उनकी आत्मनिर्भरता और स्वायत्तता में वृद्धि करने तथा आय जनित गतिविधियों हेतु सक्षम बनाने पर केंद्रित है। स्टेप के विशिष्ट उद्देश्य हैं (क) महिलाओं को छोटे जीवनक्षम समूहों में जुटाना तथा प्रशिक्षण एवं ऋण की पहुंच द्वारा सुविधाएं उपलब्ध

कराना, (ख) कुशलता में वृद्धि हेतु प्रशिक्षण प्रदान करना, (ग) आगे तथा पीछे की ओर सहलग्नता प्रदान कर रोजगार–सह–आय जनित कार्यक्रमों को शुरू करने हेतु महिलाओं के समूहों को सक्षम बनाना, तथा (घ) महिलाओं के प्रशिक्षण एवं रोजगार की स्थितियों में और सुधार के द्वारा समर्थन सेवाएं प्रदान करना। 'स्टेप' कार्यक्रम के अंतर्गत लक्षित समूह में हाशिए पर खड़ी संपदाविहीन ग्रामीण महिलाएं तथा शहरी गरीब शामिल हैं। वर्ष 1987–02 के दौरान विभिन्न राज्यों में शुरू की गई 96 परियोजनाओं के अंतर्गत करीब 4.92 लाख महिलाएं शामिल की गई थीं। पशुपालन एवं डेयरी को स्टेप के अंतर्गत गतिविधियों में से एक के रूप में चिन्हित किया गया है। अच्छी संख्या में राज्य स्तरीय डेयरी फेडरेशनों (आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि) ने 'स्टेप' के अंतर्गत महिला डेयरी सहकारिता समितियों (डब्ल्युडीसीएस) का गठन किया। डब्ल्युडीसीएस महिलाओं द्वारा और महिलाओं के लिए महिलाओं का संगठन है। इस तरह डब्ल्युडीसीएस केवल महिलाओं के स्वामित्व में और महिलाओं द्वारा नियंत्रित तथा व्यवस्थित है। कुछ मामलों में सचिव, परीक्षक, हेल्पर आदि कर्मचारी भी महिलाएं हैं। दस राज्यों में 3.6 लाख की सदस्यता के साथ 9,000 से अधिक डब्ल्युडीसीएस हैं (तालिका–2)। इन डब्ल्युडीसीएस के कामकाज के बारे में सामान्य धारणा यह है कि ये मिश्रित लिंग वाली समितियों की तुलना में अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से व्यवस्थित हैं। आगे खंडों में राजस्थान महिला डेयरी परियोजना का प्रभाव जानने की कोशिश की गई है।

आरसीडीएफ की रूपरेखा

पशुधन अर्थव्यवस्था के महत्व तथा शहरी आबादी को अच्छे दूध की आपूर्ति करने को ध्यान में रखते हुए राजस्थान सहकारिता डेयरी फेडरेशन लिमिटेड (आरसीडीएफ) का गठन 1977 में किया गया था। इसके बाद डेयरी विकास गतिविधियां संगठित रूप में विभिन्न कार्यक्रमों के तहत अनिवार्य आधारभूत ढांचे का सृजन कर प्रारंभ की गई थीं। वर्तमान में आर सी डी एफ के पास 16 दूध के शेड तथा 7,000 से अधिक डी सी एस हैं जिसके करीब 5 लाख सदस्य हैं।

महिला डेयरी सहकारिताओं की प्रस्तावना

चाहे किसान हो या कृषि श्रमिक, एक आय वाले परिवार हेतु परिवार तथा स्वास्थ्य को बनाए रखना हमेशा एक मुश्किल काम है। सभी आवधिक सर्वेक्षणों में ग्रामीण गरीबों के लिए एक वर्ष में बमुश्किल 150 से अधिक कार्यदिवस उपलब्ध होते हैं। यहां तक कि सघन कृषि वाले क्षेत्रों में भी जहां काम की उपलब्धता अधिक है, यह खास मौसम के कुछ महीनों में ही है। पत्नी और कुछ बच्चों के साथ निर्वाह के लिए पति की आय हमेशा अपर्याप्त है। यद्यपि महिलाएं भी काम करने के लिए इच्छुक हैं, परंतु अवसर कम हैं और पारिश्रमिक भी अल्प है। नीति–निर्धारकों के लिए महिलाओं को लाभकारी रोजगार की ओर आकृष्ट करना हमेशा एक मुद्दा रहा है। आणंद दुग्ध संघ का अनुभव होते ही महिलाओं को शामिल कर ग्रामीण रोजगार के राष्ट्रीय कार्यक्रम में डेयरी आंदोलन मुख्य रूप से चिन्हित कर लिया गया था। आठवें दशक तक आंध्र प्रदेश में डेयरी सहकारिताओं में महिलाओं के सराहनीय निष्पादन ने इसे अन्य राज्यों में लागू करने के लिए उत्साहित किया। इस तरह डेयरी कार्य को परिवार से संबद्ध माना गया तथा मिश्रित लिंग वाली सहकारिताओं की वकालत को समर्थन मिला।

परंतु केवल महिलाओं वाली सहकारिताओं (सभी महिला वाली डेयरी सहकारिता सोसाइटियां या डब्ल्युडीसीएस के नाम से विख्यात) ने यह प्रदर्शित किया कि इसके कार्यक्रम आयोजना में लिंग आधारित अंतःक्षेपों ने न केवल आय और रोजगार की वृद्धि की बल्कि परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति भी बेहतर हुई तथा उन्हें समाज में अधिक बड़े परिवर्तन की ओर उन्मुख किया। राजस्थान महिला डेयरी परियोजना ने महिलाओं की ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा अधिकारिता में सर्वांगीण भागीदारी को बढ़ाते हुए लाभकारी अर्थव्यवस्था संबंधी गतिविधियों हेतु तैयार करने

तालिका 2

डब्ल्युडीपी के अंतर्गत गठित डब्ल्युडीसीएस का राज्यवार वितरण

क्र.सं	राज्य	पूर्ण चरण	गठित डब्ल्यु डी सी एस	सदस्यता
1.	आंध्र प्रदेश	1	339	17615
2.	बिहार	4	500	25153
3.	कर्नाटक	2*	850	84735
4.	महाराष्ट्र	4**	341	21728
5.	उड़ीसा	2***	636	49207
6.	पंजाब	1	140	4526
7.	राजस्थान	6#	1163	79587
8.	उत्तरांचल	7@	731	28324
9.	उत्तर प्रदेश	19	2926	11778
10.	पश्चिम बंगाल	3$	393	37800
	कुल		**8089**	**360403**

o अकेले गुजरात में 53,600 महिला सदस्यता के साथ 951 डब्ल्यु डीसीएस हैं। यद्यपि ये डब्ल्यु डी पी के अंतर्गत शामिल नहीं हैं।

* मार्च 2004 तक दूसरा चरण पूरा होने जा रहा है।

** सभी चार चरण प्रगति में हैं।

*** दो और चरण प्रगति में हैं।

दो और चरण प्रगति में।

@ तीन चरण पूर्ण हैं, और चार प्रगति में हैं।

$ तीन और चरण प्रगति में हैं।

स्रोत : लेखक द्वारा संकलित।

के अपने तय माडलों की प्रतिकृति के रूप में बढ़ावा दिया।

राजस्थान महिला डेयरी परियोजना

पशुपालन तथा डेयरी गतिविधियों में महिलाओं के योगदान को महसूस करते हुए आरसीडीएफ ने सात दुग्ध संघों (अजमेर, बांसवाड़ा, भरतपुर, बीकानेर, जयपुर, जोधपुर और पाली) में 1992–94 के दौरान स्टेप (चरण 1) लागू किया और इसके पीछे पांच और चरण (1994–98) लागू किए गए। (दो नए चरण 2003 तक लागू किये)।

पहले चरण के अंतर्गत आए दूध संघ भाग्यशाली थे कि चरण 2 तथा 6 के अंतर्गत शामिल किए गए, जबकि चरण 4 तथा 5 में उदयपुर एवं चुरू शामिल हुए। चरण 3 को भीलवाड़ा तथा सीकर में लागू किया गया था। मंत्रालय द्वारा कुल 15.82 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए थे जिसमें से 14.42 करोड़ रुपये मुक्त किया गया था। हालांकि फेडरेशन और इसके संघों द्वारा केवल 12.49 करोड़ रुपये खर्च किए जा सके। इस तरह लगभग 2 करोड़ रुपये खर्च नहीं किए जा सके थे। आर सी डी एफ ने 2.67 करोड़ रुपये का योगदान दिया जो इसके शेयर (10 प्रतिशत) से अधिक हैं। फेडरेशनों, संघों तथा मंत्रालय द्वारा किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप गठित डब्ल्युडीसीएस की संख्या 1994–95 में 362 से बढ़कर 2001–02 में 1163 हो गई। इसी अवधि में इन डब्ल्युडीसीएस में महिला सदस्यता 0.34 लाख से बढ़कर 0.80 लाख हो गई।

डब्ल्युडीसीएस का सापेक्षिक निष्पादन

यद्यपि सामान्य डब्ल्युडीसी की तुलना में प्रति डब्ल्युडीसीएस औसत सदस्यता कम है, प्रति डब्ल्युडीसीएस औसत प्राप्ति तथा दूध की गुणवत्ता बेहतर है। आगे पुरुषों द्वारा चलाई जा रही कार्यरत सोसाइटियों की संख्या कम हुई, महिला समितियों में एकरूपता रही है। तैयार बाजार के दबावों की अवज्ञा करते हुए या कृषि अथवा व्यापार में आवधिक परिवर्तन में, महिलाएं विश्वासपात्र रहती हैं जबकि पुरुष सहयोगी घटते–बढ़ते हैं। कुल मिलाकर महिला सदस्य अपनी सहकारिताओं के मानदंडों का ध्यान रखती हैं। दूध संघों के अतिरिक्त जयपुर, भीलवाड़ा, अजमेर तथा पाली ने महिला–केंद्रित, नियंत्रित तथा व्यवस्थित डेयरी सहकारिताओं को शुरू करने का उत्कृष्ट कार्य किया है। जोधपुर, बीकानेर तथा श्रीगंगानगर जैसे अन्य संघ भी इस संबंध में संतोषजनक कार्य करते रहे हैं।

डब्ल्युडीसीएस को लागू करने की क्रियाविधि

डब्ल्युडीसीएस को गठित करने हेतु परियोजना के तहत परीक्षक उपस्करों सहित निवेश, प्रबंधकीय आर्थिक सहायता, दुधारू पशुओं के क्रय हेतु अतिरिक्त राशि, चारा, खनिज मिश्रण, यूरिया चाथनी पिंड हेतु आर्थिक सहायता, सामान्य सदस्यों, समिति सदस्यों, कर्मचारियों को प्रशिक्षण तथा क्षेत्र–भ्रमण और रोजगार समर्थक सेवाएं भी उपलब्ध कराई गई थीं। प्रबंधन की तरफ से डब्ल्युडीसीएस तथा एनपीओ के बीच दूध संघों के साथ संपर्क विकसित किए गए थे, जबकि आरसीडीएफ को खासी संख्या में सूक्ष्म निवेशों को व्यवस्थित करना था। प्रशिक्षणों के प्रारंभिक माडलों से प्रारंभ करते हुए डेयरी प्रबंधन को बछड़ापालन, पशुओं के रख–रखाव तथा चारा विकास से परिचित कराया गया था। इसके अलावा सभी व्यावसायिक पद पर बेहतर क्षमता निर्माण हेतु कई डेयरी संस्थानों में प्रदर्शन यात्राएं की गई थीं। डब्ल्युडीसीएस सचिवों हेतु अध्यक्षों का केप्सूल पाठ्यक्रम का नियमित प्रशिक्षण शुरु किया गया। कृत्रिम गर्भाधान में प्रशिक्षण से चारा देने, प्रसव कराने, स्वच्छ दूध का उत्पादन आदि सहित पशुओं की देखभाल के वैज्ञानिक प्रबंध में सूक्ष्म प्रशिक्षण भी शुरू किए गए। इसके अलावा सांद्र का निर्माण, चारे की खेती आदि जैसी निपुणताओं का लंबा सिलसिला है जिसे महिलाओं ने अपनी व्यावसायिक सक्षमता हेतु कठिन परिश्रम से सीखा है। परियोजना के अनुदान की करीब 15 प्रतिशत राशि प्रशिक्षण, लिंग सुग्राहन समेत स्वास्थ्य का ध्यान, सफाई, आय अर्जित करने (द्रवीय डिटर्जेंट, साबुन, चाक, राष्ट्रीय झंडे, वर्दियों, पैडों, अगरबत्तियों आदि का उत्पादन), वयस्क शिक्षा आदि के लिए दी गई थी।

डब्ल्युडीसीएस का प्रभाव

सफलता के प्रतिबिंब में कई ऐसे चित्र हैं, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। प्रत्येक ग्राम डब्ल्युडीसीएस में औसतन 50 सदस्य हैं और उनमें से करीब दो तिहाई निश्चित रूप से लाभार्थी हैं: इस तरह एक गांव में कम से कम 35 परिवार मुख्य व्यवसाय के रूप में डेयरी से आर्थिक लाभ प्राप्त करने लायक हैं, जबकि प्रत्येक गांव में कम से कम दो महिलाएं सीधी लाभार्थी हैं। सचिव, दूध टेस्टर, एआई कार्यकर्त्ता, प्राथमिक पशु चिकित्सा कार्यकर्त्ता एवं प्रधान लदानकर्त्ता जैसे सभी तकनीकी कुशल कार्यकर्ताओं के केवल एक दूध उत्पादन होने की बजाए अब उन्हें अतिरिक्त काम मिला। अग्रणी टीम के छोटे समूह के अलावा प्रबंध समिति के नौ सदस्यों, एक अध्यक्ष, जो सामान्यतः ग्रामीणों में सामान्य एक सौम्य महिला होती है, की भी जन संगठनों के लोकतांत्रिक प्रबंध में प्रशिक्षित किया जाता है। ऐसे सभी गांवों में महिलाओं का एक मुख्य समूह है और इन गांवों के इतिहास में पहली बार एक नए प्रकार के नेतृत्व का उदय हुआ है।

डब्ल्यूडीसीएस के उपोत्पादन

इसी तरह डब्ल्यूडीसीएस को अंततः महिला मंडलों, औपचारिक महिला संगठनों का गठन करना था जिसमें महिलाओं से संबंधित अन्य मुद्दों को उठाया जा सके। स्वयं सहायता समूहों का गठन तथा अनौपचारिक शिक्षा देना भी ऐसे आयाम थे जिनका प्रचार करने पर विचार किया गया था। डेयरी संगठन के अंदर फेडरेशन तक सहकारिता संरचना के सभी पदानुक्रमों से प्रतिस्पर्धा करने की सुविधा महिलाओं को प्रदान करने पर भी विचार किया गया। सामाजिक उद्धार की अपेक्षाओं के अनुसार डब्ल्यूडीसीएस ग्रामीण महिला नेतृत्व के विकास में मदद करेगा। यह इस तथ्य से प्रमाणित है कि ये महिलाएं कई एसएचजी का गठन कर रही हैं जो उपभोक्ता भंडार, स्कूल की वर्दी/ड्रेस, चाक बनाने, पेपर प्लेट, पापड़ तथा अचार, मोमबत्तियां, डिटर्जेंट, राष्ट्रीय झंडे, गुलाबजल, छापाखाना आदि गतिविधियां चला रही हैं। परिणामस्वरूप ग्रामीण भारत में ग्रामीण उद्यमियों तथा ग्रामीण महिला नेतृत्व का विकास हुआ है।

हाल के वर्षों तक ग्रामीण स्तरीय नेतृत्व सामान्यतः पारंपरिक तथा इसका दृष्टिकोण रुढ़िवादी रहा है। वैसी महिलाएं जो अबतक छुआछूत को मानती रही हैं मुख्यधारा में आ रही हैं और यह कलंक तेजी से मिट रहा है।

डब्ल्यूडीसीएस की कुल सदस्यता में दलित महिलाएं 12 प्रतिशत हैं जबकि पिछड़ी जाति की महिलाओं की संख्या अधिक उपस्थिति के कारण वर्चस्व है। विभिन्न जाति की महिलाओं को एक बैठक में साथ–साथ देखना एक पृथक अनुभव है। यह सिर्फ एक समूह के लोगों का निकट आना नहीं है बल्कि वर्षों से मौजूद जातिगत विद्वेषों की शृंखला का टूटना भी है।

अवशोषक कार्य के अलावा डब्ल्यूडीसीएस ने विभिन्न वर्ग की कृषक महिलाओं को कुछ विशिष्ट लाभ भी प्रदान किए हैं। यह लाभ अमीर एवं गरीब दोनों को प्राप्त है तथा विशेषतः उच्च जाति की उन महिलाओं को भी जिन्होंने पहले कभी पशुपालन कार्य नहीं किया है। मध्यम जाति के किसानों हेतु संगठन के स्तर पर 1,200 से अधिक डब्ल्यूडीसीएस द्वारा 5 प्रतिशत का साधारण लाभ उपलब्धि से कम नहीं है। कृत्रिम गर्भाधान एक दूसरा क्षेत्र है जिसमें महिलाओं का प्रवेश हुआ है और आज करीब 100 ऐसे केंद्र प्रशिक्षित महिलाओं द्वारा संचालित हैं। मुस्कुराते चेहरे के साथ उनमें से कई बता सकती हैं कि यह बछड़ा या वह प्यारी सी गाय वही है जिनका गर्भाधान उन्होंने कराया है।

सूखे के दौरान योगदान

हाल में सूखे के समय इन समितियों के महत्व को बहुत महसूस किया गया था। ये समितियां पशु शिविरों के गठन में संलग्न थीं तथा अपने क्षेत्रों में सूखे चारे की प्राप्ति और वितरण हेतु नोडल एजेंसियां नियुक्त कीं। सूखे में पशुओं तथा लोगों के लिए पानी की व्यवस्था के अतिरिक्त अनुदानित भोजन एवं चारे का भी वितरण किया गया था। इन समितियों द्वारा अर्जित आय जीवित रहने के मुख्य स्रोत थे। डब्ल्यूडीसीएस योग्य छात्रों को पुरस्कार तथा छात्रवृत्ति भी देती है। अपने पूर्व अनुभव के आधार पर सरकारी एजेंसियां इन सहकारिताओं के माध्यम से पोलियो टीकाकरण, परिवार नियोजन, व्यस्क शिक्षा आदि का संचालन करती रही है।

सामाजिक अधिकारिता

सहकारिता नेटवर्क में महिलाओं के साथ–साथ होने में कई साहसिक कार्यों हेतु द्वार खोले हैं। गरीब महिलाओं के मन में बचत की आदत स्थापित करने के लिए कई डब्ल्यूडीसीएस आगे आईं हैं। 2003–04 की समाप्ति तक 20 प्रतिशत महिलाएं महिला समृद्धि योजना में शामिल हो गई थीं। प्रत्येक आरडब्ल्यूडीसी गांव में यह देखकर प्रोत्साहन होता है कि अब वहां महिलाओं के लिए एक खास स्थान है जहां वे एकत्र होकर केवल डेयरी की नहीं बल्कि उन्हें प्रभावित करने वाली सभी चीजों के बारे में, आणंद, करनाल या सिलीगुड़ी जैसे दूरस्थ स्थानों की चर्चा करती हैं। वे अपने गांव, इसकी समस्याओं, जीर्ण–शीर्ण सड़कों, पीने के पानी तथा बिजली की कमी, राशन दुकानदार द्वारा कदाचार, स्कूल में शिक्षक या पीएचसी में डाक्टर की अनुपस्थिति आदि के बारे में बातें करती हैं और कभी–कभी बीडीओ या जिला मजिस्ट्रेट को अवगत कराना तय करती हैं। अपने सहकारिता कार्यालयों में अपनी तरफ से अब वे लोगों, पशुधन, कृषि या नवजात शिशुओं के टीकाकरण और जिन्हें अगले चरण में टीका लगना है आदि के बारे में सभी तथ्यों तथा आकड़ों की एक पंजी रखती हैं।

निष्कर्ष

भारतीय सहकारिता आंदोलन 100 वर्ष पुराना है। पूरा देश इस आंदोलन का शताब्दी समारोह मनाने में व्यस्त है। यह विश्व के सबसे बड़े आंदोलनों में से एक है तथा हरित, सफेद, पीले एवं नीली क्रांतियां लाने में इसने वास्तविक योगदान किया है। यह संपूर्ण ग्रामीण भारत तथा 70 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण परिवारों की सेवा करता है। इस आंदोलन का योगदान ग्रामीण ऋण वितरण, उर्वरक का उत्पादन एवं वितरण, चीनी का उत्पादन, दूध का वितरण तथा अन्य कृषि निवेशों आदि में देखा जा सकता है। यद्यपि महिलाओं के स्वामित्व प्रबंध तथा नियंत्रण वाली सहकारिताओं का अनुपात इस आंदोलन में न्यून है। हमारे पास विभिन्न क्षेत्रों तथा देश के विभिन्न भागों में महिला सहकारिताओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की महिला डेयरी परियोजनाओं के अंतर्गत गठित महिला डेयरी सहकारी समितियां सहकारिता आंदोलन में महिलाओं के शामिल होने के सफल उदाहरण हैं। अन्य जगहों के साथ यह परियोजना राजस्थान में लागू की गई है।

डब्ल्यूडीपी के मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है कि इसने महिलाओं की आय और रोजगार बढ़ाने में मदद की अब उनके पास न सिर्फ पैसे हैं बल्कि अपनी आय पर कुछ सीमा तक नियंत्रण भी है, जिसका इस्तेमाल घरेलू खर्चों तथा व्यक्तिगत जरूरतों के लिए होता है। सामूहिक अंतरक्रियाओं तथा बाहरी दुनिया की जानकारी ने उनकी जागरूकता बढ़ाने में मदद की जो स्वच्छता, सफाई तथा अग्रिम सोच के रूप में परिलक्षित होता है। वे अब पुत्रों और पुत्रियों दोनों के साथ समान रूप से व्यवहार करती हैं। यद्यपि समान प्राथमिकताएं देने में अभी भी थोड़ा अधिक समय लगता है। कुछ महिलाओं को अध्यक्ष के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त है, वे अब पंचायत चुनाव भी लड़ रही हैं। महिलाएं डेयरी समिति में अपने गांवों में सचिवों, टेस्टरों तथा ए आइ कार्यकर्ताओं के रूप में भी कार्य कर रही हैं। वे अब परिवार नियोजन के उपायों तथा प्रोफिलैक्टिक टीकाओं को अपना रही हैं। यह सभी महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक अधिकारिता को बढ़ावा दे रही हैं। पूर्व महिलाओं के उद्धार हेतु पूर्व के सरकारी कार्यक्रमों से भिन्न 'स्टेप' कार्यक्रम ने नीति, वित्त तथा पर्यावरण निर्माण के रूप में समर्थन प्रदान किया। इससे आगे सेवाओं से मुक्त क्रिया विधि सरल बनायी गयी थी और सरकार द्वारा कोई प्रतिबंधक हस्तक्षेप नहीं किया गया था। सभी महिलाएं पर्यावरण के अधिक करीब हैं और समुदाय से अधिक संबंध रखती हैं, उन्होंने निर्णय लेने संबंधी प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लिया जिसने डब्ल्युडीसीएस की सफलता में योगदान दिया। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी द्वारा विकास प्रक्रिया अधिक न्यायसंगत हो जाती है।

उपर्युक्त तथ्य से यह स्पष्ट है कि परजीवी राजनीतिज्ञों से सहकारिताओं को मुक्त करने का समय आ गया है। इन संगठनों में उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता होनी चाहिए। उन्हें महिलाओं के हित का ध्यान रखने के लिए व्यावसायिक प्रबंधकों को नियुक्त करना चाहिए। उपर्युक्त अनुभव यह बताते हैं कि महिलाओं की सहकारिताएं सामाजिक आर्थिक गतिविधियों के सभी स्तरों पर विकास हेतु सक्रिय भागीदारी के केंद्र के रूप में कार्य कर सकती हैं। ❑

अनुवाद : प्रतिमा ऋषि

दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां आर्थिक-सामाजिक दायित्व

विनय एम आर और मन्जप्पा डी एच

भारत के कई सहकारी संगठनों में से एक है डेयरी सहकारिता, जो अपने में एक बेजोड़ प्रणाली है। 1951 में भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना शुरू होने के साथ डेयरी उद्योग का आधुनिकीकरण सरकार की प्राथमिकता बन गया। इसका मुख्य लक्ष्य देश की बढ़ती शहरी आबादी के लिए स्वास्थ्यकर दूध उपलब्ध कराना था। इस महत्वपूर्ण दुग्ध उत्पादन सहकारी क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सामाजिक आर्थिक विकास में उनकी भूमिका, फायदों का विश्लेषण अध्ययन का लक्ष्य बन गया है।

विश्व में घोर गरीबी की स्थितियों में रह रहे करीब तीन चौथाई निर्धन ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, और उनमें से अधिकतर की जीविका खेती पर निर्भर है। इसके साथ ही, आय और रोजगार के अवसर पैदा करने, स्वास्थ्य और पोषण, शिक्षा आदि सहित ग्रामीण लोगों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर कृषि का प्रमुख प्रभाव है। वास्तव में कृषि और ग्रामीण विकास आज वैश्विक चिंता का विषय बने हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ग्रामीण विकास और सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों को हासिल करने में कृषि और अनुषंगी गतिविधियों के महत्व को निरंतर स्वीकार करने लगा है। अधिकतर विकासशील देशों में सरकारी नीतियों के अंतर्गत मौजूदा ढांचे के साथ आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

गांवों का देश होने के नाते भारत के संदर्भ में ग्रामीण विकास देश के आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त है। इस तथ्य को भलीभांति समझते हुए भारत सरकार ने अनेक उपायों के जरिए ग्रामीण लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। साथ ही, सरकार के प्रयासों को मजबूती प्रदान करने में तृतीयक क्षेत्र जैसे गैर-सरकारी संगठनों का भी विशेष योगदान है। इस संदर्भ में ऐसे उपाय आवश्यक हैं, जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के आर्थिक कल्याण और जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में सीधे सहायता पहुंचाई जा सके।

विकसित और विकासशील, दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं में तृतीयक क्षेत्र की पहचान सामाजिक-आर्थिक विकास, खासकर ग्रामीण लोगों के विकास में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में की गयी है। यह ऐसा क्षेत्र है जो कृषि और अनुषंगी गतिविधियों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक विकास कार्यक्रमों को लागू करने और साथ में ग्रामीण विकास में कई तरह से बहुमूल्य योगदान कर रहा है। दूसरी ओर भारत में आर्थिक विकास के अंतर्गत समाजवादी पद्धति पर जोर दिए जाने को देखते हुए सहकारी गतिविधियों के लिए व्यापक संभावनाएं हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियां सक्रिय हैं, जिनमें कृषि ऋण सहकारी समिति, सहकारी खेती और सहकारी विपणन समिति आदि प्रमुख हैं। भारत में ऐसे संगठनों में से एक है डेयरी सहकारिता, जो अपने में बेजोड़ प्रणाली है। इस महत्वपूर्ण क्षेत्र, विशेषकर दुग्ध उत्पादन सहकारी संगठनों के विभिन्न पहलुओं, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सामाजिक आर्थिक विकास में उनकी भूमिका, और छोटे पैमाने पर इन समितियों के फायदों का विश्लेषण हमारे लिए विशेष रुचि और अध्ययन का लक्ष्य बन गया है।

भारत में डेयरी सहकारिता के विकास का इतिहास

भारत में डेयरी विकास के प्रारंभिक प्रयास ब्रिटिश शासनकाल में उस समय से खोजे जा सकते है, जब रक्षा विभाग ने औपनिवेशिक सेना के लिए दूध और घी की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सैन्य डेयरी फार्मों की स्थापना की थी। इस तरह का पहला फार्म 1913 में इलाहाबाद में स्थापित किया गया था। बाद में बंगलौर, ऊटकमंड और करनाल में इसी तरह के फार्म खोले गए। इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध में भी कुछ हद तक आधुनिक प्रसंस्करण सुविधाओं के साथ निजी डेयरियों को बढ़ावा दिया गया।

1951 में भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना शुरू होने के साथ डेयरी उद्योग का आधुनिकीकरण सरकार की प्राथमिकता बन गया। इसका मुख्य लक्ष्य देश की बढ़ती शहरी आबादी के लिए स्वास्थ्यकर दूध उपलब्ध कराना था। इस दिशा में सरकार के प्रारंभिक प्रयासों में बड़े शहरों के लिए "दुग्ध योजना" विभागों की स्थापना शामिल थी। दूध उत्पादन में तेजी लाने के लिए, सरकार ने **एकीकृत पशु विकास परियोजना (आईसीडीपी)** और **महत्वपूर्ण ग्राम योजना,** तथा अन्य ऐसे ही कार्यक्रम लागू किए।

डेयरी विकास के लिए आणंद मॉडल के प्रयासों को बढ़ावा देने के वास्ते तैयार किए गए प्रमुख कार्यक्रमों में **ऑपरेशन फ्लड** यानी **धवलक्रांति** शामिल है, जो करीब आधी सदी तक, समय पर खरा उतरा। धवलक्रांति का पहला चरण 1970 में विश्व खाद्य कार्यक्रम के साथ एक समझौते के बाद प्रारंभ हुआ। इसके अंतर्गत विश्व संगठन ने कार्यक्रम के लिए

अर्थ प्रबंध सहायता के रूप में 1,26,000 टन स्किम मिल्क पाउडर और 42,000 टन बटर ऑयल (घी) उपलब्ध कराया। कार्यक्रम के अंतर्गत ग्राम स्तर पर डेयरी सहकारी संस्थाओं का गठन, दूध खरीदने, उसके प्रसंस्करण, विपणन और उत्पादन वृद्धि सेवाओं के लिए यूनियन स्तर पर भौतिक और संस्थागत ढांचा तैयार करने; और भारत के प्रमुख महानगरीय केंद्रों में डेयरियों की स्थापना जैसे प्रयास शामिल किए गए। कार्यक्रम का लक्ष्य हासिल करने में धवलक्रांति के पहले चरण ने आधुनिक भारतीय उद्योग की आधारशिला रखी। यह एक ऐसा उद्योग था जिसे अंततः दूध और दूध–उत्पादों की देश की आवश्यकता पूरी करनी थी। 1970 के दशक के शुरू में धवल क्रांति के विस्तार की तुलना व्यापक हरितक्रांति से की गयी।

इस कार्यक्रम का दूसरा चरण 1981 और 1985 में लागू किया गया। पहले चरण के दौरान निर्मित आधारभूत सुविधाओं को ध्यान में रखकर इस चरण में भारतीय डेयरी एसोसिएशन की सहायता से कुछ राज्यों में जारी डेयरी विकास परियोजनाओं को एक समग्र कार्यक्रम में एकीकृत करने का प्रयास किया गया। विश्व बैंक ने करीब 15 करोड़ अमरीकी डॉलर उपलब्ध कराये और परियोजना के लिए शेष धन यूरोपीय आर्थिक समुदाय से वस्तु सहायता के रूप में प्राप्त हुआ।

धवलक्रांति के मौजूदा, तीसरे चरण का लक्ष्य सहकारी संस्थानों के लिए आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना है। कार्यक्रम के लिए विश्व बैंक ने 36 करोड़ अमरीकी डालर, यूरोपीय आर्थिक समुदाय ने वस्तु और नकद सहायता तथा राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने अपने आंतरिक संसाधनों से धन निवेश किया है। कार्यक्रम के दौरान डेयरी प्रसंस्करण और विपणन सुविधाओं का व्यापक विस्तार करने, दूध खरीदने के लिए आधारभूत ढांचे को बढ़ावा देने, उत्पादन बढ़ाने की गतिविधियों के दायरे का विस्तार करने और डेयरी संस्थानों में प्रबंधन का व्यवसायीकरण करने के उपाय किए जा रहे हैं।

डेयरी सहकारी संगठनों का ढांचा और लागत–लाभ

तृतीयक क्षेत्र के संगठनों को ऐसे लघु आर्थिक संगठनों के रूप में पारिभाषित किया गया है जो निजी व्यक्तियों और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच में स्थित हैं। आमतौर पर यह देखा जाता है कि आर्थिक सिद्धांत में क्लबों, बीमा और परस्पर वित्तीय संस्थाओं (फाइनेंशियल म्युच्वल्स) और विभिन्न प्रकार की सहकारी संस्थाओं जैसे गैर लाभ कमाने वाले संगठनों, जिन्हें उप समूह (सब–सेट्स) कहा जाता है, के साथ अलग तरह का व्यवहार किया जाता है। यहां संगठन शब्द का अर्थ है एक ऐसा निकाय जो उन एजेंटों से भिन्न है, जो अपनी गतिविधियों में लगे रहते हैं, और वह उनमें से किसी को अपने में शामिल नहीं करता। यहां संगठन का अर्थ है, एक ऐसी संस्था जिसमें अनेक लोग शामिल होते हैं और उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य अधिक स्पष्टता के साथ परिभाषित होते हैं।

सहकारी संगठन की परिभाषा करते हुए अल्बर्ट हिरस्मैन (1970) ने इसे 'न्यूनतम अभिरुचि अथवा ऊर्जा' कहा तो वहीं, लिबेंस्टेन ने इसे 'बाहरी दबाव', अथवा शाह (1996) ने इसे 'अभियान' (ड्राइव) की संज्ञा दी। यह अभियान सहकारी संस्थाओं की निर्माण और प्रतिनिर्माण की प्रवृत्ति में व्यक्त होता है और उसके लिए किसी बाहरी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती। ये संगठन अपनी गरिमा पर बाहरी हमला होने की स्थिति में प्रतिरोध, संघर्ष और परिवर्तन का सहारा लेते हैं और अपने सदस्यों की सेवा करने के लिए अपनी क्षमता में निरंतर सुधार करते हैं।

इस तरह डेयरी सहकारिता के सिद्धांत इस प्रकार हैं : 1) स्वैच्छिक और मुक्त सदस्यता 2) लोकतांत्रिक ढंग से सदस्यों का नियंत्रण 3) सदस्यों की आर्थिक भागीदारी 4) स्वायत्तता और स्वतंत्रता 5) शिक्षा, प्रशिक्षण और सूचना 6) सहकारियों के बीच सहयोग 7) समुदाय से सरोकार।

डेयरी सहकारी संस्थाएं "सार्वजनिक वस्तुएं" और "निजी वस्तुएं" दोनों ही तरह के उत्पाद बनाती हैं। फिर भी वे सदस्यों के लिए विशिष्ट और सामान्य दोनों तरह के लाभ के अवसर प्रदान करती हैं। विशिष्ट लाभ इस तरह से दिए जाते हैं कि उनका उपभोग सिर्फ सदस्य ही कर सकते हैं । जो सदस्य उन सुविधाओं का लाभ उठाते हैं वे उसकी उत्पादन लागत अदा करते हैं और सिर्फ वही उनका लाभ उठाते हैं। सामान्य लाभ के अंतर्गत ऐसी सुविधाएं शामिल हैं जिनका निर्माण होने के बाद सभी उत्पादकों द्वारा लाभ उठाया जा सकता है, भले ही वे सहकारी संस्था द्वारा अदा की गयी लागत में हिस्सेदारी करें या न करें। विशिष्ट लाभ के उदाहरण इस प्रकार हैं :

1. उत्पादित दूध के लिए भरोसेमंद बाजार

पहुंच 2. फील्ड सेवायें, बीमा और बाजार सूचना 3. उद्योग लागत, प्रतिफल और उद्योग में अपनाई जा रही पद्धतियों के बारे में जानकारी। 4. डेयरी प्रसंस्करण गतिविधियों से मूल्य– संवर्द्धन लाभ तक पहुंच। 5. कम लागत पर वैधानिक प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व और भागीदारी। 6. अति आदेश (ओवर–आर्डर) किस्तों पर समझौता।

सामान्य लाभ के उदाहरण इस प्रकार हैं:– 1) दूध का व्यवसाय करने वालों के बीच दूध की संतुलित आपूर्ति 2) परिचालन संतुलन संयंत्र 3) लक्षित स्थानों पर दूध की ढुलाई 4) कमी वाले क्षेत्रों में मौसमी आधार पर तरल दूध की आपूर्ति 5) बाजार में नीतियों और व्यापार पद्धतियों को इस तरह से प्रभावित करना कि उत्पादकों को लाभ पहुंचे। सभी उत्पादकों के लाभ के लिए कारगर कानून की व्यवस्था के लिए नेतृत्व प्रदान करना। विशेष लाभ सहकारी संस्था के लिए कोई समस्या पैदा नहीं करते। दूसरी ओर सामान्य लाभ निम्नांकित समस्यायें पैदा करते हैं : 1. "फ्री राइडर" यानी मुक्त रूप से व्यापार की समस्या सहकारी संस्था को नुकसान पहुंचा सकती है। 2. सामान्य लाभ या सुविधाओं का अभाव हो सकता है। 3. उत्पादकों को इन वस्तुओं को समझने की आवश्यकता है।

आणंद मॉडल

हाल के दशकों में आणंद पद्धति या मॉडल ग्रामीण विकास के उन गिने–चुने सिद्धांतों में से एक है, जिस पर व्यापक विचार विमर्श हुआ है। आणंद मॉडल का उल्लेख कैरा जिला सहकारी दुग्ध उत्पादन संघ लिमिटेड (जो अमूल ब्रांड के रूप में लोकप्रिय है) की विशेषताओं के लिए किया जाता है, जो धवल क्रांति का आधार बन गया था और जो भारत के राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड द्वारा परिकल्पित और कार्यान्वित विश्व का सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम है। कैरा संघ ने अपने एक प्रकाशन में आणंद मॉडल को तीन स्तरीय बताया है, यानी शीर्ष रूप में एकीकृत, लोकतांत्रिक दृष्टि से शासित और व्यावसायिक दृष्टि से प्रबंधित सहकारी ढांचा। इस मॉडल के परिचालन की कुछ अन्य विशेषताओं में दूध के लिए दैनिक भुगतान, गुणवत्ता परीक्षण, संघ द्वारा अपने सदस्यों को उत्पादन बढ़ाने में सहायक अनेक उपकरणों की आपूर्ति, जैसे संतुलित पशु आहार, पशु–चिकित्सा देखभाल और कृत्रिम गर्भाधान सुविधाएं मुहैया कराना, आदि शामिल हैं। उदाहरण के लिए मुलानी (1979) ने आणंद पद्धति के 14 महत्वपूर्ण तत्वों की पहचान की; ये हैं: एकल वस्तु दृष्टिकोण; सहकारी संस्था पर सदस्यों का स्वामित्व और नियंत्रण; तीन स्तरीय ढांचा; लोकतांत्रिक नियंत्रण और निर्णय लेने की विकेंद्रीकृत प्रणाली; व्यावसायिक प्रबंधकों और प्रौद्योगिकीविदों का इस्तेमाल; निर्वाचित बोर्डों के जरिए व्यावसायियों की सदस्यों के प्रति जवाबदेही; उचित दर पर सदस्यों को तकनीकी उपकरणों की आपूर्ति; दूध उत्पादन, खरीददारी, प्रसंस्करण और विपणन में समन्वय; और ग्राम सहकारी संस्थाओं तथा जिला संघों की वार्षिक लेखापरीक्षा; गुणवत्ता परीक्षण के आधार पर दूध के दामों का दैनिक अथवा साप्ताहिक आधार पर भुगतान; गांवों की सामाजिक पूंजी में निवेश; सहकारी शिक्षा कार्यक्रम; उत्पादक संघों को दूध के दाम निर्धारित करने और स्वयं की विपणन प्रणाली तैयार करने की स्वायत्तता; और आणंद मॉडल उप नियमों को अपनाना। हालांकि आणंद पद्धति किसी सहकारिता प्रणाली के ढांचे और विशेषताओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती, किंतु इसने इतने बड़े पैमाने पर आर्थिक उद्यम के निर्माण और उसे स्थिरता प्रदान करने की पद्धति विकसित की है, जो एक ग्रामीण आबादी वाले क्षेत्र का सामाजिक आर्थिक रूपातंरण करने में सक्षम है। आणंद पद्धति सरल–सुसंगत–स्थायी–राज्य प्रणाली का एक विशिष्ट उदाहरण है; इसकी बुनियादी शक्ति यह है कि इसका निर्माण ग्रामीण उत्पादकों ने अपने डेयरी उद्यम से आर्थिक प्रतिफल बढ़ाने की गहन इच्छा से किया है। जहां तक आणंद मॉडल से सामाजिक लाभ पहुंचने का प्रश्न है, वे सभी अनुषंगी ही कहे जा सकते हैं।

सकल घरेलू उत्पाद में कृषि और पशु क्षेत्र का योगदान

(वर्तमान मूल्यों के आधार पर अरब रुपये में)

वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	सकल घरेलू उत्पाद (कृषि)		सकल घरेलू उत्पाद (पशु क्षेत्र	
	रुपए	रुपए	प्रतिशत हिस्सेदारी	रुपए	प्रतिशत हिस्सेदारी
1980–81	1,224	425	34	59	4
1985–86	2,338	700	29	139	5
1986–87	2,600	744	28	156	6
1987–88	2,4900	835	28	183	6
1988–89	3,527	1,041	29	217	6
1989–90	4,087	1,154	28	275	6
1990–91	4,778	1,352	28	308	6
1991–92	5,528	1,593	28	375	6
1992–93	6,307	1,779	28	432	6
1993–94	7,991	2,231	27	501	6
1994–95	9,434	2,612	27	571	6
1995–96	11,032	2,877	26	646	5
1996–97	12,853	3,475	27	757	5
1997–99	14,267	3,596	25	841	5

स्रोत: केंद्रीय सांख्यिकी संगठन, सांख्यिकी विभाग, भारत सरकार, 1999–2000

पशु क्षेत्र के उत्पादन का मूल्य

(वर्तमान मूल्यों के आधार पर अरब रुपये में)

मद/वर्ष	1990–91	1993–94	1994–95	1995–96	1996–97	1997–98
दूध समूह	275.08	434.07	498.99	570.4	642.48	719.58

स्रोत : केंद्रीय सांख्यिकी संगठन, सांख्यिकी विभाग, भारत सरकार, 1999–2000

आणंद मॉडल के डेयरी उद्योग का आधार अमूल है। इस मॉडल में बुनियादी इकाई ग्राम स्तर पर गठित दूध उत्पादक सहकारी समिति हैं। यह सहकारी समितियां दूध उत्पादकों के संगठन हैं, जो अपने दूध को सामूहिक रूप से बाजार में बेचने के इच्छुक हैं। सदस्यता उन सभी के लिए खुली है, जिन्हें सहकारी सेवाओं की आवश्यकता हो और जो सदस्य बनने के दायित्व स्वीकार करने के इच्छुक हों। फैसले प्रत्येक सदस्य के वोट के आधार पर किए जाते हैं। पूंजी को कोई विशेषाधिकर नहीं दिया जाता और आर्थिक प्रतिफल, लाभ अथवा हानि, सदस्यों के बीच उनके संरक्षण के अनुपात में बांट दिए जाते हैं। प्रत्येक सहकारी समिति से उम्मीद की जाती है कि वह अपने सदस्यों, चुने हुए नेताओं और कर्मचारियों की सतत शिक्षा की व्यवस्था करे। किसी जिले में सभी दूध सहकारी समितियां मिलकर संघ बनाती हैं और संघ की अपनी प्रसंस्करण सुविधायें होती हैं। राज्य में सभी संघ आमतौर पर एक परिसंघ के सदस्य होते हैं, जिनका प्रमुख दायित्व राज्य से बाहर दूध और दूध उत्पादों का विपणन करना है। एक चतुर्थ स्तर भी है, भारत का राष्ट्रीय सहकारी डेयरी परिसंघ, जो दूध उत्पादकों के हितों की सुरक्षा के लिए नीतियां और कार्यक्रम बनाने वाला राष्ट्रीय स्तर का निकाय है। आणंद संगठनात्मक ढांचे का प्रत्येक स्तर एक बेजोड़ कार्य करता है; जैसे सहकारी समिति द्वारा दूध की खरीद और सेवायें; संघ द्वारा प्रसंस्करण, राज्य परिसंघ द्वारा विपणन; और राष्ट्रीय परिसंघ द्वारा सहकारी डेयरी उद्योग के हितों को बढ़ावा देना।

भारत में डेयरी सहकारिता की उपलब्धियां

देश में संसाधित तरल दूध के विपणन में डेयरी सहकारी संगठनों की प्रमुख हिस्सेदारी है। 285 जिलों में परिचालित 170 दूध उत्पादक सहकारी संघों द्वारा दूध का प्रसंस्करण और विपणन किया जाता है। ये दूध उत्पादक संघ राज्य स्तर के 15 सहकारी दूध विपणन परिसंघों के सदस्य हैं और इनमें ग्राम स्तर की एक लाख से अधिक समितियां शामिल है, जिनके करीब एक करोड़ दस लाख किसान सदस्य हैं। इसी प्रतिबद्धता का नतीजा दूध उत्पादन, दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता, विदेशी मुद्रा बचत और रोजगार के अवसर पैदा करने के साथ किसानों की आय में बढ़ोतरी जैसी उपलब्धियों के रूप में सामने आया है। साथ ही भारत के दूध उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1968 में देश का दूध उत्पादन मात्र 2.12 करोड़ टन था जो 2001–02 में बढ़कर 8.46 करोड़ टन पर पहुंच गया। दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता प्रतिदिन 226 ग्राम हो गयी है, जो 1968–69 में मात्र 112 ग्राम थी। भारत के दूध उत्पादन में चार गुणा बढ़ोतरी उसकी जनसंख्या में 2 प्रतिशत वृद्धि को पार कर गयी है; दूध की उपलब्धता में वार्षिक बढ़ोतरी करीब 2 प्रतिशत रही है। भारत के दूध उत्पादन का वार्षिक मूल्य करीब 85 करोड़ रुपए है। डेयरी सहकारी समितियों में करीब 1.1 करोड़ किसान परिवारों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। 95 प्रतिशत डेयरी उपकरण भारत में बनाए जा रहे हैं, जिससे बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत होती है और रोजगार के अवसर पैदा होते हैं। दूध की आपूर्ति 2,200 किलोमीटर की दूरी तक कमी वाले इलाकों में की जाती है। आपूर्ति के लिए रेल और सड़क मार्ग से दूध ले जाने वाले आधुनिक टैंकर इस्तेमाल किए जाते हैं। पिछले दशक के दौरान प्रत्येक 1,000 शहरी उपभोक्ताओं के लिए दूध की आपूर्ति 17.5 लीटर से बढ़कर 47.3 लीटर हो गयी। सहकारी दूध का दैनिक औसत विपणन 134.23 लाख लीटर हो गया है, जिसमें पिछले पांच वर्षों में करीब 4 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से 1971 तक डेयरी उत्पादन में हर वर्ष करीब 0.7 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई थी, लेकिन उसके बाद से हर वर्ष 4.7 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हो रही है। निम्नांकित सारणी से पता चलता है कि देश में पशु क्षेत्र कितना महत्वपूर्ण है और उत्पादन में उसका कितना योगदान है।

संभवतः भारत में दूध सहकारिता का सबसे रोचक और महत्वपूर्ण प्रभाव उन सामाजिक परिवर्तनों के रूप में सामने आया है जो इस आंदोलन की देन हैं। चूंकि ये सहकारी संस्थायें लोकतांत्रिक प्रणाली से शासित हैं, इसलिए वे लोगों में जीवन की समस्याओं के प्रति न केवल अधिक लोकतांत्रिक दृष्टिकोण पैदा करती हैं, बल्कि समांज में उन्हें अधिकारों के प्रति जागरूक भी बनाती हैं। दूध उत्पादक–जो ग्रामीण आबादी के सभी वर्गों से संबद्ध होते हैं–हर रोज दूध संग्रह केंद्रों पर एकत्र होते हैं, जिससे उनमें विचार विनिमय और सद्भाव के एक नये स्तर को बढ़ावा मिलता है। इसके अतिरिक्त संघ द्वारा दी जाने वाली नयी प्रौद्योगिकियों की जानकारी से ग्रामवासियों को शिक्षित करने में मदद मिलती है। इनसे महिलाओं सहित कृषक समुदाय के लिए रोजगार के अवसर पैदा होते है, जिनसे उनकी आय में वृद्धि होती है। डेयरी उद्योग ने प्रत्येक परिवार के कम से कम एक व्यक्ति के लिए रोजगार के अवसर पैदा किए हैं। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण ये है कि प्रत्येक निर्धन महिला मजदूरी के लिए बाहर जाने की बजाय घर में रहकर एक गाय की देखभाल करना उचित समझती है। इससे बच्चे (आम तौर पर लड़कियों) को घर में भाई–बहन की देखभाल करने से निजात मिलती है और उनके स्कूल जाने का रास्ता साफ हो जाता है। बच्चों के पोषण के स्तर में सुधार होता है। देखा गया है कि कम से कम एक लीटर दूध हर परिवार अपने उपभोग के लिए रखता है।

तुमकूर जिला दूध उत्पादक सहकारी समिति का उदाहरण

भारत में ग्रामीण लोगों की सामाजिक–आर्थिक दशा सुधारने में एक लघु आर्थिक इकाई के रूप में जिला दूध सहकारी समितियों की महत्वपूर्ण भूमिका है। कर्नाटक में तुमकूर जिला राज्य के प्रमुख दूध उत्पादक जिलों में से एक है। यह जिला 10 तालुकों में विभाजित है और इसका कुल क्षेत्रफल 10598 वर्ग किलोमीटर है। जिले में 50 होब्लियां (hoblis), 325 ग्राम पंचायतें, 2,694 गांव हैं। जिले की कुल आबादी 23.01 लाख है। जिले में करीब 90 प्रतिशत लोगों का व्यवसाय खेती है।

कर्नाटक मिल्क फैडरेशन ने मार्च 1987 में तुमकूर में डेयरी उद्योग शुरू किया था। जिले में 442 जिला सहकारी समितियां हैं, जिनमें करीब सभी गांवों की सदस्यता है। नीचे दी गयी सारणी में 1993–94 से 1999–2000 तक तुमकर जिले में प्रतिदिन औसत दूध उत्पादन और दूध की बिक्री का ब्यौरा दिया गया है।

तुमकूर जिले का कुल विशुद्ध घरेलू उत्पाद

370.55 करोड़ रुपये मूल्य का है, जिसमें कृषि क्षेत्र का योगदान करीब 42 प्रतिशत है। कृषि क्षेत्र से कुल वार्षिक आय 159 करोड़ रुपये है, जिसमें दूध उत्पादों का योगदान करीब 66 करोड़ रुपये का है। कृषि से होने वाली आय में करीब 41 प्रतिशत योगदान डेयरी उद्योग का है। जिले में अधिसंख्य किसानों के पास एक हेक्टेयर से कम भूमि है। जिले में 1,39,220 परिवार डेयरी उद्योग से जुड़े हैं, जो कुल किसानों का 33 प्रतिशत हैं।

डेयरी सहकारिता में उदारीकरण

उदारीकरण और वैश्वीकरण के युग में डेयरी उद्योग में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। भारत ने घरेलू बाजार को आयात के लिए खोल दिया है और निजी संगठनों को आयात की अनुमति दे दी है। अब हम अलग–थलग बाजार नहीं हैं। कोई भी दूध उत्पादक देश अब भारत में बाजार तलाश कर सकता है। इसी तरह हमारे उत्पादक भी अन्य देशों में दूध और अन्य दूध–उत्पाद बेच सकते हैं। किंतु, भारतीय निर्यातकों को शुल्क और गैर–शुल्क दोनों ही तरह की रुकावटों का सामना करना पड़ेगा। सब्सिडीकृत उत्पादन और व्यापार के कारण अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों पर दबाव रहेगा और, परिणामस्वरूप हमारे देश में घरेलू बाजार में प्रचलित मूल्यों से कम मूल्य पर दूध आयात में सुविधा होगी। इस तरह दाम गिरने से हमारे दूध उत्पादकों को आय में कमी के संकट का सामना करना पड़

तुमकूर जिले में दूध उत्पादन और बिक्री

वर्ष	औसत दूध उत्पादन (लीटर/प्रतिदिन)	औसत दूध बिक्री (लीटर/प्रतिदिन)
1993–94	75283	51836
1994–95	94084	54963
1995–96	83423	51686
1996–97	56290	48288
1997–98	48733	59333
1998–99	64195	64100
1999–00	98489	70000

स्रोत : तुमकूर जिला डेयरी सहकारी समिति

सकता है। दूसरी ओर निजी क्षेत्र में दूध संयंत्रों की संख्या बढ़ गयी है, जिससे सहकारी संगठनों को कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। ब्रिगेगार्ड और जेंबर्ग (1994) ने कहा था: "अगर सहकारी संगठन इस प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करेंगे तो उनके व्यापार का आकार घटता जाएगा, उनके परिचालन लाभ में कमी आएगी, उनकी लाभकारी और प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य अदा करने की क्षमता कम होगी और वे अपने सदस्यों को उपयोगी सेवायें नहीं दे पायेंगे।" इसलिए हमे निश्चय ही ध्यानपूर्वक अन्य डेयरी राष्ट्रों के समान नीतियां तय करनी होंगी।

दूसरी ओर लगता है कि डेयरी सहकारी संस्थाओं को नयी आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण स्थान हासिल होगा। उभरते उदारीकृत माहौल में सहकारी संस्थाओं को सहयोग के अधिक अवसर मिलेंगे, जिनसे वे नीतिगत भागीदारी, संयुक्त उद्यम, अनुबंधात्मक आपूर्ति या विपणन प्रबंध, जैसे संबंध कंपनियों सहित अन्य सहकारी संस्थाओं और/या संगठनों के साथ कायम कर सकेंगे।

अगर हमें इस माहौल में सफल होना है, तो विपणन की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। हमारे डेयरी उद्योग का अस्तित्व दूध और दूध से बनी वस्तुओं की हमारी कारगर विपणन क्षमता पर निर्भर करेगा।

अभी तक तरल दूध के विपणन में हमें किसी चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा है। किंतु चुनौती अब सामने हैं और भविष्य में यह बढ़ेगी। हमें दूध के वितरण की आदत पड़ गयी है, जो बदलनी होगी और अब हमें निश्चय ही उचित विपणन प्रयासों पर ध्यान देना होगा। नयी प्रक्रियायें, तकनीक और प्रौद्योगिकियां विकसित करनी होंगी, ताकि लागत में पर्याप्त कमी सुनिश्चित की जा सके। संयंत्र प्रबंधकों और सार्वजनिक नीति निर्माताओं को दूध की मांग और आपूर्ति तथा दूध उत्पादक उद्योग, दोनों ही क्षेत्रों में उच्च निष्पादन क्षमता हासिल करने के प्रयास करने चाहिए।

ढांचागत समायोजन के दबावों के बावजूद सरकार को भी सामाजिक समानता के प्रयोजन के लिए ग्रामीण सहकारी संस्थाओं को सहायता देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। दिलचस्प बात है कि भारत विश्व में प्रमुख दूध उत्पादक देश है, फिर भी विश्व व्यापार में उसकी हिस्सेदारी मात्र .03 प्रतिशत है। अगर हम अधिक मूलभूत परिवर्तन लाकर दूध की गुणवत्ता में सुधार नहीं कर पाये तो अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रभावकारी उपस्थिति दर्ज करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। हमें पशु प्रबंध के आधुनिक तरीके भी अपनाने होंगे, जैसे आधुनिक पशु शेड, पशु कूलिंग (प्रशीतन), आदि।

निष्कर्ष

इस तरह केवल सहकारी संस्थाओं के माध्यम से ही आम आदमी निर्णायक तरीके से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को प्रभावित कर सकता है। वास्तव में, भारत में सहकारिता को भारतीय समाजवाद, खासकर ग्रामीण समाज के संदर्भ में समाजवाद के एक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। " सहकारिता के माध्यम से हम उच्चस्तरीय और खुशहाल जीवन स्तर प्रभावकारी ढंग से हासिल कर सकते हैं। सहकारिता को बेहतर व्यापार, बेहतर खेती और बेहतर जीवन शैली के रूप में स्वीकार किया गया है"।

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यही है कि डेयरी सहकारी समितियां अपने में बेजोड़ हैं और उन्होंने ग्रामीण भारत में किसानों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है। डेयरी सहकारी समितियों की ग्रामीण भारत में कृषि, रोजगार, आय, स्वास्थ्य और स्वच्छता की स्थितियों, पोषण, और शिक्षा के विकास में बहुआयामी भूमिका है। इस क्षेत्र में व्यक्ति, समूह और सरकार ने उपयुक्त भूमिका अदा की है। इस नेटवर्क प्रणाली की ग्रामीण विकास में प्रशंसनीय भूमिका रही है, जो विभिन्न स्तरों के साथ जुड़ी हुई है। इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है सहकारिता आंदोलन में व्यक्तियों की भूमिका भली–भांति परिभाषित है। अध्ययन से पता चलता है कि डेयरी सहकारी समिति और सरकार दोनों ही ग्रामीण लोगों के विकास और विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के लिए अनिवार्य हैं, इसलिए भारत जैसे विकासशील देशों में ग्रामीण विकास के लिए डेयरी सहकारिता अधिक उपयुक्त है। इससे गरीबी उन्मूलन और शासन की वास्तविक लोकतांत्रिक प्रणाली स्थापित करने में काफी हद तक मदद मिलेगी। ❑

अनुवाद : मंजुला भारद्वाज

लैंगिक मुद्दे और सहकारिताएं

एच.एस.के. टांगीराला

व्यापारिक उद्यमों, वाणिज्यिक संगठनों और दूसरी तरह की संस्थाओं ने महिलाओं को वेतन, पद आदि के मामले में सदा हाशिए पर रखा है। केवल सहकारिताओं ने महिलाओं के महत्व को समझा और उन्हें विशेषकर ग्रामीण इलाकों में उनकी सामाजिक–आर्थिक बेहतरी के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराए। सहकारिताओं ने उन्हें अपनी गतिविधियों के जरिए अपनी क्षमताएं और उपयोगिता दर्शाने के लिए प्लेटफार्म उपलब्ध कराया है।

हम पुरुष और नारी में अंतर देख सकते हैं। दो अंतर जो तुरंत देखे जा सकते हैं उनमें से एक जीववैज्ञानिक है और दूसरा सामाजिक है। जीववैज्ञानिक अंतर तो लिंग संबंधी है, जो सार्वभौम और अपरिवर्तनीय है। लिंग का संदर्भ उस सामाजिक अंतर से है जिसे सीखा जा सकता है, एक निश्चित समयावधि में परिवर्तनीय है, और जिनकी संस्कृतियों के भीतर व उनके बीच वृहत् विविधताएं हैं। सामाजिक और संगठनात्मक ढांचे में महिलाओं और पुरुषों के बीच के अंतर उनकी भूमिकाओं, जिम्मेदारियों, अवसरों, आदि के बंटवारे के संदर्भ में कई हैं, यहां तक कि उनकी समस्याओं में भी! इस अवसर का लाभ उठाते हुए अब तक पुरुषों ने जिम्मेदारियों, सामाजिक स्थिति, ताकत, आदि के संदर्भ में महिलाओं पर अत्याचार किए और प्रभुत्व जमाया है।

इसी प्रकार से व्यापारिक उद्यमों, वाणिज्यिक संगठनों और दूसरी तरह की संस्थाओं ने इसी तर्क के सहारे महिलाओं को वेतन, पद, आदि के मामले में सदा हाशिए पर रखा है। केवल 'सहकारिताओं' ने महिलाओं के महत्व को समझा और उन्हें विशेषकर ग्रामीण इलाकों में उनकी सामाजिक–आर्थिक बेहतरी के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराए, सर्वश्रेष्ठ उदाहरण डेयरी, चाय, मत्स्य विपणन, छोटी बचत, औद्योगिक सहकारिताओं, महिला सहकारी बैंकों, स्व–सहायता समूहों, आदि के हैं। सहकारिताओं ने उन्हें अपनी गतिविधियों के जरिए अपनी क्षमताएं और उपयुक्तता दर्शाने के लिए प्लेटफार्म उपलब्ध कराया है। यह कहना तो सही नहीं होगा कि केवल भारत में ही नहीं दूसरे देशों में भी सहकारिताएं इस मोर्चे पर पूरी तरह सफल रही हैं। इन कारकों को दिमाग में रखते हुए इस दस्तावेज में लैंगिक भेद के क्षेत्रों, सहकारिताओं के जरिए उपलब्ध कराए गए समान अधिकारों से संबंधित

मुद्दों पर प्रकाश डालने का लक्ष्य रखा गया है, साथ ही लैंगिक भेदभाव को मिटाने के तरीकों पर भी विचार किया गया है।

सहकारिताओं के संदर्भ में, लैंगिक मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया जाता था। किन्तु पुरुषों और महिलाओं दोनों से संबंध रखने वाले मुद्दों को संतुलित करने की भी आवश्यकता है। अपने सामाजिक–आर्थिक परिवेश में पुरुषों और महिलाओं की वर्तमान भूमिका और स्थान विश्लेषण करना भी महत्वपूर्ण है, उनकी विभिन्न आवश्यकताओं की पहचान करने और उन्हें पूरा करने के लिए उनकी ताकत, क्षमता, आदि का विकास करना आवश्यक है, कुल मिलाकर यह सहकारिता के विकास के लाभों में समान वितरण को सुनिश्चित करेगा।

उदारीकरण के चलते, आज कई तरह की सहकारिताएं प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, "राज्य द्वारा प्रायोजित सहकारिताओं" और "स्व–सहायता समूहों" का साथ–साथ चलना, महिला सहकारिताओं को समर्थन और बल प्रदान करने की दृष्टि से सरकार ने पंजीकरण और अन्य प्रक्रियाओं को सरल बनाया है। इससे कई अन्य प्रकार की सहकारिताओं का अभ्युदय हुआ, जैसे आंध्र प्रदेश और देश के कई अन्य राज्यों में आपसी सहायता सहकारिताएं। यह परिदृश्य केवल भारत में ही नहीं बल्कि बंग्लादेश और अफ्रीकी देशों में भी विद्यमान है। यह देश महिला उद्यमियों को इकट्ठा होकर स्वयं की सहकारिताएं गठित करने या सहकारिता की पद्धति पर सामूहिक उद्यम लगाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं, ताकि वे सहकारी सेवाओं, कम दरों पर वस्तुओं की उपलब्धता, बाजार तक आसान पहुंच, आदि का लाभ पा सकें।

लैंगिक भेद के क्षेत्र

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मूल आवश्यकताओं के क्षेत्र में लैंगिक आधार पर सीधा भेदभाव एकपक्षीय, स्वभावगत और एक सामान्य गतिविधि है। ऐसा उन समाजों में होता है जहां कन्याओं को जानबूझकर लड़कों के मुकाबले कम शिक्षा, अपर्याप्त भोजन और कम स्वास्थ्य रक्षा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं।

काम के बोझ के आधार पर, महिलाएं पुरुषों के मुकाबले ज्यादा घंटों तक काम करती हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ–साथ वे आय सृजन की गतिविधियों में भी हाथ बंटाती हैं, जैसे बीड़ी बनाना, अगरबत्ती बनाना, अचार डालना, पापड़ बनना, खिलौने बनाना, घरों में काम आने वाली वस्तुएं बनाना और खेतों, चाय के बागानों, निर्माण स्थलों, आदि में काम करना, जो बैठकों और सामुदायिक गतिविधियों के अतिरिक्त होते हैं।

आर्थिक मोर्चे पर, पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानताएं अधिक हैं, इन दोनों को मिलने वाले वेतन में भारी अंतर है, महिलाओं को उनके काम के लिए कम पैसे मिलते हैं। इस प्रकार के भेदभाव का कोई रिकार्ड नहीं होता तथा यह कम मूल्य का और असंरक्षित होता है। उनकी मोलभाव करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। महिलाओं के प्रति ऐसे बर्ताव को दूर करने के लिए महिला सहकारिताओं का गठन किया जाता है।

समान अवसरों से संबंधित मुद्दे सदस्यों की भागीदारी

सरकारी नीतियों के अलावा, सहकारिताएं महिलाओं को समाज की आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए कई अवसर उपलब्ध कराती हैं। इस दिशा में नेशनल डेयरी डेवलपमेंट बोर्ड (एनडीडीबी) के प्रयास अवश्य ही प्रशंसनीय हैं, कोऑपरेटिव डेवलपमेंट फाउंडेशन (सीडीएफ) और महिला बचत सहकारिताएं भी पीछे नहीं। आश्चर्यजनक रूप से, एक अध्ययन में पाया गया कि नेशनल डेयरी डेवलपमेंट बोर्ड और सरकार के प्रयासों के बावजूद यह सकारात्मक छवि गावों की सच्चाई से मेल नहीं खाती। राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की सदस्यता केवल 16 प्रतिशत है, हालांकि "दरअसल देश के सभी भागों में महिलाएं प्राथमिक डेयरी उत्पादक और डेयरी फार्म की अधिकतर गतिविधियों के लिए जिम्मेदार हैं" यह दर्शाता है कि महिलाओं के लिए अधिक अवसर सृजित करने के लिए भारत में सहकारितों और अन्य समर्थनकारी संगठनों के सभी अंगों द्वारा अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है।

क्षमता निर्माण

यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसे सर्वोच्च प्राथमिकता दिए जाने की आवश्यकता है, जो समान अवसरों के मामले में एक बड़ी बाधा है। पुरुषों और महिलाओं के बीच शिक्षा का बहुत बड़ा अंतर है जिसकी वजह से इसके परिणामस्वरूप होने वाला व्यावसायिक पृथक्कीकरण हो रहा है। महिलाओं को अक्षम और संकट की घड़ी में जोखिमपूर्ण निर्णय लेने में अनुपयुक्त माना जाता है।

संसाधनों तक पहुंच

भारत में अधिकाश महिलाओं के पास स्वतंत्र संपत्ति नहीं जिसे वे अपनी इच्छा के अनुरूप निवेश कर सकें, यानी अपने पति की पूरी इच्छा के बिना, संसाधनों तक पहुंच में इस प्रकार की कमी पारंपरिक तरीकों और रिवाज़ों के कारण एक बड़ी बाधा बनी हुई है। साथ ही, यह उनकी वर्तमान सहकारिताओं के भागीदारी और नए उद्यमों के गठन में अपनी मर्जी से निवेश करने में, विपरीत प्रभाव डालती हैं। यह आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी और उनके उद्यमशील गुणों का ह्रास करके उन्हें सहकारिताओं के लाभ पाने से रोकती है।

शक्तियों के बंटवारे में समान अवसर

पुरुष शक्ति के अधिक भूखे रहते हैं। इसे महिलाओं में बांटने में वे उनसे भेदभाव बरतते हैं। महिलाओं के साथ निचले स्तर पर काम करने में वे अपनी हेठी मानते हैं और छोटेपन के अहसास के शिकार होते हैं। संभावित महिला नेत्रियों की पहचान करना, और उन्हें संगठन के भीतर दृष्टिगोचरता व अनुभव प्राप्त करने में मदद देना, विभिन्न समितियों प्रतिनिधि सभाओं और उच्चतर स्तर के सरकारी ढांचों में महिला सदस्यों को चुनाव के लिए खड़े होने और बैठकों में सक्रिय रूप से भाग लेने में समर्थन देना। सहकारिताओं में महिलाओं को आगे बढाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। किसी पुरुष प्रधान सहकारी समिति में हम शायद ही कभी किसी महिला प्रधान को देखते हैं। हालांकि सरकारी संगठन और सहकारिताएं लैंगिक दृष्टि से तटस्थ हैं, किंतु महिलाओं के समक्ष विशिष्ट लैंगिक बाधाओं पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

महिलाओं को हाशिये पर रखना

निर्धनता, कमतर स्थिति, भागीदारी में कमी और मुख्यधारा से न जुड़ना महिलाओं को हाशिये पर लाने के जिम्मेदार कारक हैं। महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए पहला कदम स्वाभाव में परिवर्तन लाना और महिलाओं की भूमिका में बदलाव

के प्रति झिझक को दूर करना हो सकता है, समाज को सतत् आर्थिक विकास में महिलाओं के योगदान उनकी पुनर्उत्पादक भूमिका को मान्यता देना एवं उसका आदर करना चाहिए, सहकारिताएं उन्हें वो आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक बल प्रदान कर सकती हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, स्वरोजगारयुक्त महिलाओं की एसोसिएशन (एसईडब्ल्यूए)।

सहकारितों में लैंगिक भेदभाव मिटाने के उपाय

यह एक जाना हुआ तथ्य है कि अधिकांश सहकारिताएं पुरुष–प्रधान हैं और महिलाओं को सदस्यता, व्यापार में भागीदारी का निर्णय लेने वाली संस्थाओं जैसे प्रबन्धन समिति, कार्यकारी समिति, बोर्ड, आदि में कम महत्व दिया जा रहा था, अतः लैंगिक भेदभाव दूर करने के लिए महिलाओं और सहकारिताओं के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :

- व्यक्तिगत तौर पर अलग–थलग काम करने, निचले स्तर पर संचालन करने या कम या सीमांत आय प्राप्त करने के स्थान पर महिलाओं को सहकारिता के रूप में एक सामूहिक इकाई बन जाना चाहिए ताकि वे सदस्य उद्यमी बन सकें और समर्थन तथा आपसी प्रोत्साहन पा सकें जो उद्यमियों का एक समूह एक–दूसरे को दे सकता है। साथ ही, यह समूह व्यावहारिक लैंगिक रणनीतिक और मूल आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए उनके आत्मविश्वास को बनाए रखने और उसे बल प्रदान करने में सहायक हो सकता है। व्यावहारिक लैंगिक आवश्यकताएं वे हैं जिनका संबंध समाज में उनकी भूमिका के संदर्भ में पुरुषों और महिलाओं की तात्कालिक आवश्यकताओं से है। दूसरी तरह रणनीतिक लैंगिक आवश्यकताओं का संबंध वर्तमान लैंगिक भूमिकाओं में बदलाव और लिंग संबंधी मुद्दों के निपटारे से हैं। लैंगिक आवश्यकताओं का निपटारा ऋण, भूमि और शिक्षा व प्रशिक्षण तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाकर, सहकारिताओं में महिलाओं की भागीदारी और निर्णय लेने के स्तरों तक उनकी पहुंच में सुधार लाकर तथा रोजगार के अवसरों, पदोन्नति, वेतन आदि के संबंध में महिलाओं को समान व्यवहार दिलाना सुनिश्चित करके किया जा सकता है।
- विशुद्ध सहकारिताएं समानता और दूसरों के लिए चिंता, सामाजिक जिम्मेदारी, घनिष्ठता, आदि जैसे मौलिक मूल्यों पर आधारित होती हैं। इसलिए महिलाएं आपस में मिलकर मोलभाव की शक्ति और सामाजिक न्याय प्राप्त कर सकती हैं। यानी, अपने आपसी कारणों की पूर्ति के लिए महिलाओं को सहकारिताओं में समाहित हो जाना चाहिए।
- सहकारिताओं में महिलाओं को दक्षता, क्षमता निर्माण, स्वास्थ्य रक्षा, पोषण, प्रबन्धकीय सक्षमता, विपणन दक्षता, नेतृत्व विकास, समस्याओं के सुलझाव की क्षमता, आदि क्षेत्रों में प्रशिक्षण, शिक्षा और सूचना जैसी मानव संसाधन विकास की अधिकाधिक गतिविधियों की आवश्यकता होती है, ताकि वे अपने आप में विश्वास पैदा कर सकें और अपनी शक्तियों और दायित्वों का भली प्रकार निर्वहन कर सकें। महिलाओं को मानव संसाधन विकास का प्रशिक्षण देते समय, लिखित सामग्री चाहिए ताकि यह निरक्षर महिलाओं के लिए भी लाभप्रद बन सकें। प्रशिक्षण और शिक्षण कार्यक्रमों के दौरान, सहकारी नीतियों, मिशन वक्तव्य, सहकारी समिति के उद्देश्यों, रणनीतियों वैधानिक प्रावधानों, योजनाओं और कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। मिश्रित समाज में अपनी भूमिका बेहतर तरीके से निबाहने के लिए महिलाओं को तैयार करने की दृष्टि से भागीदारी आधारित प्रशिक्षण पद्धतियां, सामूहिक निर्णय लेना, विश्वास के निर्माण, आदि को पुरुषों और महिलाओं के संभावित मिश्रण तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।
- प्रत्येक सहकारी समिति में लैंगिक भेद को मिटाने के लिए पर्याप्त संख्या में महिलाओं को सदस्य बनाया जाना चाहिए। लैंगिक भेदभाव वाले विधायी प्रावधानों को हटा दिया जाना चाहिए।
- भेदभाव को दूर करने के लिए, सहकारी समिति (गैर–महिला सहकारिताएं के बोर्ड में 50 प्रतिशत महिला निदेशक होनी चाहिएं। हालांकि अधिकतर राज्यों में सहकारिताओं के विधान में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अनिवार्य बनाया गया है, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि यह पर्याप्त नहीं है। इसलिए, सभी सम्बद्ध राज्य सरकारों को इस विषय में फिर से विचार करना चाहिए।
- वर्तमान असन्तुलनों को दुरुस्त करने के लिए कोटा निर्धारण या किसी अन्य तरीके से अध्यक्ष जैसे नेतृत्व वाले पदों पर महिलाओं की पहुंच में बढ़ोतरी के प्रयास होने चाहिए।
- सहकारिताओं की महिला निदेशक अपने पति पर पूरा विश्वास रखते हुए सभी कागजों/दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कर देती हैं, और इस प्रकार अपने पतियों को अपनी जगह काम करने देती हैं, महिलाएं केवल राज्यों तक सीमित रह जाती हैं जबकि असल शक्ति उनके पास नहीं होती। महिलाओं के ऐसे कार्यों से न केवल महिला सहकारी आन्दोलन की शक्ति क्षीण होती है, बल्कि सहकारिता की आत्मा का भी ह्रास होता है, इसलिए महिलाओं को अपने ही लिए अपना वोट डालना चाहिए।
- लैंगिक भेदभाव से बचने के लिए महिलाओं को आर्थिक अधिकारिता, अधिक बेहतरी यानी बचत और ऋण सुविधाओं तक पहुंच, सामाजिक और राजनैतिक अधिकारिता यानी संसाधनों के भीतर, उन पर, उनके साथ और उनके इस्तेमाल का अधिकार।
- समानता और सहभागिता का दावा करने वाले सहकारी सिद्धांतों और मूल्यों के बावजूद महिला सदस्यों की सक्रिय भागीदारी, उनकी आवश्यकताओं और हितों पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता है। महिला सदस्यों को इन मुद्दों पर विचार करना होगा ताकि पुरुषों की प्रधानता को कम किया जा सके।
- विशेषकर पुरुषों में लैंगिक समानता की समझ लानी होगी ताकि असंतुलनों को मिटाया जा सके। अच्छी कार्य संस्कृति विकसित करने के लिए प्रत्येक सहकारिता में ऐसे ज्ञानबोधक कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित होने चाहिए।
- सहकारिता के कुछ क्षेत्र केवल महिलाओं के लिए रखे जाएं। भारत में किए गए प्रयोगों ने माइक्रो–फाइनेंस के क्षेत्र में अच्छे परिणाम दिए हैं, जिनका उपयोग ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में आपसी सहायता वाली सहकारिताओं/स्वनिर्भर सहकारिताओं द्वारा किया जा रहा है।❑

अनुवाद : नीति

सहकारिताएं : सामाजिक-आर्थिक अधिकारिता का सशक्त साधन

अनन्त मित्तल

अपने सामाजिक और आर्थिक ढांचों की प्रकृति के कारण सहकारिताओं में सतत मानव विकास का एक रूप बन जाने की मजबूत योग्यता है। इसका तात्पर्य यह है कि सतत मानव विकास तभी सम्भव है जब आर्थिक और सामाजिक दोनों लक्ष्य पूर्णतः परिभाषित और संतुलित हों। किसी सहकारिता की सामाजिक-आर्थिक शक्ति उसके संचालन के परिप्रेक्ष्य पर निर्भर करती है। सहकारिता के मूल नियम भी इस बारे में कहते हैं कि सहकारिताओं के आर्थिक लक्ष्य और सामाजिक आदर्श स्पष्ट होने चाहिए।

"अपने सामाजिक और आर्थिक ढांचों की प्रकृति के कारण सहकारिताओं में सतत् मानव विकास का एक रूप बन जाने की मजबूत योग्यता है।" हालांकि यह परिभाषा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा "सतत् मानव विकास" के लिए प्रतिपादित की गई है, इसका तात्पर्य यह है कि सतत् मानव विकास तभी संभव है जब आर्थिक और सामाजिक दोनों लक्ष्य पूर्णतः परिभाषित और संतुलित हों, यहां तक कि सहकारिता के मूल नियम भी इस बारे में कहते हैं कि सहकारिताओं के आर्थिक लक्ष्य और सामाजिक आदर्श स्पष्ट होने चाहिए। मगर अनुभव दर्शाता है कि अधिकतर सहकारिताएं व्यवहार में अपनी क्षमता का पूरा उपयोग कर नहीं पाती हैं।

पचास के दशक में जब बहुत सी सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) और यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों ने भी सहकारिताओं में सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का हल देखा। यह तो समय था जब व्यापारिक नेतृत्व, राजनीतिज्ञों, एनजीओ कार्यकर्ताओं और विकास के क्षेत्र में अन्यों ने सहकारिताओं की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। निर्धनता को दूर करने के लिए देश के कोने-कोने से सहकारी आंदोलन के विचार को पहुंचाने के विचार से योजनाकार रोमांचित महसूस कर रहे थे।

तब से सहकारी आंदोलन ने काफी रास्ता पार किया है, विशेषकर विकासशील देशों में नए सहकार संघों की स्थापना के लिए बड़ी मात्रा में संसाधन जुटाए गए हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि असफलता के कारण सहकारिताओं के प्रति यह ऊपर-से-नीचे की तरफ का दृष्टिकोण नहीं था। क्योंकि निर्णय लेने की प्रक्रिया में सदस्यों की भागीदारी और निस्तारण की दिशा में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप कई अर्थव्यवस्थाओं में इसने सहकारिताओं के अर्थ और भूमिका पर अपनी काली छाया डाल दी।

किसी सहकारिता की सामाजिक-आर्थिक शक्ति उसके संचालन के परिप्रेक्ष्य पर निर्भर करती है। भारत के राष्ट्रीय सहकारी संघ के अध्ययन के अनुसार, आदर्श रूप में सहकारिताओं के सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य असंगत नहीं होने चाहिए; उन्हें एक दूसरे का पूरक होना चाहिए। किन्तु व्यवहार में, सहकारिताएं कई बार एक लक्ष्य को दूसरे के मुकाबले अधिक महत्व देती हैं। फिलीपीन्स की सहकारिताओं के लिए मजबूत और लाभप्रद आर्थिक ढांचा प्राप्त करना मुश्किल हो रहा है, जबकि कनाडा में विशेषकर सहकारी ऋण संघ अपने सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संघर्षरत हैं।

हमारे पड़ोस में ही, ऐसे कई उदाहरण हैं जो यह दर्शाते हैं कि सहकारिताएं प्रतिबद्धता, ईमानदारी, सदस्यों की सक्रिय भागीदारी और पारदर्शिता के बिना चलाई ही नहीं जा सकतीं। उत्तर और पश्चिम या दक्षिण भारत की दुग्ध सहकारिताओं की सफलता दर के बीच बड़ा अन्तर है। भारत के पश्चिम राज्य गुजरात में अमूल (आणंद दुग्ध संघ लिमिटेड) प्रयोग की एक सफलता की कहानी है, जो दुनियाभर की सहकारिताओं के लिए एक आदर्श की तरह है अमूल ने लाखों ग्रामीण महिलाओं और उनके परिवारों का जीवन बदल डाला है, ग्राम स्तर पर दूध का संग्रहण, सुसज्जित डेयरियों तक उसका सुरक्षित परिवहन, संरक्षण-योग्य विभिन्न रूपों एवं डेयरी उत्पादों में उसका परिवर्तन, और अंत में गुजरात सहकारी दुग्ध विपणन परिसंघ के माध्यम से उसकी बिक्री सहकारी क्षेत्र में समुदाय आधारित उत्पादन और विपणन के लिए एक लोकमान्य

उक्ति जैसी बन गई है।

दक्षिण मध्य भारत के कुछ राज्यों ने इस मॉडल का प्रतिरूपण करने का असफल प्रयास किया। फिर उत्तर भारतीय राज्यों उत्तर प्रदेश, जो जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा और काफी पिछड़ा हुआ है, बिहार जो सबसे पिछड़ा है, और मध्य प्रदेश जो फिर बहुत पिछड़ा हुआ है, में यह प्रयोग सफल नहीं हो पाया। इस उलटफेर के कारण ढूंढना मुश्किल नहीं है। गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल और कुछ हद तक आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में हालांकि सहकारिताएं राजनैतिक जरूरत जैसी हैं मगर यह मूलतः अर्द्धव्यावसायिक आधार पर चलाई जाती हैं। निर्वाचित प्रबन्ध समितियां अपने सदस्यों के प्रति जबावदेह हैं और उनकी तरफ से विभिन्न सरकारी और निजी संस्थाओं के साथ मोलभाव करती हैं। सदस्यगण भी काफी जागरूक हैं और प्रबंधन के कृत्यों पर प्रश्न करने से नहीं हिचकिचाते। जबकि उत्तरी और पूर्वी राज्यों में सहकारिताएं मुख्यतया राजनैतिक हित साधने के लिए इस्तेमाल की जाती हैं और उनके प्रबंधन में भ्रष्टाचार आम है।

वैश्वीकरण के संदर्भ में विकासशील देशों के लाखों वंचित लोगों की माली हालत सुधारने के लिए सहकारिताओं की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है। चूंकि वैश्वीकरण को आधुनिक मुक्त व्यापार के सौदों और अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका में कमी के माध्यम से कार्यान्वित किया जा रहा है, इसलिए कुछ अर्थशास्त्री इसे "एक ऐसा उदाहरण बता रहे हैं" जिसमें समुदायों का शक्ति का ह्रास शामिल है।" स्पष्ट तौर पर इसका अर्थ धन का संकुचिकरण और उसके परिणामस्वरूप शक्ति का लोगों के चुने हुए प्रतिनिधि के बजाय कुछ निजी नियमों के हाथों में सिमटना है। हमारे जैसे आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वृहत्त देश में पर्याप्त सरकारी भूमिका बहुत आवश्यक है।

सहकारी आंदोलन में विश्व नेतृत्व

शुरुआती चरण में सहकारी समितियां मुख्य तौर पर ऋण अदायगी के कार्य से ही संबंधित थीं। धीरे–धीरे इनकी गतिविधियां बढ़ती गईं। आज, ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिताएं सब ओर छाई हुई हैं। उन्होंने लोगों का आर्थिक गतिविधियों के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में काम करना शुरू कर दिया है। चाहे वो मत्स्य पालन हो, मुर्गीपालन हो, डेयरी फार्म हो, कृषि–प्रसंस्करण हो, चीनी मिलें हों, कताई मिलें हों, आदानों की आपूर्ति हो, या फिर विपण्न हो। सहकारी समिति बनाते समय कमजोर तबकों के लोगों और महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारिताओं का हिस्सा

ग्रामीण नेटवर्क (शामिल गांव)	99.5 %
कृषि ऋण प्रदत्त	60.05 %
उर्वरकों का निर्माण (41.1 लाख टन)	30.35 %
उर्वरक उत्पादन (20.79 लाख टन)	18.64 %
चीनी उत्पादन (96.41 लाख टन)	58.8 %
चीनी मिलों का क्षमता उपयोग	131 %
गेहूं की खरीद	28.5 %
पटसन की खरीद (1995–96)	21 %
सस्ते गल्ले की दुकानें	20 %
कुल उत्पादन के मुकाबले दूध की खरीद	6.4 %
विपणन योग्य अधिशेष के मुकाबले दूध की खरीद	18.26 %
तेल का विपणन (ब्रांडेड)	50 %
सहकारिताओं में कताई (32.7 लाख)	12 %
सूत का विपणन/खरीद	72.9 %
सूत का उत्पादन *	16.3 %
सूत का निर्यात	8 %
सहकारिताओं में हथकरघा	55 %
सहकारिताओं में मछुआरे (सक्रिय)	21 %
भंडारण सुविधा (ग्राम स्तरीय पीएसीएस)	62 %
सोयाबीन उत्पादन	7.5 %
व्यक्तियों के लिए स्वरोजगार सृजित	1.25 करोड़

भारत में 3.95 लाख से अधिक सहकारिताएं हैं, जिनकी सदस्य संख्या 18.96 करोड़ है। इस तथ्य से सहकारिता के क्षेत्र में भारत को दुनिया में शीर्ष स्थान दिलाया है। सहकारी नेटवर्क के जरिए दिए गए ऋण ने 13,000 करोड़ रुपयें की अद्भुत राशि को पार कर लिया है।

निर्धनता उन्मूलन का साधन

सहकारिता समाज की नींव की तरह है। कोई भी समाज सहकारिता की भावना के बिना जी नहीं सकता। नीतिगत स्तर पर यह समाज सुधार के आंदोलन के रूप में शुरू हुआ, विशेषकर मानवीय आर्थिक क्षेत्र में, इसका लक्ष्य स्पष्ट था, सदस्यों के बीच आत्मनिर्भरता, स्व–सहायता और स्वशासन स्थापित करना। ऐसा कहा जाता है कि यह लाभ और हानियों के समान वितरण में सहायक होता है। समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों के उत्थान की इसकी विचारधारा भी बिल्कुल स्पष्ट है। इसका लक्ष्य समाज के कमज़ोर लोगों का अधिकार संपन्न बनाना है ताकि वे धनी लोगों के हाथों शोषण का मुकाबला सहकारी प्रयासों से अपने थोड़े–बहुत संसाधनों को जोड़कर कर सकें। ऐसा निर्णय लेने की प्रक्रिया में सदस्यों की भागीदारी से संभव हो पाता है। सहकारिताएं उन्हें व्यापार और वित्त बाजारों में उनकी मोलभाव की शक्ति बढ़ाने में भी

सहायक होती हैं। यह ऋण सहित वस्तुओं और सेवाओं तक पहुंच भी संभव बनाती है। संसाधनों को इक्ट्ठा करके यह आय सृजन की गतिविधियों के क्षेत्र में विस्तार करती हैं। यह उत्पादन के साधनों पर स्थानीय नियंत्रण को बढ़ाने में भी सहायक है।

ग्रामीण निर्धनों के लिए वरदान

सहकारिताओं ने ग्रामीण निर्धनता को दूर करने में बड़ी भूमिका निभाई है। यह दोतरफा लाभ देती हैं, यानी, सस्ती दर पर ऋण के स्रोत के रूप में और उचित दरों/लाभप्रद कीमतों पर आदानों और उत्पादों के लिए बाजार की पहुंच उपलब्ध कराने वाले के रूप में।

सस्ती दर पर ऋण की उपलब्धता ने गांवों के लोगों को सूदखोरों के चंगुल से निकाला है। फसल और निवेश दोनों के लिए ऋण दिया जा रहा है। इससे कृषि उत्पादन बढ़ा है। संस्थानिक स्रोतों से मिलने वाला 60 प्रतिशत उत्पादन ऋण और 30 प्रतिशत निवेश ऋण सहकारी क्षेत्र द्वारा किया जाता है। 89,000 प्राथमिक कृषि समितियों और भूमि विकास बैंकों की 2,500 प्राथमिक इकाइयों के साथ सहकारिताएं देश के सुदूर हिस्सों तक पहुंच गई हैं, और इस प्रकार छोटे और सीमांत किसानों के लिए ऋण तक पहुंच में उल्लेखनीय सुधार आया है।

सहकारिताओं ने सामूहिक मोलभाव के जरिए बड़ी संख्या में किसानों को लाभप्रद कीमतें दिलवाई हैं, किंतु अभी भी छोटे और सीमांत किसान इन लाभों से वंचित हैं, पहले, किसान अपना माल कम दामों पर कमीशन एजेन्टों के हवाले करने को बाध्य थे और उन्हें कभी पूरी कीमतें नहीं मिलीं। काफी हद तक, सहकारी समितियों ने किसानों को प्रतियोगी दाम पर अपने उत्पाद बेचने में सहायता दी है।

उत्पादों के उचित भंडारण के लिए भी सहकारिताओं ने सुविधाएं तैयार की हैं। इससे बेकार जाने वाले कृषि उत्पादों की मात्रा घटी है। शीतगृह सुविधाओं से बागवानी और अन्य जल्दी खराब होने वाले उत्पादों को अधिक लम्बी अवधि तक रखना संभव हुआ है, और इस प्रकार अब ये उत्पाद सभी मौसमों में उपलब्ध होते हैं।

सहकारिताएं : ज़रूरत के समय का मीत

किसानों को बेहतर कीमतें दिलाने और व्यक्ति बिक्री से बचने में मदद देने के मामले में सहकारी नेटवर्क सरकारी प्रयासों में केन्द्रीय भूमिका अदा कर रहा है। सरकार कुछ वस्तुओं का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करके गैर–ह्रासशील कृषि उत्पादों के लिए निम्नतम स्तर तय करती है। यदि बाजार मूल्य उससे नीचे जाते हैं, तो सरकार राष्ट्रीय और राज्य सरकारी एजेन्सियों के जरिए उन उत्पादों को खरीद लेती है, और बाजार का रुख सकारात्मक होने पर उसे बेच देती है। इससे किसानों को अपने उत्पाद की पर्याप्त कीमत भी मिल जाती है और वो गैर वाजिब नुकसान से भी बच जाता है। केंद्रीय और राज्य सरकारें ह्रासशील को भारी नुकसान पर भी उठा लेती हैं, जो उन दोनों के सहकारी नेटवर्क द्वारा बराबर वहन किया जाता है। सरकारी समितियों की एक अन्य महत्वपूर्ण गतिविधि सदस्यों को तकनीकी मार्गदर्शन दिलाकर किसानों की शिक्षा और प्रशिक्षण देता है, जिससे उत्पादकता और उत्पादन दोनों में सुधार होता है।

रोजगार का प्रमुख स्रोत

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में सहकारिताओं ने वंचित ग्रामवासियों को बड़ी संख्या में रोज़गार उपलब्ध कराया है।

प्राथमिक क्षेत्रः ऋण और आदान उपलब्ध कराके कृषि की प्रगति में सहायक होने के साथ–साथ सहकारिताएं मत्स्यपालन, मुर्गीपालन, डेयरी कार्य, आदि में क्षेत्र–विशेष की सहकारिताओं के जरिए गांवों में आय सृजन क्षमता में भी सहायता देती हैं। उन्होंने सूत और गन्ना उत्पादकों को उत्पादन में सुधार ओर चीनी व कताई सहकारिताओं के जरिए उत्पादों की बिक्री के रास्ते सुझाकर उनकी आय बढ़ाने में मदद दी है।

द्वितीयक क्षेत्रः 60 प्रतिशत चीनी उत्पादन और 60 प्रतिशत कताई उत्पादन सरकारी क्षेत्र में है। हालांकि इन सहकारिताओं का व्यापार बहुत वृहत है और यह संभ्रांत वर्ग द्वारा प्रबन्धित है। यह गरीबों को रोजगार देकर और सूत व गन्ने जैसी कच्ची सामग्री खरीदकर उनकी मदद करती हैं और इस प्रकार उन्हें बाजार भी उपलब्ध कराती है।

तृतीयक क्षेत्रः सहकारिताओं ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से तृतीयक क्षेत्र में रोज़गार को बढ़ावा दिया है, इन्होंने प्राथमिक कृषि ऋण समितियों, जिला और राज्य सहकारी बैंकों, विपणन स्थलों, प्राथमिक समितियों में प्रबंधकों को रोज़गार आदि के जरिए प्रत्यक्ष तथा परिवहन आवश्यकताओं, गोदामों के निर्माण, बाज़ार शेड, आदि के रूप में अप्रत्यक्ष रोज़गार दिलाया है।

सहकारिता क्षेत्र के वृहत् अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्धनता उन्मूलन का संस्थानिक दृष्टिकोण उस अवसंरचना के परीक्षण से शुरू होना चाहिए जो संपत्तियों, सेवाओं और बाज़ारों तक गरीबों की पहुंच को निर्धारित करती हैं, क्योंकि धन संग्रहण के लिए संपत्तियों और सेवाओं तक पहुंच अवश्यंभावी है। सम्पत्तियों में उत्पादक संसाधन शामिल हैं जैसे, भूमि, जल, वित्त, कृषि उपकरण और आदान, खेत से इतर रोजगार के अवसर जबकि सेवाओं तक पहुंच में शिक्षा एवं स्वास्थ्य, विस्तार और बाज़ार शामिल हैं। ऐसी सम्पतियों और सेवाओं तक पहुंच के बगैर गरीबों की भागीदारी और अधिकारिता का कोई अर्थ नहीं है। इस प्रकार के मूल्यांकन का अंतिम लक्ष्य पारस्परिक क्रिया अवसंरचनाओं के एक उपसमूह की पहचान करना है, जो एकात्म होकर गरीबों की सम्पत्तियों और सेवाओं तक पहुंच को सुधार सके, उनकी मोलभाव शक्ति बढ़ा सके और उनकी आर्थिक व राजनैतिक अधिकारिता का मार्ग प्रशस्त करे। ❑

अनुवाद : नीति

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड–4, तल–7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

सहकारिता में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

अजित कुमार

पिछले एक दशक से सहकारी समितियों से लोगों की अपेक्षाएं नाटकीय ढंग से बदल गई हैं और अब भी बदल रही हैं। भूमंडलीकरण के साथ–साथ संक्षिप्त और अर्थपूर्ण रूप देने के लिए संगठनों और सहकारिताओं को कार्य के नए तरीके अपनाने की आवश्यकता है। बढ़ती स्पर्धात्मक संचालन के माहौल में सहकारिताएं सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पर भरोसा कर रही हैं जिससे वे उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठा सकें और लाभार्थियों को बेहतर सुविधाएं प्रदान कर सकें।

सहकारी क्षेत्र में जुड़े हुए लोगों को प्रतिदिन निर्णय लेने पड़ते हैं... ऐसे निर्णय जिनसे सहकारी समिति का प्रबंधन और समिति के सदस्यों को दी जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता लंबे समय तक प्रभावी हो। सहकारिता से संबद्ध लोगों ने पूरी दुनिया में गरीबी कम करने, सामाजिक, आर्थिक और समान विकास को बढ़ाने में बदलाव के प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया है। अधिक मेलजोल के लिए उनकी आवश्यकताएं बढ़ रही हैं। नेटवर्क और फोरम बनाए जा रहे हैं जिससे टेक्नोलॉजी के प्रयोग से परिवर्तनों को अपनाकर और आपसी विशेषताओं को एक–दूसरे से सीखकर तेजी से प्रगति कर सकें। सहकारिता क्षेत्र में भारत में सबसे ज्यादा काम टेक्नोलॉजी के माध्यम से करने की आवश्यकता है जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि तेजी से विकास और उन्नति करने में यह प्रेरणा शक्ति की भूमिका निभाती है।

बढ़ते स्पर्धात्मक संचालन के माहौल में सहकारिताएं अपने कार्य को दूसरों से हटकर कराने के लिए ज्यादा से ज्यादा सूचना प्रणाली और प्रौद्योगिकी पर भरोसा कर रही हैं। इसीलिए रणनीतिक लक्ष्य के तहत उसे दोबारा परिभाषित कर दिया जाता है जिससे उसका स्पर्धात्मक दर्जा कायम रह सके और सदस्यों को बेहतर सुविधाएं आमंत्रित कर सके। यही कारण है कि सहकारिता संगठन के संचालन या व्यावसायिक सफलता में सहकारिता से जुड़े लोग निर्णयकर्ता के रूप में सहकारी गतिविधि में मुख्य पात्र होते हैं। चालू सहकारिता और अन्य समितियों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी की बदलती भूमिका के बदलते मूल को समझे बिना मुख्य फैसले करना मुश्किल है। इसके लिए अपने संगठन के आशातीत मूल्यांकन और तत्कालीन माहौल की नयी टेक्नोलॉजी को लंबे समय तक जीवंत बनाए रखने की आवश्यकता है।

आईसीटी और संगठन के पुनर्निर्माण की चुनौती

पिछले एक दशक से सहकारी समितियों से लोगों की अपेक्षाएं नाटकीय ढंग से बदल गई हैं और अब भी बदल रही हैं। भूमण्डलीकरण के साथ–साथ संक्षिप्त और अर्थपूर्ण रूप देने के लिए संगठनों और सहकारिताओं को काम करने के नये तरीके अपनाने की आवश्यकता है। सहकारिताओं में प्रबंधकों को विभिन्न अवसरों के प्रति जागरूक एवं सावधान रहने की आवश्यकता है जिससे वे अपने संगठनों को आईसीटी की दुनिया में उन्नत बना सकें और उन सारे तौर–तरीकों को संगठन में भली–भांति अपनाकर उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठा सकें। सहकारी अफसर और प्रबंधक सामर्थ्य के प्रति अधिक संवेदनशील हों। उन्हें हर समय सदस्यों की जरूरतों,

सहकारिता प्रबंधन को समर्पित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के लिए सबसे बड़ा कार्यक्रम

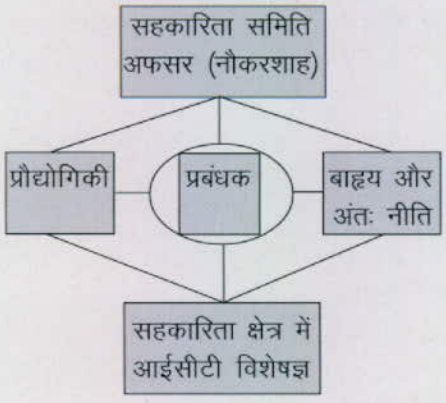

परिवर्तित प्रौद्योगिकी के कारण आने वाली समस्याओं को हल करने और व्यावसायिक विधान की जिम्मेदारी के प्रति सदैव तैयार रहना चाहिए।

मुख्य निर्णयकर्ता उपर्युक्त विषय को मूल दर्शन के रूप में व्यवहार में लाएं। वह सहकारी प्रबंधन में आईटीसी के भावी अंतिम प्रयोग पर

सहकारी गतिविधि में सेमिनार भी आयोजित कराएं जो इन मुद्दों को सुलझाने में सशक्त सकारात्मक प्रयास होगा। सम्मेलन की मुख्यधारा के अंतर्गत मुख्य लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न सहकारी संस्थानों के प्रतिभागी सहकारी गतिविधि और प्रबंधन में प्रयोग की जाने वाली अग्रिम आईसीटी संबंधी कई मामलों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। वे अपने विचारों को भी एक–दूसरे के समक्ष रखते हैं। संस्था के अंदर उनकी रोजमर्रा की गतिविधियों में अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्याओं पर भी पर्याप्त विचार–विमर्श होता है। इस प्रकार माहौल को जरूरत के मुताबिक तब्दील करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मुख्य उपलब्धियां

- खोजिए, नवीनतम विधि–विधान और टेक्नोलॉजी जो सहकारी क्षेत्र में लागू हो।
- सीखिए, सहकारी क्षेत्रों में नवीनतम टेक्नोलॉजी को कैसे अमली जामा पहनाया जाए।
- समझिए, आपकी रणनीतिक योजना से अगली पीढ़ी की टेक्नोलॉजी कैसे प्रभावित हो।
- नेटवर्क तैयार कीजिए, आज के स्पर्धात्मक आईटी चालित व्यापारिक वातावरण में प्रमुख उद्यमियों के साथ।
- समझिए, संगठन के अभियान और उद्देश्यों को आईटी के प्रयोग से कम से कम खर्चे में क्रियान्वित करना।
- देखिए, मिलिए और सीखिए, सहकारी आंदोलन में संभ्रात लोगों से और आईसीटी विशेषज्ञों से।
- पंक्तिबद्ध कीजिए, स्वयं को प्रमुख उद्योग विशेषज्ञों के साथ।
- पहचानिए और मिलिए, अपनी जरूरतों को जानें और मिलें विचार–विमर्श के लिए औद्योगिक प्रतिनिधियों के साथ।
- चर्चा कीजिए, विशेष मसलों पर जैसे भूमंडलीकरण/सूचना समाज सहकारी क्षेत्र पर कैसे प्रभावी है।
- मिलिए, व्यापक और विविध सेवाएं उपलब्ध कराने वालों से।
- पूंजीनिवेश कीजिए, सफलता के लिए नवीनतम टेक्नोलॉजी और रणनीतियों पर।

संचार प्रौद्योगिकी का बढ़ता प्रयोग

सदस्यों, बाजारों और आम लोगों में नवीनतम संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सहकारी उद्यमियों में वृद्धि हो रही है। संचार प्रौद्योगिकी का एक तरीका इंटरनेट है जो सहकारिताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। क्योंकि इसके जरिए सस्ती ई–मेल सेवा और अधिक से अधिक सूचनाओं को आसानी से जान पाने के कारण संचार माध्यम में वृद्धि हुई है। एक वर्ल्ड वाइड वेब खोली गई है जिसके जरिए आम जनता, निर्णयकर्ता और महत्वपूर्ण अर्थशास्त्र पर आधारित मीडिया के व्यापार, मार्केटिंग (विपणन)/विज्ञापन, शिक्षा/प्रशिक्षण, संगोष्ठी और सहकारिताओं पर आधारित सामान्य जानकारी उपलब्ध कराने का कार्य कराया जा रहा है। इस प्रकार सामाजिक योगदान से सहकारिता समाज का निर्माण करती है। इंटरनेट से कंप्यूटर और संचार की दुनिया में जो क्रांति आई है, वह पहले नहीं थी। टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेडियो और कंप्यूटर के आविष्कार से एक ऐसा मंच तैयार हुआ है जो इस सब चीजों के सामर्थ्य के बिना पहले नहीं था। भौगोलिक स्थितियों को नजरअंदाज करते हुए सूचना प्रसारण का कार्य प्रत्येक के सहयोग और उनके कंप्यूटरों के आपसी तालमेल के माध्यम से संभव हुआ है।

एनयूए लिमिटेड द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1991 में इंटरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या में सितंबर, 1998 तक आते–आते 45 लाख लोगों की बढ़ोत्तरी हुई है। इंटरनेट कंसलटेंसी एवं डेवलपर्स का अनुमान है कि विश्व में 14 करोड़ 80 लाख लोग इंटरनेट का उपयोग कर रहे थे। यह संख्या तेजी से बढ़ी है और अब भी बढ़ रही है।

पूरे विश्व में	14 करोड़ 80 लाख
अफ्रीका	8 लाख
एशिया/पैसिफिक	2 करोड़ 37 लाख
यूरोप	3 करोड़ 32 लाख 50 हजार
मध्य पूर्व	7 लाख 80 हजार
कनाडा व यूएसए	8 करोड़ 70 लाख
दक्षिण अमेरिका	45 लाख

प्रौद्योगिकी और सहकारिताएं

एक भारतीय उदाहरण इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर को–ऑपरेटिव लिमिटेड (इफ्फको) है, जो खाद बनाने वाला सबसे बड़ा सहकारिता क्षेत्र है। इसकी स्थापना 1967 में हुई थी जिसका प्राथमिक उद्देश्य गुणवत्ता वाली खाद बनाना और खाद के सही मात्रा में उपयोग करने का प्रचार करना था जिससे कृषि उत्पादन और गांवों की आर्थिक दशा में सुधार हो सके। इफ्फको के साथ कई सहकारिताएं मिल गईं। 1967 में इनकी संख्या 57 थी अब 36,000 से भी ज्यादा है। इफ्फको का पंजीकरण 3 नवंबर, 1967 में बहु–इकाई सहकारिता समिति के रूप में हुआ था। बहुराज्य सहकारिता समिति एक्ट 1984 और 2002 की स्थापना पर समिति ने इसे बहुराज्य सहकारिता समिति के रूप में पंजीकृत कराने का विचार किया गया था।

इफ्फको ने 174 किसान सेवा केंद्रों की स्थापना की जहां खाद, बीज और कृषि रसायन एक ही जगह सप्लाई किए जाते हैं और जहां से किसानों को इन कृषि संबंधी सामग्री को उपयोग करने के लिए तकनीकी सलाह मिलती है। सहकारिता के बहुत दूर तक राष्ट्रीय स्तर पर किसानों, शोधकर्ताओं, विशेषज्ञों, निजी क्षेत्रों और सरकार तक से संबंध हैं।

भारतीय कृषि में अधिक संतुलित पौष्टिक कृषि की आवश्यकता के जबाब में इफ्फको ने सन् 1992 में इंटेग्रेटिड प्लांट न्यूट्रिशन सिस्टम (आईपीएनएस) कार्यक्रम शुरू किया। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य भूमि की उर्वराशक्ति और किसानों के उत्पादन को बढ़ाना है जिससे किसानों की आय बढ़ सके।

इफ्फको ने 1992 के प्रारंभ में आईपीएनएस कार्यक्रम के साथ एफएओ (खाद्य और कृषि संगठन) को शामिल किया है। इसके तहत गतिविधियों के विभिन्न तकनीकी विषयों पर नियमित रूप से सलाह दी जाती है। सितंबर 1992 में आईपीएनएस पर आधारित एक संयुक्त कार्यशाला आयोजित की गई थी। 1993 में सहकारिता ने आईपीएनएस के प्रचार के लिए जांच और प्रदर्शन का कार्यक्रम शुरू किया। एफएओ ने को गांवों का चयन किया और उन गांवों के लिए पौष्टिक संतुलित शीट खुराक प्लांट स्थापित किया। जैसे ही उन

वेलेंस शीटों का परिणाम सामने आया खाद्य और कृषि संगठन ने उन गांवों में पौष्टिक प्रबंधन तकनीक प्लांट संशोधित करने का प्रस्ताव रखा। इससे उत्पादन को बढ़ाने में सहायता हुई। चूंकि खाद का कुशलतापूर्वक उपयोग होता है और वातावरण में पौष्टिकता का नुकसान कम हो रहा है।

अप्रैल, 1996 में एफएओ की भारत सरकार के साथ सहमति हुई कि वह वित्त और तकनीकी सहायता टीसीपीसी (टेक्निकल कोआपरेशन प्रोग्रामर) को देगी, जिसे डेवलपमेन्ट ऑफ एन इंटेग्रेटिड प्लांट न्यूट्रिशन सिस्टम मैथाडोलोजी का नाम दिया। इस कार्यक्रम को लागू करने में इफ्फको सक्रिय रूप से शामिल है। सितंबर, 1996 में इफ्फको ने उचित संतुलित खाद और आईपीएनएस कार्यक्रम संबंधी पूरे देश में अपने सारे क्षेत्रीय स्टाफ के लिए कार्यशाला आयोजित की। उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इंडिया (एफएआई) के विशेषज्ञों को भी शामिल किया गया। इस कार्यशाला में आईपीएनएस अभियानों के अंतिम छह नतीजों पर चर्चा की गई और भावी गतिविधियों, योजनाओं के बारे में बताया गया। इफ्फको–एफएओ कार्यक्रम के अंतर्गत सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण गतिविधि नवंबर, 1997 में अंतर्राष्ट्रीय आईपीएनएस का सेमिनार था। आईपीएनएस कार्य में शामिल शोधकर्ता विकसित और विकासशील दोनों देशों के लोगों से मिले और इस कार्यक्रम के दौरान इस कार्यक्षेत्र में लोगों के अनुभवों को सुना। टीसीपी का अन्य महत्वपूर्ण कार्य एक प्रकाशन है जिसका नाम 'ए गाइड टू फील्ड इम्पलीमेंटेशन ऑफ आईपीएनएस' है। आईसीएआर (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद), इफ्फको एवं एफएओ के बीच तकनीकी और सक्रिय सहयोग अब भी जारी है।

इफ्फको की एक वेबसाइट है जिसे उसके मददगार आईसीटी का प्रयोग कर लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। इस वेबसाइट के निम्नलिखित उद्देश्य दिए गए हैं :

- इफ्फको के होमपेज पर उपलब्ध अभियान दस्तावेज में अभियान के कारण दिए गए हैं।
- इफ्फको की वेबसाइट के रणनैतिक प्रयोग द्वारा भारतीय किसानों की बेहतरी के लिए संगठन के अभियान का प्रचार करना।
- देश–विदेश से आए आगुंतकों को इफ्फको के सभी विषयों पर आधरित सूचना उपलब्ध कराना।
- किसानों और सहकारिताओं तक (सूचना प्रौद्योगिकी) आई टी सेवाओं का विस्तार और ग्रामीण भारत का आईटी के स्तर से परिचित कराना।
- ग्रामीण भारत में आईटी संबंधी सेवाओं के प्रभावी प्रयोग के लिए उपयुक्त व विस्तारित रणनीतियों का मूल्यांकन करना
- नवीनतम और विश्वसनीय सूचनाएं उपलब्ध कराना और भारतीय कृषि व ग्रामीण विकास में शामिल अन्य सभी सक्रिय सेवाओं का विस्तार करना।
- इफ्फको के सहकारिता सदस्यों के लिए ई–सर्विसिस का विस्तार करना और वेबसाइट के माध्यम से विभिन्न चरणों में ई–कॉमर्स का विस्तार करना।
- इफ्फको के सप्लायरों को आवश्यक सूचना/सर्विसिस इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से विभिन्न चरणों में उपलब्ध कराना। ❑

अनुवाद : इन्दु जैन

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/ चाहती हूं/ चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 70 रुपये, दो वर्ष के लिए 135 रुपये, तीन वर्ष के लिए 190 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

.....

पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग,

पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066

*कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर **निदेशक, प्रकाशन विभाग** को नई दिल्ली में देय हो।*

सहकारी क्षेत्र : कार्य निष्पादन, क्षमता और चुनौतियां

एस. बालाकृष्णन और पी. रामालिंगम

भारतीय सहकारिताओं ने 1904 में अपने प्रारंभ से ही लोगों के सामाजिक–आर्थिक विकास के प्रभावी और सक्षम वाहक के रूप में अपनी पहचान बनाई है। सहकारी आंदोलन को विभिन्न क्षेत्रों और समाज के अलग–अलग वर्गों के बीच मौजूद असमानताओं को कम करने की दिशा में एक प्रभावी ताकत के तौर पर भी मान्यता मिली है। यूरोप में कृषि भूमि बैंकों के सिद्धांतों और कार्यकलापों का अध्ययन करने के लिए नियुक्त चेन्नई प्रांत के पूर्व गवर्नर सर फ्रेडरिक निकलसन की रिपोर्ट के आधार पर नियुक्त सर एडवर्ड लॉ कमेटी की सिफारिशों के अनुसार सहकारिताओं को संस्थागत् स्वरूप प्रदान करने की पहली कोशिश की गई।

1892 में, सर फ्रेडरिक निकलसन ने जर्मनी के तर्ज पर ग्रामीण सहकारी ऋण समितियों की स्थापना की सिफारिश की, भारत में सहकारी आंदोलन के बीज 1904 में बोए गए, जब ऋण सहकारिताओं के गठन को सुगम बनाने के लिए पहला सहकारी समितियां अधिनियम पारित किया गया। तब से सहकारी आंदोलन ने उल्लेखनीय प्रगति की है।

इस वर्ष भारत में सहकारी आंदोलन के सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस वृहत्त अवसर के लिए छोटी–बड़ी सभी सहकारी संस्थाएं तैयारी कर रही हैं। पिछले एक सौ वर्षों के दौरान सहकारिताओं ने देश की सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, और विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक विकास के वाहक के रूप में कार्य कर रही हैं। सहकार्य को नियोजित आर्थिक विकास के एक औजार के तौर पर स्वीकार किया गया है, विशेषकर समाज के कमजोर तबकों के लिए समग्र आर्थिक बदलाव लाने की दिशा में यहां एक शताब्दी पुरानी भारतीय सहकारिताओं के कार्य–निष्पादन और इस आंदोलन के समक्ष मौजूद चुनौतियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। भारत में सहकारी आंदोलन के विकास के कुछ उपाय भी यहां सुझाए गए हैं।

कार्य निष्पादन

सहकारिताओं की यह सौ वर्षीय यात्रा लोगों के सामाजिक–आर्थिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को छूने वाले बहु–दिशा विस्तार की साक्षी है। ए.डी. गोरवाला की अध्यक्षता वाली अखिल भारतीय ग्राम्य ऋण सर्वेक्षण समिति (1954) के अनुसार "सहकारी कर्म असफल रहा है, किंतु इसे सफल बनाया जाना चाहिए।" सहकारिताओं ने कई क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करते हुए ऊंचा स्थान बनाया है, जैसाकि नीचे तालिका–1 में दर्शाया गया है–

- 5,28,249 सहकारी समितियों और 2,207830 लाख सदस्यों के साथ आज भारत विश्व में सहकारी समितियों की सर्वाधिक संख्या और उनके अधिकतम प्रकारों के होने का दावा करता है। इनमें भारत के लगभग 100 प्रतिशत गांव और 67 प्रतिशत कुल परिवार शामिल हैं।
- ग्रामीण भारत में, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल तक और पूर्व में अरुणाचल प्रदेश से पश्चिम में गोवा तक इसके 5,67,000 गावों के लगभग 20 करोड़ व्यक्ति विभिन्न सहकारी संस्थाओं के सदस्य हैं। यह क्षेत्र 138.6 लाख व्यक्तियों को रोज़गार और स्वरोजगार उपलब्ध कराता है।
- इस देश की सहकारिताओं के पास 13438110 लाख रुपये की कार्यशील पूंजी है। उनके पास 3913 करोड़ रुपये की जमा राशि है। इस देश की सहकारिताओं के पास जिला स्तर पर 2331, राज्य स्तर पर 284 और राष्ट्रीय स्तर पर 21 संघीय इकाइयां हैं। ऋण सहकारिताओं ने किसानों

तालिका–1

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारिताओं की भागीदारी 1999–2000

–	ग्रामीण नेटवर्क (शामिल किए गए गांव)	100 प्रतिशत
–	सहकारिताओं द्वारा प्रदत्त कृषि ऋण	49.3 प्रतिशत
–	उर्वरकों का वितरण (67.42 लाख टन)	35.2 प्रतिशत
–	उर्वरक उत्पादन (नाइट्रोजन – एन)	23.5 प्रतिशत
–	उर्वरक उत्पादन (पी 2 ओ 5)	20.8 प्रतिशत
–	चीनी उत्पादन (89.72 लाख टन)	59.73 प्रतिशत
–	चीनी मिलों का क्षमता उपयोग	114.3 प्रतिशत
–	गेहूं की खरीद (45.18 लाख टन)	28.9 प्रतिशत
–	पशुचारे की आपूर्ति/उत्पादन	50 प्रतिशत
–	खुदरा सस्ते गल्ले की दुकानें (94,111)	21 प्रतिशत
–	विपणन योग्य अतिरिक्त के मुकाबले दुग्ध खरीद	10.5 प्रतिशत
–	कुल उत्पादन के मुकाबले दुग्ध खरीद	6.9 प्रतिशत
–	आइसक्रीम उत्पादन	45 प्रतिशत
–	तेल का विपणन (ब्रांडेड)	50 प्रतिशत
–	सहकारिताओं में कताई (34.7 लाख)	10 प्रतिशत
–	सूत का विपणन/खरीद	59.5 प्रतिशत
–	सूती धागे/कपड़े की खरीद	22.0 प्रतिशत
–	सहकारिताओं में मछुआरे (सक्रिय)	21.0 प्रतिशत
–	भंडारण सुविधा (ग्राम स्तरीय पीएसीएस)	64.5 प्रतिशत
–	सोयाबीन उत्पादन	7.9 प्रतिशत
–	नमक उत्पादन (18,177 मीट्रिक टन)	7.4 प्रतिशत
–	स्व–रोजगार सृजन, व्यक्तियों के लिए (दस लाख)	14.1 प्रतिशत

स्रोत : http//www.ncui.nic.in

को लघु, मध्यम और दीर्घ अवधि 1216740 लाख रुपये के ऋण प्रदान किए हैं, जो सहकारिताओं द्वारा प्रदत्त कुल कृषि का 59 प्रतिशत है।

- 244 सहकारी चीनी मिलों में देश की कुल चीनी का 60 प्रतिशत उत्पादित होता है। एक करोड़ दुग्ध उत्पादकों की सदस्यता और 4200 करोड़ रुपये के व्यापार वाली 71,000 डेयरी सहकारिताएं प्रतिदिन 9939 हजार लीटर दूध बेचती हैं। इस प्रकार डेयरी सहकारिताएं निजी क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय पहचान वाले ब्राण्डों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को कड़ी टक्कर देते हुए दुग्ध उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में क्रांति लेकर आई हैं। कुल उत्पादन के क्रमशः लगभग 55 प्रतिशत और 17 प्रतिशत भाग के साथ हैण्डलूम वस्त्रों और सूती धागे के उत्पादन में सहकारिताएं अग्रणी भूमिका निभा रही हैं।
- सहकारिताएं उर्वरकों के उत्पादन और वितरण का कार्य भी कर रही हैं। दो उर्वरक सहकारिताएं – इफ्को और कृभको मिलकर देश में नाइट्रोजन और फॉस्फेट आधारित घरेलू उर्वरकों का लगभग 20 प्रतिशत भाग उत्पादित कर रही हैं। वितरण के क्षेत्र में, सहकारिताओं का हिस्सा 30 प्रतिशत से अधिक है।
- भारत में उपभोक्ता सहकारी आंदोलन के आंकड़े 23237 प्राथमिक उपभोक्ता स्टोरों, जिला स्तर पर 666 थोक बिक्री केंद्रों तथा 29 राज्य स्तरीय संघों एवं सबसे ऊपर राष्ट्रीय परिसंघ के ढांचे को दर्शाते हैं। इसकी सदस्यता संख्या दस लाख और वार्षिक व्यापार 2500 करोड़ रुपये का है। भारत में 25,632 प्राथमिक विपणन सहकारिताएं कार्यरत हैं, जिनकी सदस्यता संख्या 140 लाख है।
- 66 लाख की सदस्यता संख्या वाला 92,000 प्राथमिक आवास सहकारी नेटवर्क देशभर में लगभग 10,000 करोड़ रुपये की ऋण सहायता और 22 लाख आवासीय इकाइयों के निर्माण के जरिए जरूरतमंदों को आसरा प्रदान कर रहा है।
- उत्पादों के विपणन, आदानों के वितरण और उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री में सहकारिताओं के विस्तृत संचालन को सुनिश्चित करने के लिए भंडारण क्षमता। सतत् प्रयासों के चलते, सहकारिताओं के स्वामित्व और उनकी सहायता–प्राप्त भंडारण क्षमता 1962–63 के 1100 हजार टन से बढ़कर मार्च 2000 के अंत तक 13706 हजार टन हो गई।
- वर्तमान में, लगभग 30,000 श्रमिक अनुबंधन और निर्माण सहकारिताएं हैं, जिनमें से 12.3 प्रतिशत जनजातीय और 87.7 प्रतिशत गैर–जनजातीय श्रमिक सहकारिताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनकी सदस्य संख्या 16 लाख है।
- जिन बहुत सी प्रकार की सहकारिताओं की यहां ऊपर चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त भी कई अन्य हैं जैसे जनजातीय सहकारिताएं, विद्युत सहकारिताएं, सिंचाई सहकारिताएं, महिला सहकारिताएं, औद्योगिक सहकारिताएं, भारी अभियांत्रिकी सहकारिताएं, आदि। हमारी सूची में अभी भी फिल्म सहकारिताएं, लेखकों की सहकारिताएं और यहां तक कि शव दफनाने संबंधी सहकारिताएं जैसी कई अन्य प्रकार की सहकारिताओं के नाम शामिल नहीं हो पाये हैं। संक्षेप में, बचपन के पालने से लेकर शवदाह स्थल तक सहकारी आंदोलन भारतीय जनमानस को सभी प्रकार की सेवाएं उपलब्ध करा रहा है।

चुनौतियां

सहकारिताएं अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं, जैसे ऋण, उत्पादन, प्रसंस्करण, विपणन, आदान, वितरण, आवास, डेयरी कर्म और वस्त्र। इनमें से डेयरी, शहरी बैंकिंग व आवास, चीनी उत्पादन, हथकरघा आदि जैसी गतिविधियों के अधिकतर क्षेत्रों में सहकारिताओं ने काफी हद तक सफलता पाई है, मगर कुछेक क्षेत्रों में ऐसा नहीं हो पाया है। देश में सहकारिताओं के असफल रहने के प्रमुख कारण निष्क्रिय या प्रसुप्त सदस्यता और सहकारिताओं के प्रबंधन में सदस्यों की सक्रिय भागीदारी का अभाव रहे हैं। सहकारी ऋण संस्थाओं में बढ़ते बकाये, आंतरिक संसाधनों को न जुटा पाना व सरकारी सहायता पर अतिनिर्भरता, पेशेवर प्रबंधन का अभाव, अफसरशाही का नियंत्रण व प्रबंधन में हस्तक्षेप, राजनैतिक दखलंदाजी और अतिराजनीतिकरण ने इनके विकास में बाधा पहुंचाई है। एक बड़े हिस्सेदार के होने के कारण साधारण सदस्यों तक पूरे लाभ न पहुंच पाना, विशेषकर उस श्रेणी के लोगों तक जिनके लिए उक्त सहकारिता का गठन किया गया हो, सहकारिताओं की प्रगति की रफ्तार को धीमी करता है। यह वो क्षेत्र हैं, जिनकी तरफ उपयुक्त विधायी और नीतिगत सहयोग के उपाय करने की आवश्यकता है। सहकारिता के ढांचे ने भी निम्नलिखित कमियां प्रदर्शित की हैं: प्रतियोगिता का सामना करने की कम क्षमता, मूल्य संवर्धन और प्रौद्योगिकी अंतर्लयन का अभाव, सबसे निचले स्तर पर उपयुक्त ढांचे का न होना, सहकारिताओं के भीतर नियोजन प्रणाली की अधूरी जानकारी, कड़े और निरोधात्मक सहकारी कानून।

यदि सहकारी आंदोलन के समक्ष उपरोक्त चुनौतियों का त्वरित आधार पर सामना किया जाए तो बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद की जा सकती है, जो न केवल सहकारिताओं के बचे रहने के लिए अनिवार्य है बल्कि बाजार में अपना प्रतियोगी स्थान बनाए रखने हेतु भी अत्यावश्यक है।

कार्यक्षमता सुधारने के उपाय

सरकार जानती है कि निर्धनता उन्मूलन, सुरक्षा और रोज़गार सृजन की समस्याओं का मुकाबला करने की दिशा में सहकारिताओं के कई लाभ हैं। यह भी माना जाता है कि सहकारिताएं ऐसे क्षेत्रों में भी वस्तुएं और सेवाएं प्रदान करने की क्षमता रखती हैं जहां शासन और निजी क्षेत्र दोनों ही असफल रहे हैं। भविष्य के सहकारिता विकास की संभावनाएं कृषि उत्पादन, ग्रामोद्योग, शहरी सेवाएं, खुदरा बैंकिंग, आवास वित्त, स्वास्थ्य रक्षा, ऊर्जा और अन्य गतिविधियों जैसे गोदामों, कृषि व्यापार केंद्रों की स्थापना, वैवाहिक हॉलों और मनोरंजन क्लबों के निर्माण में दिखाई देती हैं इनके अतिरिक्त, सहकारिताओं को ग्रामीण विद्युतीकरण, कृषि निर्यात, बागवानी, वस्त्र, ऊर्जा विशेषकर गैर– पारंपरिक ऊर्जा, बीमा, नवीन बैंकिंग, आदि जैसे नए क्षेत्रों में प्रवेश करने के परिणामों की भी जांच करनी है। नए आर्थिक परिदृश्य में, सभी स्तरों पर सहकारिताएं अपने कार्यकलापों को बाजार की मांग के अनुसार पुनःस्थापित करने की कोशिश कर रही हैं। प्रबंधन में व्यावसायिकता, सदस्यों की भागीदारी, समर्पित और ज्ञानसंपन्न नेतृत्व, सरकारी सहायता, नए क्षेत्रों की पहचान, व्यावसायिक प्रबंधन हमारी शताब्दी पुरानी सहकारिताओं की सफलता के लिए आवश्यक नए क्षेत्र हैं। ❑

अनुवाद : नीति

सहकारी आंदोलन के विकास में शिक्षा और प्रशिक्षण की भूमिका

डा. नीरज पसरीचा, डा. ओ. एन. लाल और वी. के. पांडेय

किसी भी सहकारी उपक्रम की सफलता या असफलता उसमें काम करने वाले कर्मचारियों पर निर्भर होती है। परिवर्तनशील व्यापारिक परिवेश में सहकारी प्रशिक्षण गतिविधियां निरंतर प्रतिस्पर्द्धी होती जा रही हैं। कम लागत पर समान अथवा बेहतर प्रशिक्षण देने वाले एवं देश के सहकारिता आंदोलन को बेहतर सेवा एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराने वाले लोग सहज रूप से इस क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद देश के सहकारी संगठनों तथा विभागों में कार्यरत कार्मिकों के सहकारी प्रशिक्षण आयोजित करने, निर्देशित करने, निगरानी तथा मूल्यांकन करने के लिए उत्तरदायी है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में सहकारिता ने एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है और यह हमारे अर्थतंत्र का तीसरा क्षेत्र बन गया है। इनमें 50,000 करोड़ रूपये से भी अधिक का निवेश है और ये प्रत्येक वर्ष रोजगार के अवसर पैदा कर रही हैं। बहुत–सी परीक्षाओं और अवरोधों के बाद सहकारिताओं को कुछ विशेष प्रकार की आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के साधन के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, जिनका अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र समाधान नहीं कर सकते। भारत में सहकारिताओं ने कृषि साख से लेकर चिकित्सकीय देखभाल उपलब्ध कराने तक सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियों को अंगीकार किया है। उन्होंने गांवों से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक अपना परिदृश्य खोल लिया है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो सहकारिताओं ने अधिकांश राज्यों में अपनी जड़ें गहरी जमा ली हैं और यह सभी स्तर के शिक्षा प्राप्त युवाओं को रोजगार के अवसर उपलब्ध कर तथा नए उद्यमियों को चुनौतियां स्वीकार करने तथा उत्प्रेरक एजेंट की भूमिका का निर्वाह कर उनकी अपेक्षाओं को समन्वित करने में सफल रही हैं।

मनुष्य सहकारी उद्यमों के महत्वपूर्ण घटक हैं। किसी भी सहकारी उपक्रम की सफलता या असफलता उसमें काम करने वाले कर्मचारियों पर निर्भर होती है। एडम स्मिथ ने आर्थिक जगत के उत्पादन में मानव पूंजी के योगदान को एक महत्वपूर्ण घटक माना है। आधी शताब्दी से भी पहले अल्फ्रेड मार्शल ने टिप्पणी की थी कि मनुष्यों पर निवेश की जाने वाली पूंजी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूंजी होती है। नवीनतम उन्नत प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक जागरूकता के इस युग में किसी भी संगठन की बेशकीमती संपत्ति इंजीनियर, तकनीशियन, कुशल कर्मचारी, कार्यकारी, लेखाकारों आदि के रूप में उसके प्रशिक्षित कर्मी होते हैं। इस तरह सहकारी संगठनों के भौतिक तथा वित्तीय संसाधनों के प्रभावशाली उपयोग में मानव संसाधन की महत्वपूर्ण भूमिका बरकरार है।

सहकारी संगठन का मानव संसाधन उत्पादन के घटकों का योग निर्धारित करता है। यह सहकारी संगठनों के लिए उपलब्ध संसाधनों के विभिन्न मेल भी निर्धारित करता है ताकि प्रयुक्त संसाधनों से अधिकतम प्रतिफल प्राप्त किया जा सके। लेकिन इसके साथ ही मानव संसाधन बहुत तरंगी और क्रांतिक होता है। कोई यह नहीं बता सकता कि किसी खास स्थिति में एक व्यक्ति कैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा। इसलिए सहकारिताओं में काम करने वाले लोगों का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है। हाल के समय में व्यापारिक और सहकारी उपक्रमों में मानव संसाधन प्रबंधन का महत्व समझा जाने लगा है।

सहकारी प्रशिक्षण कार्यक्रम

परिवर्तनशील व्यापारिक परिवेश में सहकारी प्रशिक्षण गतिविधियां निरंतर प्रतिस्पर्द्धी होती जा रही हैं तथा कम लागत पर समान अथवा बेहतर प्रशिक्षण देने वाले एवं देश की सहकारिता आंदोलन को बेहतर सेवा एवं प्रशिक्षण उपलब्ध कराने वाले लोग सहज रूप से इस क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद देश के सहकारी संगठनों तथा विभागों में कार्यरत कार्मिकों के सहकारी प्रशिक्षण आयोजित करने, निर्देशित करने, निगरानी तथा मूल्यांकन करने के लिए उत्तरदायी है। यह सहकारिताओं के आवश्यकता–आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करता है तथा मानव संसाधन विकास प्रक्रिया में सहयोग करता है। इनमें ग्राहक तथा कर्मचारियों को स्वतंत्र मानते हुए उन्हें नियुक्त करने प्रशिक्षित करने, विकास करने और पर बल दिया जाता है। मानव संसाधन प्रशिक्षण का उद्देश्य सहकारी संगठनों को

समन्वित तथा स्वतंत्र इकाई बनाना और सहकारी आंदोलन के नाजुक पक्षों पर शोध करना है। परिषद सरकार और सहकारी संगठनों को परामर्श सेवाएं भी उपलब्ध कराता है।

ये प्रशिक्षण कार्यक्रम बैकुंठ मेहता राष्ट्रीय सहकारी प्रबंधन संस्थान, पुणे; सहकारी प्रबंधन के पांच क्षेत्रीय संस्थानों तथा देश के विभिन्न भागों में स्थित 14 सहकारी प्रबंधन संस्थानों में संचालित किए जाते हैं। बैकुंठ मेहता राष्ट्रीय सहकारी प्रबंधन संस्थान में व्यापार प्रशासन (सहकारिता) में ऐसा ही एमबीए पाठयक्रम आरआईसीएम, बंगलौर, आईसीएम, भुवनेश्वर तथा आईसीएम, भोपाल में भी आयोजित किया जाता है। औसतन, परिषद की प्रशिक्षण इकाइयां हर साल लगभग 1,200 डिप्लोमा तथा अल्पावधि प्रबंधन विकास कार्यक्रम आयोजित करती हैं जिनमें 2,600 से भी अधिक प्रतिभागी भाग लेते हैं।

हालांकि परिषद ने विभिन्न राज्यों में सहकारिता आंदोलन की प्रगति पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रभाव का परिमाण जानने की कोई कार्यविधि विकसित नहीं की है, तथापि दक्षिणी और पश्चिमी राज्य जहां देश के उत्तरी और पूर्वी राज्यों की तुलना में सहकारी आंदोलन का काफी अधिक विकास हुआ है, प्रशिक्षण कार्यक्रमों के उपयोग में अग्रणी हैं। निश्चित रूप से प्रशिक्षित कर्मचारी नेतृत्व और सदस्य अपने–अपने राज्यों में आंदोलन की प्रगति में सहयोग कर रहे हैं।

सहकारिता की विकास प्रकृति

विकास अनिवार्यतः स्वशासी अवस्था से संगठित वैकल्पिक परिवर्तन की प्रक्रिया है। निरक्षरता तथा गरीबी के जाल और भौतिक एवं सामाजिक अभाव में फंसे आमलोग जागरूकता एवं प्रेरणा के अपने आवेग को खो सकते हैं। इस समय उन्हें आत्म और सामाजिक विकास के लिए सहकारिताओं की जरूरत होती हैं। सहकारिताएं इन लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस प्रक्रिया में सहकारिताएं लोगों को मौजूदा से वांछित तथा बेहतर स्थिति की ओर अग्रसर होने में सहायता करती हैं एवं आर्थिक पुनरुत्थान में जनसहभागिता के असीमित द्वार खोलती हैं।

सहकारिताओं को विश्वभर में सभी राजनीतिक एवं आर्थिक प्रणालियों के अंतर्गत एक विचार, विश्वास और सुचिंतित एवं समन्वित गतिविधि के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके सारतत्व सहकारी जनतंत्र तथा स्वसहायता, पारस्परिकता, समता तथा स्वैच्छिकता जैसे सर्वस्वीकृत लोकाचार हैं। तकनीकी शब्दों में, सहकारिता व्यापार करने की एक विशेष विधि है।

सहकारिता से अभिप्राय व्यक्तियों के ऐसे संगठन से है जो पारस्परिक सहायता तथा सामूहिक प्रयास से है जो समान आर्थिक उद्देश्य से की जाती है। एक प्रक्रिया के रूप में यह दो अथवा अधिक व्यक्तियों या विशेष समूहों को समन्वित कर एक करने एवं उन्हें एक साथ काम कर समान लक्ष्य हासिल करने की ओर अग्रसर करती है। उपेक्षित तथा शक्तिहीन व्यक्ति पारस्परिक सहयोग और समर्थन के द्वारा धनी एवं शक्तिसंपन्न लोगों को सुलभ भौतिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं और इस तरह अपने स्वाभाविक सामर्थ्य का पूर्ण विकास कर सकते हैं। एक बार पारस्परिकता स्थापित हो जाए तो प्रत्येक संगठन का नारा – प्रत्येक वस्तु सबके लिए तथा सभी प्रत्येक के लिए – बन जाता है। ऐसे सहकारी संगठन में सहकारी विचारधारा और सहकारी व्यापार साथ–साथ चलते हैं और एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। इस सहकारी गुण या प्रकृति को इसके सदस्यों द्वारा समझे जाने की जरूरत है। यही समझ किसी सहकारी संगठन को सच्चे अर्थों में सदस्योन्मुखी संगठन बनाएगी जहां सदस्य ही स्वामी और प्रबंधक हों तथा समिति के क्रियाकलापों को नियंत्रित कर उसके लाभ प्राप्त करें। यही सहकारी शिक्षा का उद्देश्य है।

सहकारी शिक्षा पर बल

स्वस्थ तथा धारणीय सहकारी विकास के लिए सहकारी शिक्षा को मूलतत्व माना जाता है। रॉशडेल पायोनियर्स (1844) से लेकर आईसीए मैनचेस्टर कांग्रेस (सितंबर, 1995) तक सहकारी शिक्षा पर एक सिद्धांत के रूप में जोर डाला गया है। इसे अमल में लाने से सदस्यों और कर्मचारियों को सहकारी विचार तथा क्रिया की गुत्थियों एवं गुणों को समझने और परिणामतः उनकी सहकारिताओं का प्रभावशाली रूप से विकास करने में मदद मिलेगी।

स्वतंत्रता–पूर्व एवं स्वतंत्रता पश्चात सहकारी आंदोलन के कार्यकलापों के लिए बनी सभी समीक्षा समितियों और आयोगों ने सहकारी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है। सहकारिता पर मैकले समिति ने सन् 1915 में टिप्पणी थी, "सहकारी समितियों में पाई जाने वाली अधिकांश खामियों की वजह समितियों के पंजीकरण से पूर्व तथा बाद में शिक्षा के अभाव में देखी जा सकती है।" कृषि पर

रायल कमीशन (1928) की राय थी, "कुशल तथा समर्थ शिक्षकों के द्वारा उचित निगरानी के साथ सदस्यों को सहकारिता के अभिप्राय के धैर्यपूर्ण एवं सतत् शिक्षण का अभाव ही भारत में सहकारी आंदोलन के विनाश का कारण है।" ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति का कथन था, "सहकारी आंदोलन कुछ चीजों, मसलन सही व्यक्ति का चुनाव करने तथा उसे उचित प्रशिक्षण देने पर बहुत अधिक निर्भर करता है।" ये टिप्पणियां आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं, जितनी कि तब थीं।

सभी पंचवर्षीय योजनाएं और सहकारिता पर बनी विभिन्न समितियां भी समय–समय पर सहकारी शिक्षण प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल देती रही हैं। इस दिशा में विधिवत प्रयास 1958–59 में आरंभ किए गए और भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ की निगरानी और दिशा–निर्देश में सहकारी सदस्यों की शिक्षा का एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम आरंभ किया गया।

सहकारी शिक्षा ढांचा तथा एजेंसियां

सहकारिताओं के सदस्यों, सहकारी निकायों के चुने हुए प्रति निधियों तथा निचले स्तर की सहकारिताओं के वैतनिक सचिवों के लिए सहकारी शिक्षण कार्यक्रमों के विकास तथा क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ, राज्यस्तर पर राज्य सहकारी संघ तथा जिला स्तर पर जिला सहकारी संघ प्रमुखतया जिम्मेदार हैं। लगभग 600 सहकारी प्रशिक्षक इस कार्य में लगे हुए हैं। इस कार्य के वित्त की व्यवस्था अंशतः केंद्र सरकार तथा अंशतः राज्य सरकारों द्वारा की जाती है। इस कोष में राज्य सहकारी समिति अधिनियम के प्रावधानों के तहत सहकारिताओं से उगाहे गए 'शिक्षा कोष' के जरिए भी योगदान प्राप्त होता है।

भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ एवं राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम ने क्षेत्र तथा गतिविधि केंद्रित 'शिक्षा परियोजनाएं' भी तैयार की है जिनसे उपर्युक्त औपचारिक शैक्षिक ढांचे को बल मिलता है। इनके अलावा अलग–अलग क्षेत्रों की सहकारिताओं, जैसे औद्योगिक सहकारिता एवं हथकरघा सहकारिता के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए शैक्षिक कार्यक्रम भी हैं जिनके लिए भारत सरकार सहायता देती है। क्षेत्रवार सहकारी शिक्षा के संदर्भ में 1990–99 से डेयरी क्षेत्र की सहकारिताओं में उल्लेखनीय विकास हुआ है। लगभग 75,000 प्राथमिक डेयरी सहकारिताओं के नेटवर्क की प्रगति की मुख्य वजह डेयरी सहकारिता स्थापित करने के पहले तथा बाद में उनके संचालन के क्रम में उपलब्ध कराई गई औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम है। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड की क्षत्रछाया में शैक्षिक कार्यक्रम आरंभ तथा क्रियान्वित करने के लिए जिला सहकारी डेयरी संघ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस व्यवस्था से लगभग 15 लाख वर्तमान एवं संभावित सहकारी डेयरी विकास की सफलता के मद्देनजर डेयरी सहकारिताओं के सदस्यों की सहकारी शिक्षा को महत्वपूर्ण निवेश माना जाना चाहिए।

ज्ञान, कौशल तथा सामाजिक–आर्थिक स्थिति के उन्नयन और उनकी तात्कालिक समस्याओं का समाधान करने में अनौपचारिक शिक्षा महत्वपूर्ण उपकरण हो सकती है। विस्तार एजेंट सहकारी निकायों के द्वारा आसानी से सदस्यों को शिक्षित, सूचित कर सकते हैं और उनकी सहायता कर सकते हैं।

अनौपचारिक अभिगम गतिविधियां

औपचारिक शैक्षिक कार्यक्रमों से अलग सहकाारिताओं के भीतर सीखने से जुड़ी गतिविधियां प्रायः अनौपचारिक होती हैं। अभिप्राय यह कि अधिकांश सहकारिताओं के भीतर शिक्षा नियोजित नहीं होती और किसी कठोर संरचना का अनुगमन नहीं करतीं। सदस्य विभिन्न अधिकारियों से बातचीत के द्वारा, देखकर तथा विभिन्न सहकारी गतिविधियों एवं सबंद्ध आयोजनों में भागीदारी से सीखते हैं। सहकारिताओं के एक–एक सदस्य के पास अलग–अलग कौशल और ज्ञान होता है। साथ–साथ काम करते हुए वे आपस में अपने अनुभव, कौशल और ज्ञान बांटते रहते हैं और इस तरह अपना कार्य निष्पादित बेहतर बनाते रहते हैं। इस तरह की शिक्षा के लिए किसी पाठ्यक्रम की जरूरत नहीं होती, स्थितियां और आवश्यकताएं यह निर्धारित करती रहती हैं कि सदस्य क्या सीखें और क्या करें। ज्ञान, कौशल तथा सामाजिक–आर्थिक स्थिति के उन्नयन और उनकी तात्कालिक समस्याओं का समाधान करने में अनौपचारिक शिक्षा महत्वपूर्ण उपकरण हो सकती है। विस्तार एजेंट सहकारी निकायों के द्वारा आसानी से सदस्यों को शिक्षित, सूचित कर सकते हैं और उनकी सहायता कर सकते हैं। हालांकि अनौपचारिक शिक्षा को प्रलेखित नहीं किया गया है, फिर भी यह सहजता से कहा जा सकता है कि सहकारिताएं सहयोग की प्रक्रिया के द्वारा अपने सदस्यों की शिक्षा, व्यापार तथा समृद्धि में योगदान कर रही हैं।

कुशलता–सहकारिता में सफलता की कुंजी

सहकारिता आंदोलन को सतुंलित आर्थिक विकास एवं धन के वितरण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के वांछित सामाजिक–आर्थिक रूपांतरण के एक प्रभावी उपकरण के रूप में प्रकल्पित किया गया था। इसमें समाज के कमजोर वर्गों लघु तथा सीमांत किसान, भूमिहीन श्रमिक, मछुआरे, हस्तशिल्पी, उपभोक्ता तथा उन्हें राष्ट्रीय अर्थतंत्र मी मुख्यधारा में लाने वाले सभी लोग और सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियां शामिल हैं।

सहकारी उपक्रमों तथा संगठनों की सफलता उनके सदस्यतों की निष्ठा पर निर्भर करती है। यह निष्ठा उन्हें मिलने वाले व्यावसायिक लाभ तथा सदस्यों एवं चुने हुए प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों पर निर्भर करती है। प्रतिस्पर्धी परिवेश में चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए सहकारिताओं को मजबूत, कुशल और सक्षम बनना होगा। परिवर्तनशील स्थितियों में भारतीय सहकारिताओं के प्रबंधन को पर्याप्त रूप से पेशेवर होना होगा। इसके लिए सहकारिताओं को मूल्यों को क्षति पहुंचाए बिना उद्यमों की कुशलता बनाए रखने के लिए अपना व्यावसायिक व्यक्तियों का समूह तैयार करना होगा। किसी भी जीवंत सहकारी संगठन के लिए सहकारी शिक्षण एक स्वीकृत संकेतक है। सहकारी शिक्षा विकास की ओर पहला कदम है। जब तक सहकारिता को एक विचार एवं प्रणाली के रूप में जान न लिया जाए तब तक केवल ऋण और सेवाएं देते रहने से काम नहीं बनेगा। ❑

अनुवाद : अंजली सिन्हा

सहकारिता का जनक रॉबर्ट ओवेन

ओमप्रकाश कश्यप

भगवान करे, सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ सबको मिले धरती पर ताकि न कोई नाराज हो
भगवान करे, सब कुछ मिले हमें उतना–उतना, जितना पाकर हमारा सिर नहीं शर्मसार हो।

कविता की ये खूबसूरत पंक्तियां क्रांतिधर्मा रूसी कवि येव्गेनी येव्तुशेंको की हैं, जिनकी कविताओं का अनिल जनविजय द्वारा किया गया अनुवाद 'धूप खिली थी और रिमझिम वर्षा' शीर्षक से इसी वर्ष छपकर आया है, कविता में दर्ज कवि की सदेच्छाएं उत्कृष्ट मानवीय चिंतन का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

तय यह भी है कि मात्र सदेच्छाएं और प्रार्थनाएं कुछ नहीं कर पातीं, जब तक अपने साथ संकल्पों का उचित तालमेल न हो, जनकल्याण के स्वप्न को पूरा करने, विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संसाधनों के उचित एवं सर्वहितकारी उपयोग की आवश्यकता पड़ती है। घनिष्ठ सामाजिकता चुनौतियों को इस तरह विस्तरित करती है कि उन पर विजय पाना सामूहिक लक्ष्य मान लिया जाता है। स्वावलंबन, सामूहिकता, सहजीवन, और सर्वकल्याण की भावना ही सहकारिता के विकास का आधार रही है। सहयोग यों तो मानवीय वृत्ति है, उसी का नियोजित–सांगठनिक स्वरूप सहकार है.... भारत में पहली सहकारी समिति 1904 में बनी थी। इस आधार पर यह वर्ष भारतीय सहकारिता आंदोलन की सौवीं वर्षगांठ है, अतएव इस अवसर पर उचित होगा कि हम सहकारी आंदोलन के प्रणेता रॉबर्ट ओवेन का स्मरण करें–

अठाहरवीं शताब्दी के बीतते–बीतते पूंजीवाद पश्चिम में अपनी जड़ें जमाने लगा था। स्वाभाविक रूप से उसके दुष्प्रभाव भी नजर आने लगे थे, अनियोजित विकास; जहां आर्थिक असमानता को बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ; वहीं आर्थिक असमानताओं ने सामाजिक अंसतोष को भड़काने का काम किया था। इससे बेपरवाह, अति–विश्वास से फूली पूंजीवादी कंपनियां अपने मुनाफे के लिए जनता का दोहन कर रही थीं; जिससे नए सामाजिक संबंधों को जमीन मिलनी शुरू हुई, औद्योगिकरण के दुष्प्रभावों को देखते हुए अनेक अर्थशास्त्री खुले पूंजीवादी का समर्थन करने से कतराने लगे थे। कुछ का मानना था कि गरीब और उपेक्षित वर्ग की आर्थिक समस्याओं का निदान, छोटे–छोटे कार्यसमूह बनाकर ही किया जा सकता है।

विचारकों को, जो वास्तविक परिवर्तन के इच्छुक थे, उम्मीद भी इसी वंचित और उपेक्षित वर्ग से थी। इन्हीं में से एक रॉबर्ट ओवेन, जिन्होंने पूंजी और अन्य संसाधनों के विकेंद्रीकरण को संतुलित विकास की अनिवार्यता बताया। उनका मानना था कि समाज की आर्थिक समस्याओं का वास्तविक निदान उन्हीं के द्वारा संभव है; जो इन समस्याओं के शिकार हैं तथा वर्षों से पूंजी–प्रधान व्यवस्था का उत्पीड़न सहते आ रहे हैं। इसके लिए उन्होंने विभिन्न उद्देश्यों वाले छोटे–मोटे कार्यसमूह बनाने पर ज़ोर दिया। 'बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय' की भावना पर केंद्रित यह साम्यवादी अवधारणा नई नहीं थी। यूनानी दार्शनिक प्लेटो वर्षों पहले इसकी ओर संकेत कर चुके थे, भारतीय वांड्मय में यही भावना 'सर्वे सुखिनः भवंतु' के रूप में प्राचीनकाल से मौजूद रही है। इस संबंध में राबर्ट ओवेन का योगदान इसलिए महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपने विचार को अमलीजामा पहनाने के लिए भरपूर सक्रिय प्रयास किए और उसकी कामयाबी के लिए आजीवन प्रयोग करते रहे। इसके लिए उन्होंने अपनी, स्वयं अर्जित करोड़ों रुपये की संपत्ति दावं पर लगा दी। विभिन्न कारणों से ओवेन के प्रयास तो सफल न हो सके परंतु आगे चलकर उन्हीं प्रयोगों के आधार पर सहकारिता की नींव पड़ी। इसलिए राबर्ट ओवेन को आज भी सहकारिता के जनक के रूप में याद किया जाता है।

रॉबर्ट ओवेन बचपन से ही महत्वाकांक्षी था। मगर जीवन के शुरुआती संघर्ष और अभावों ने कुछ समय के लिए उसकी महत्वाकांक्षाओं को धुंधला दिया था। नौकरी करते–करते आर्थिक स्थिति संभली तो दमित महत्वाकांक्षाएं दोबारा सिर उठाने लगीं, उन दिनों मेनचेस्टर के कपड़ा उद्योग की धाक पूरी दुनिया पर थी। ओवेन ने जैसे–तैसे सौ पौंड की रकम का प्रबंध किया और मेनचेस्टर पहुंच गया। अपने बहुआयामी सपनों और अदम्य जिजीविषा के साथ। मेनचेस्टर में ओवेन का पिछला अनुभव काम आया। वहां पहुंचते ही उसे एक कपड़ा मिल में प्रबंधक की नौकरी मिल गई। छह महीने में ही ओवेन ने अपनी लगन और प्रतिभा की धाक मिल मालिक पर जमा दी। जिससे खुश होकर मिल मालिक ने उसको अपना साझीदार बना लिया, उस समय ओवेन बीस वर्ष का सुदर्शन युवक था।

यह सपनों के सच होने, महत्त्वाकांक्षाओं के साकार होने की शुरुआत थी, उन्हीं दिनों मेनचेस्टर के प्रसिद्ध कपड़ा व्यवसायी डेल अपनी कपड़ा मिल बेचना चाहते थे, ओवेन ने उनसे बात की, सौदा पट गया। इसके बाद ओवेन स्वतंत्र रूप से मिल–मालिक बन गया।

व्यवसाय जम जाने के बाद ओवेन का ध्यान अपने कारखाने के मजदूरों और उनकी समस्याओं की ओर गया। उनका निम्न जीवन–स्तर और रहन–सहन की दयनीय स्थितियां देखकर उसे बहुत कष्ट हुआ। यहीं से उसने अपने सुधार कार्यक्रमों को लागू करने का फैसला किया, उसके बाद मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए ओवेन ने कई प्रयास किए। एक के बाद एक, उसने कई मजदूर बस्तियों की बसावट की।

उन दिनों मिल मजदूरों को कम से कम ग्यारह घंटे रोज काम करना पड़ता था। कार्य के दौरान हुई चूकों की भरपाई भी उन्हीं के वेतन की कटौती से होती थी। ओवेन ने कार्य–घंटों में, एक घंटा प्रतिदिन की कटौती कर दी। पूंजीवादी माहौल में यह कदम आत्मघाती माना गया। ओवेन के मित्रों ने उसे ऐसा न करने की सलाह दी। घाटे का डर भी दिखाया परंतु वह अपने इरादे पर अटल रहा। उल्टे मजदूरों की आवास समस्या के निदान हेतु मजदूर बस्तियां बसाने का काम उसने और तेज कर दिया। यही नहीं उसने हरेक बस्ती में पाठशाला खुलवाई, जिससे निर्धन मजदूरों के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर सकें। दस वर्ष तक के बच्चों के मिलों में काम करने पर इसलिए पाबंदी लगा दी ताकि वे शिक्षा ग्रहण कर सकें। ओवेन के इन सब कार्यों से मजदूरों के बीच उत्साहजनक माहौल बना, वहीं उद्योगपतियों के बीच ओवेन की लगातार सख्त आलोचनाओं का सामना करना पड़ रहा था।

रॉबर्ट ओवेन एक महान स्वप्नद्रष्टा था, एक बेहतर दुनिया का सपना उसके दिमाग पर हमेशा छाया रहता था। हालांकि वह धार्मिक रूप से अनास्थावान था, उसका मानना था कि स्वर्ग जैसी स्थितियां, इस धरती से परे, महज सुंदर परिकल्पना हैं। बड़े लोग यदि थोड़े से त्याग और दूरदर्शिता से काम लें तो इस धरती को स्वर्ग बनाया जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से वह खुद को समाजवादी ही मानता था। 'सोश्यिलिस्ट' शब्द का पहला प्रयोग की उसी ने अपनी पत्रिका 'कोऑपरेटिव मैगजीन' में किया था, रॉबर्ट ओवेन ने सहजीवन पर आगे चलकर जो प्रयोग किए, वही प्रकारांतर में सहकारी आंदोलन की नींव बने। तब से आज तक सहकारिता के स्वरूप में हालांकि बहुत बदलाव आ चुका है, इसके बावजूद उसकी आधारभूत मान्यताएं आज भी वहीं हैं।

सन् अठारह सौ पंद्रह मे उद्योग जगत में आर्थिक मंदी का दौर चला। उसकी यह मान्यता और भी दृढ़ हो गई कि पूंजी–प्रधान व्यवस्था और शोषण एक ही सिक्के दो पहलू हैं। पूंजीवादी व्यवस्था के परवान चढ़ने के लिए अत्यावश्यक है कि समाज में भूख, गरीबी और निरक्षरता हो.... इन सब अभावजन्य स्थितियों को वह पूंजीप्रधान व्यवस्था की समृद्धि के लिए अनिवार्य उत्प्रेरक मानता था। वह मान चुका था कि बेहतर कल के लिए व्यवस्था में आमूल परिवर्तन जरूरी है, वर्तमान व्यवस्था पूंजी के केंद्रीकरण को बढ़ावा देने वाली है, इससे समाज के शोषित और वंचित वर्ग के विकास और उसके प्रति समानतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा रखना अनुचित है। ओवेन की तत्कालीन मनस्थिति उसके इन शब्दों से सहज उजागर हो सकती है। "मैं अपने लंबे जीवन में व्यापार, उत्पादन और वाणिज्य के विभिन्न पहलुओं का अनुभव प्राप्त कर चुका हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि इस प्रकार की स्वार्थपूर्ण व्यवस्था से किसी प्रकार के श्रेष्ठ चरित्र की निर्मिति संभव नहीं है"।

यह उस महान स्वप्नद्रष्टा, कर्मठ, दूरदर्शी और संवेदनशील व्यक्ति के विचार थे, जो अपनी उद्यमशीलता का लोहा अपने अनूठे सुधार कार्यक्रमों के साथ–साथ, पूरे ब्रिटेन में मनवा चुका था।

पूंजी–प्रधान व्यवस्था से मोहभंग होने के पश्चात ओवेन ने वर्गहीन और समरस समाज की स्थापना के लिए अपने प्रयास और तेज कर दिए। अपने नए कदम के रूप में उसने अमेरिका के इंडियाना राज्य में 'न्यू हॉर्मनी' नामक बस्ती की स्थापना की। इसके साथ–साथ उसने ऑर्विस्टन (स्कॉटलैंड), रैलहिन, द्वारा बसाई गई बस्तियों में जीवन सामूहिकता और सहयोग पर आधारित था, पूरी बस्ती एक वृहद् परिवार के समान थी, जहां सुख–दुख, हास–विलास, जीवन और संघर्ष साझे थे। यहां तक कि सपनों और सकंल्पों पर भी सामूहिकता का प्रभाव था। ओवेन की स्पष्ट धारणा थी कि एक आदर्शोन्मुखी समाज में संबधों का आधार लाभ की बजाए, सेवा होना चाहिए। ओवेन द्वारा आदर्श समाज की यह संकल्पना न तो नई थी, न ही अनोखी, हजारों वर्ष पहले प्लूटो ने भी कुछ इसी प्रकार के आदर्श समाज का सपना देखा था। टॉमस मूर, ज्यां रॉक ने भी आदर्श समाज को लेकर कुछ इसी प्रकार की संकल्पनाएं की थीं। अपने पूर्ववर्ती विचारकों से आगे बढ़ते हुए ओवेन ने इस दिशा में कई प्रयोग किए, जिनमें उसे कुछ असफलताएं भी मिलीं तो भी वह निराश नहीं हुआ। सामाजिक परिवर्तन की चाहत में मजदूर और वंचित वर्ग के कल्याण को ध्यान में रखकर 1938 में उसने नेशनल इक्टिेबल लेबर एक्सचेंज की स्थापना की, फिर उसके थोड़े ही अर्से बाद दि ग्रेंड नेशनल कन्सोलिडेरिल ट्रेड यूनियन की। हालांकि ये दोनों ही संगठन सरकारी उपेक्षा, समकालीन उद्योगपतियों के विरोध, और मजदूरों में जागरूकता के अभाव में, असफल सिद्ध हुए, तो भी उन्होंने लोगों के विकास के वैकल्पिक रास्तों से परिचय कराने जैसा महत्वपूर्ण कार्य किया; आगे जो चलकर सहकारिता के विकास में बहुत काम आया।

समाज में व्याप्त असंतुलन से जूझते हुए ओवेन ने अपने प्रयोगों के अगले चरण में एक सहकारी समिति का गठन किया। डेविड रिकार्डो (1772–1823) जो अपने समय का प्रसिद्ध अर्थशास्त्री था और ओवेन के विचारों का कुछ हद तक समर्थक भी, ओवेन द्वारा बनाई गई समिति का सदस्य था, समिति के माध्यम से ओवेन की अनेक कल्याणकारी कार्यक्रमों को अंजाम देने की योजना थी, परंतु तब तक शायद बहुत देर हो चुकी थी। ओवेन द्वारा गठित समिति बहुत कारगर तो नहीं हो पाई मगर उसने ओवेन को सहकारिता के जनक के रूप में स्थापित कर दिया। सन् 1858 में, 87 वर्ष लंबा संघर्षपूर्ण और सार्थक जीवन जीने के पश्चात् उस उदार हृदय, सज्जन, ईमानदार, कर्मठ महात्मा उद्यमी ने मौत की गोद में विश्राम लेना उचित समझा।

ओवेन की मान्यता थी कि स्पर्धा से वास्तविक विकास संभव नहीं है, इसके स्थान पर सहजीवन और पारस्परिक सहयोग को महत्व दिया जाना जरूरी है। वह मानव चरित्र

की पवित्रता को भी अत्यधिक महत्व देता था। उसका मानना था कि अपने चरित्र–निर्माण के लिए मनुष्य अपने परिवेश से काफी चीजें ग्रहण करता है, मगर यदि परिवेश ही दोषपूर्ण हो तो मानव–चरित्र में उन दोषों का प्रवेश सहज स्वाभाविक है।

ओवेन का अत्यंत महत्वपूर्ण विचार जो आगे चलकर सहकारिता आंदोलन का आधार सिद्धांत बना, लाभ का निषेध था, यद्यपि यह उसका मौलिक विचार नहीं था; बल्कि प्रायः सभी धार्मिक–नैतिक मान्यताओं में एक मान्य सिद्धांत के रूप में वह बहुत पहले से उपस्थिति बनाए हुए था। ओवेन ने आर्थिक लाभ को सामाजिक लाभ में बदलने के लिए सामूहिक प्रयासों पर ज़ोर दिया। सहजीवन के अनेक प्रयोग किए, उसकी इसी कर्मशीलता में ही उसकी मौलिकता और महानता निहित है, ओवेन ने अपनी संस्था की शुरुआत भी बड़े ज़ोरदार ढंग से की थी। प्रारंभ में ही उसके 840 सदस्य थे। उसकी शाखाएं जगह–जगह फैली हुई थीं। वह सदस्यों द्वारा बनाए गए विभिन्न उत्पादों के विनियम के लिए कार्य करती थीं। जिसमें लाभ को शून्य की स्थिति में रखने का प्रयास किया जाता था। समिति के सदस्य स्वनिर्मित वस्तुओं को वहां लाते थे। बदले में उनको कागज की मुद्रा मिलती थी। जिससे वे उन वस्तुओं को खरीद सकते थे। जिसमें उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के बराबर श्रम लगा हो। इसमें क्रेता ओर विक्रेता एक ही स्थान पर मिलते थे। मध्यस्थों की भूमिका नगण्य थी। ओवेन द्वारा सहकारिता का यह प्रयोग अनेक कारणों से कारगर न हो सका। जिनमें प्रमुख कारण वे उद्योगपति भी थे जो लाभार्जन को ही व्यवसाय का मुख्य ध्येय मानते थे।

ओवेन व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ धर्म और विवाह जैसी संस्था का भी बहिष्कार करने के पक्ष में था, व्यक्तिगत संपति के बारे में उसका मानना था कि– "व्यक्तिगत संपति बहुत ही अनैतिक एवं घृणित शक्ति है। वह अनगिनत अपराधों और अन्यायों की जन्मदाता है, उससे असंख्य बुराइयां फैलती हैं।"

ओवेन के विचार के साथ मुश्किल यह रही है कि अपने समय से बहुत पहले, करीब–करीब ऐसे समय में समाज में प्रस्तुत और कार्यान्वित किये गए जब समाज में विरोधी शक्तियों का बोलबाला था। उन्हीं के प्रभाव के चलते लोग उन क्रांतिकारी परिवर्तनों को अपनाने के लिए तैयार नहीं थे। सामंतशाही और राजशाही के संस्कारयुक्त दिमागों पर पूंजीवाद अपनी जकड़ बनाए हुए था। कोई भी यह मानने को तैयार न था कि लाभ की इच्छा के बगैर भी कोई व्यवसाय चलाया जा सकता है। लाभ कमाने की लालची प्रवृत्ति के स्थान पर सहयोग, समर्पण और सेवा के लिए प्रयास करना, लोगों को काल्पनिक और अविश्वसनीय जान पड़ता था।

ओवेन की विचारधारा महज कल्पना की उड़ान न थी, यह आज हम दुनिया में सहकारी आंदोलन के विस्तार के रूप में देख रहे हैं। इंग्लैंड, जापान, डेनमार्क, भारत, इटली, चीन, श्रीलंका आदि देशों में सहकारिता आंदोलन आज अपनी जड़ें बहुत गहराई तक जमाए हुए है, और वहां की सामाजिक–आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण साझेदारी निभा रहा है। अकेले भारत में ही कुल उत्पादन का करीब एक तिहाई हिस्सा सहकारी उपक्रमों से आता है।

बदलते वैश्विक परिदृश्य में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण सामाजिक–आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया है। जिनमें पूंजी का केंद्रीकरण एवं क्षेत्रीय तथा जातीय असमानताएं प्रमुख हैं, आर्थिक शक्तियों के वर्चस्व एवं सहकारी अदूरदर्शिता के कारण सामाजिक स्तरीकरण तेजी से बढ़ा है। गरीब और शोषित वर्ग में सहकारी नीतियों को लेकर गहरा आक्रोश है। हाल के सत्ता परिवतनों ने यह स्पष्ट भी कर दिया है, इस चकाचौंधयुक्त विकास के माहौल में जनसामान्य खुद को छला हुआ महसूस कर रहा है, अतएव यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में लोकोन्मुखी परिवर्तन लाए जाएं। सहकारिता इसके लिए बेहतर विकल्प प्रस्तुत करने में सक्षम है। यह विभिन्न क्षेत्रों में इसके योगदान ने दर्शाया भी है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि बिखरी लोकशक्ति को सहकारिता के माध्यम से सार्थक सांगठनिकता प्रदान की जाए। ❑

जी–571, गोंविदपुरम्
गाजियाबाद–201002

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, ***कुरुक्षेत्र*** कमरा नं. 655/661, विंग 'ए' गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम सहकारिता क्षेत्र को मजबूत करेगा

माननीय कृषि मंत्री तथा एनसीडीसी महापरिषद के अध्यक्ष शरद पवार ने राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) महापरिषद् की 58वीं बैठक में कहा कि सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सहकारिता क्षेत्र को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। सहकारिताओं का जनतांत्रिक और स्वायत्त कार्य संचालन सुनिश्चित करने के लिए सरकार सभी उपाय करेगी। संवेदनशील सहकारी संरचना के लिए सहकारी ऋण प्रणाली को पुनः मजबूती प्रदान की जाएगी और अगले तीन वर्षों में ऋण प्रवाह को दोगुना कर दिया जाएगा।

मंत्री महोदय ने कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों में सहकारिता के विकास में एनसीडीसी की अब तक की भूमिका की सराहना की तथा निगम से सहकारी संस्थाओं की समक्ष मौजूद समस्याओं के समाधान के लिए नई योजनाएं बनाने के लिए कहा। ऐसी एक समस्या का सामना कृषि संसाधन सहकारिताओं, विशेषतः कपड़ा एवं चीनी मिलें कर रही हैं। ये सहकारिताएं बीमार हो रही हैं। एनसीडीसी ने कपास उत्पादकों तथा सूत कताई मिलों के पुनर्जीवन के लिए एक कार्यक्रम आरंभ किया है। चीनी मिलों सहित अन्य कृषि–संसाधन मिलों के लिए योजनाएं तैयार करने की आवश्यकता है। इसके लिए विचार–विमर्श चल रहा है।

मंत्री महोदय ने एनसीडीसी को अंशपूंजी आधारित संगठन बनाने के योजना आयोग के सुझाव का स्वागत किया। इससे एनसीडीसी को धन की उगाही कर विकास करने में मदद मिलेगी। इन उपायों से एनसीडीसी के समक्ष लंबे समय से चली आ रही धन की कमी को समाप्त किया जा सकेगा और भविष्य में यह अधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर पाएगा।

बैठक में मूल रूप से वर्ष 2004–05 के दौरान निगम की गतिविधियों के कार्यक्रम पर चर्चा की गई। इसका परिव्यय 735 करोड़ रुपये का होगा। इसमें कमजोर वर्गों से संबंधित कार्यक्रमों, मौजूदा कृषि–संसाधन सुविधाओं के आधुनिकीकरण/उन्नयन/पुनर्जीवन, विपणन संरचना का विकास, तथा समेकित सहकारिता विकास परियोजना कार्यक्रम पर विशेष बल दिया गया। मत्स्यपालन, दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन, हैंडलूम, अजा/अजजा सहकारिताओं आदि जैसे कमजोर वर्गों के लिए 191.95 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया है जो एनसीडीसी के कुल परिव्यय का 26.11 प्रतिशत है। कृषि संसाधन के लिए 288.92 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया है। विपणन तथा समेकित सहकारिता विकास परियोजनाओं के लिए आबंटित राशि क्रमशः 108.63 करोड़ तथा 92 करोड़ रुपये है।

केंद्रीय कृषि राज्यमंत्री तथा एनसीडीसी के उपाध्यक्ष कांतिलाल भूरिया ने हाल ही में संशोधित बहुराज्य सहकारिता अधिनियम का उल्लेख किया। यह अधिनियम सहकारी समितियों को बगैर किसी सरकारी हस्तक्षेप के स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सक्षम बनाएगा। केंद्र सरकार ने इसकी शुरुआत कर दी है। अब यह राज्य सरकारों पर निर्भर है कि वे आवश्यक परिवर्तन कर सहकारी क्षेत्र के समग्र विकास की गति तेज करें।

श्री भूरिया ने पर्यवेक्षण प्रणाली में सुधार करने, उत्पादन बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीकों को अपनाने तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता पर भी बल दिया।

कृषि सचिव राधा सिंह ने इस अवसर पर तीन पक्षों पर बल दिया– एनसीडीसी की गतिविधियों के क्षेत्र का विस्तार, बदली हुई परिस्थितियों में एनसीडीसी को मजबूत करना तथा कृषिगत एवं संबद्ध क्षेत्रों का विविधीकरण। चूंकि एनसीडीसी ने परियोजनाओं के लिए अब सीधे कोष उपलब्ध कराना आरंभ किया है, इसलिए उन्होंने एनसीडीसी में आंतरिक मूल्यांकन, पर्यवेक्षण तथा विधायी क्षमता को और मजबूत बनाने पर बल दिया। उन्होंने एनसीडीसी से अन्य विभागों तथा मंत्रालयों द्वारा दिए जा रहे रियायती कोष/अनुदान के साथ अपनी योजनाओं का सामंजस्य बिठाने का आह्वान किया ताकि सस्ते कोष का लाभ सहकारिताओं तक पहुंचाया जा सके।

बैठक के आरंभ में एनसीडीसी के प्रबंध निदेशक दिनेश राय ने विशिष्ट अतिथियों का स्वागत करते हुए उन्हें एनसीडीसी द्वारा हाल के दिनों में सहकारिता क्षेत्र की बेहतरी के लिए की गई विभिन्न पहलों से अवगत कराया। राज्य सरकारों द्वारा 5,928 करोड़ रुपये की एनसीडीसी की सहायता प्राप्त करने के लिए परिप्रेक्ष्य योजना तैयार करना, समय–समय पर ऋणों पर ब्याज दर को कम करना जो 9 प्रतिशत पर दीर्घावधि ऋणों के लिए देश की सबसे कम ब्याज दरों में से एक है, तीन नए राज्यों – उत्तरांचल, झारखंड और छत्तीसगढ़ को सहकारी दृष्टि से अल्पविकसित वर्ग में रखना, ताकि वे एनसीडीसी से रियायती वित्त प्राप्त कर सकें, सहकारिताओं के लिए प्रतियोगी दर पर कार्यशील पूंजी वित्त का प्रावधान, राज्य सरकारों के ब्याज का बोझ कम करने के लिए ऋण बदली योजना आरंभ करना – ये कुछ पहलें हैं। महिला सहकारिताओं को सहायता देने तथा बीमार सहकारी संसाधन इकाइयों को पुनर्जीवित करने जैसी कुछ नई योजनाएं अभी विचाराधीन हैं और केंद्र सरकार द्वारा उनके अनुमोदन की प्रतीक्षा है। ❑

अनुवाद : अंजली सिन्हा

(आवरण 2 का शेष)

दृष्टि से ठीक रहना चाहते हों परंतु अति दरिद्र होने अथवा महाजन के चंगुल में फंसे होने के कारण नैतिक दृष्टि से ठीक नहीं रह पाते। उचित ब्याज पर ऋण मिलने का सुभीता प्राप्त हो जाने से नीति–भ्रष्ट मनुष्य नीतिमान् नहीं हो जाएंगे; परंतु राज्य के कर्मचारियों या परोपकार–परायण लोगों की बुद्धिमत्ता तो इसी में है कि वे ऐसे लोगों को आगे बढ़ने में सहायता दें जो सज्जन बनने का प्रयत्न कर रहे हों।

प्रायः हम लोगों का यही विश्वास रहता है कि आर्थिक संपन्नता से नैतिक उत्थान होता है; यह आवश्यक है कि जो आंदोलन भारत के लिए इतना हितकारी है वह ऐसा भ्रष्ट होकर लोगों को थोड़े सूद पर ऋण देने का आंदोलन–मात्र न रह जाए। इसीलिए मुझे भारतीय सहकारिता समिति की रिपोर्ट में यह सिफारिश पढ़कर प्रसन्नता हुई थी।

वे लोग (समिति के सदस्य) स्पष्ट रूप से अपनी यह सम्मति प्रकट कर देना चाहते हैं कि यदि सरकार सर्व–साधारण की दशा सुधारना चाहती है तो उसे केवल सच्ची सहकारिता का, ऐसी सहकारिता का जिसमें इस प्रश्न के नैतिक स्वरूप का ख्याल रखा गया हो – आश्रय लेना चाहिए; ऐसी दिखावटी सहकारिता का नहीं जिसका निर्माण सहकारिता के सिद्धांतों को बिना जाने हुए ही किया गया हो।

उस मानदंड को अपने सामने रखते हुए, संगठित सहकारी समितियों की संख्या मात्र से ही हम इस आंदोलन की सफलता का माप नहीं करेंगे, बल्कि उसके सदस्यों की नैतिक ऊंचाई से करेंगे। इस अवस्था में रजिस्ट्रार लोग उन समितियों की संख्या बढ़ाने से पहले प्रस्तुत समितियों की नैतिक उन्नति करेंगे। और सरकार उन रजिस्ट्रारों की पद–वृद्धि यह देखकर नहीं करेगी कि उन्होंने कितनी समितियों की रजिस्ट्री की है; बल्कि यह देखकर करेगी कि प्रस्तुत संस्थाओं को कितनी नैतिक सफलता मिली है। इसका अर्थ यह है कि इस बात का पता लगाना होगा कि सदस्यों को दिया हुआ पैसा किस काम में लगता है। जिन लोगों पर सहकारी समितियों के उचित संचालन करने का उत्तरदायित्व है वे इस बात का ध्यान रखेंगे कि जो रुपया उधार दिया गया है वह ताड़ी विक्रेताओं की संदूकची में या जुए खानों के मालिकों की जेब में न चला जायेगा। यदि किसान का घर ताड़ी या जुए से बच गया तो मैं महाजन को उसके लोभ के लिए क्षमा कर दूंगा।

यह आंदोलन सब देशी उद्योगों का ध्यान रखता है। भारत का कोई भी शुभचिंतक, कोई भी देशहितैषी उदासीन नहीं रह सकता।

आश्रम का अस्तित्व उस सहायता पर निर्भर है जो उसे मित्रों से मिलती है। इसलिए ब्याज लेना उचित नहीं हो सकता। जुलाहों पर उसका बोझ नहीं लादा जा सकता। पूरे परिवार, जो पहले छिन्न–भिन्न हो रहे थे, अब फिर एकत्र हो गए हैं। ऋण का उपयोग पहले से ही तय होता है। और हम बिचौलियों के रूप में इनके परिवारों में प्रवेश करने का अधिकार पाते हैं; इससे मुझे आशा है उनकी और हमारी स्थिति सुधरेगी। बिना अपने आपको उन्नत किए हम उन्हें उन्नत कर ही नहीं सकते। यह अंतिम संबंध अभी बन नहीं पाया है, पर हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही इन परिवारों की शिक्षा का काम भी हम अपने हाथ में ले लेंगे और जबतक सभी बातों में हम उनके साथ संबंध न स्थापित कर लेंगे तबतक हम लोग संतुष्ट न होंगे। हमारा यह स्वप्न कोरी कल्पना नहीं है। यदि ईश्वर ने चाहा तो यह स्वप्न किसी दिन साकार हो जाएगा। अपने छोटे से प्रयोग का वर्णन बहुत विस्तार से करने का साहस मैंने इसलिए किया है कि मैं अन्य उदाहरण देकर यह बतला दूं कि सहकारिता से मेरा तात्पर्य क्या है जिससे अन्य लोग उसका अनुकरण कर सकें। हमारे सामने आदर्श स्पष्ट होना चाहिए। संभव है कि उस आदर्श को प्राप्त करने में हम विफल रहे हों, परंतु उसकी प्राप्ति का उद्योग हमें कभी छोड़ना नहीं चाहिए। उस दशा में हमें उन "लुच्चों के सहकार" का भय न रह जाएगा जिसका डर रस्किन को था; और वह उचित ही था। ❑

(संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 13)

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. 12057/2003-05
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.) -55/2003-5

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL 12057/2003-05
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2003-05
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रो. उमाकांत मिश्र, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला औद्योगिक क्षेत्र फेज़-II, नई दिल्ली-110020. संपादक : स्नेह राय